... पुरातन ग्रन्थमाला

50

... जोधपुर।

राजस्थान पुरातन ग्र...थमाला

ग्रन्थाङ्क 190

# राजस्थान के नाथ सम्प्रदाय और साहित्य

**राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला**

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित
सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषतः राजस्थानप्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्टग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक
**मुकेश शर्मा** I.A.S.

ग्रन्थांक 190

# राजस्थान के नाथ सम्प्रदाय और साहित्य

© प्रकाशक

प्रकाशक
**राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर**

प्रथमावृत्ति 500 ई. 1997

मुद्रक
मै. भण्डारी ऑफसैट, जोधपुर

## प्रधान सम्पादकीय

भारतीय संस्कृति के चिन्तकों ने धर्म की प्रवृत्ति व निवृत्ति - इन दोनों ही विधाओं पर प्रर्याप्त विमर्श किया है। यज्ञपरक वैदिक संस्कृति, संसार का सर्वथा परित्याग करने वाली श्रमण संस्कृति, उपभोगवादी यक्ष संस्कृति, संसार को दु:खमय देखने वाली बौद्ध संस्कृति, इहलोक सिद्ध कर वाममार्ग से मोक्षसाधना में जनता को प्रवृत्त करती तांत्रिक उपासना या योगमार्ग से काया को सिद्ध करने वाले यौगिक उपासनायें - इन चिन्तकों के विविध आयामों के उदाहरंण हैं। वामाचारी तांत्रिक साधना का परिष्कार करते हुये गोरखनाथ ने एक ऐसी साधना पद्धति को जन्म दिया जो उस हर व्यक्ति के लिये साधना का मार्ग खोल देती है जो वास्तव में आत्म कल्याण करना चाहते थे। जाति व धर्म के वन्धनों से रहित सर्व समभाव या विश्वजनीन दृष्टि को पनपाती यह नाथ साधना गोरखनाथ के समय से एक सम्प्रदाय में वदल गई।

राजस्थान के समाज पर एवं शासन पर भी नाथों का प्रभाव 12 वीं शती से परिलक्षित होता है। यहां के कई शासक न केवल नाथानुयार्या रहें वल्कि कई शासकों को राज्य प्राप्ति भी नाथों के आशीर्वाद से हुई। नाथों के रावल पंथ में व्यक्ति के साथ लगने वाली रावल उपाधि को वाप्पा रावल व परमार शासकों के साथ देख सकते हैं। 16 वीं शताव्दी से यहां के शासकों के आश्रम में गावों-गावों में नाथ आसन व मठ स्थापित हुयें और जोधपुर के महाराजा मानसिंह के आश्रय में विपुल मात्रा में नाथ साहित्य का सर्जन हुआ।

लगभग 10 शताव्दी तक नाथ सम्प्रदाय ने राजस्थान को प्रभावित किया है। इस सम्प्रदाय की विकास यात्रा में उसके सामाजिक व साहित्यिक अवदान, योगमार्ग की साधना में लोगों की प्रवृति और जाने अनजाने इतिहास का अंग वनते गये नाथ महन्तों के प्रभाव का अध्ययन कम से से प्रारम्भ हो सके इस दृष्टि से हमने मार्च 1994 में एक विशिष्ट राष्ट्रीय संगोर्ष्ठी का आयोजन किया। मुझे इस वात की प्रसन्नता है कि पूर्व में मैंने जिन तथ्यों की ओर संकेत किया है उनका तलस्पर्श करने वाले शोध पत्र उक्त संगोष्ठी में प्रस्तुत किये गये हैं। इन शोधपत्रों को एक पुस्तककार में आपके हाथों में सौपते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है। नाथों के इतिहास व साहित्य के अध्येताओं को यह ग्रन्थ केवल सहायक ही नहीं अपितु प्रेरणास्पद रहेगा।

**मुकेश शर्मा I.A.S.**
**निदेशक**

# अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| | | | पृष्ठ संख्या |
| प्राक्कथन | : | डा. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय | 01–09 |
| संपादकीय | : | डा. डी. बी. क्षीरसागर | 11–19 |

*खण्ड प्रथम*

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. नाथों की साधना पद्धति | : | योगी आदित्यनाथ | 21–31 |
| 2. नाथों की साधना पद्धति | : | डा. वेदप्रकाश जुनेजा | 33–49 |
| 3. नाथ साधना में लौकिक अभिव्यक्ति | : | डा. ओंकारनारायणसिंह | 51–56 |
| 4. मेवाड़ के नाथयोगी एवं नवरात्रि पर्व | : | डा. राजेन्द्रनाथ पुरोहित | 57–70 |
| 5. वैदिक दर्शन के आलोक में गोरखनाथ दर्शन | : | डा. अमलधारी सिंह | 71–81 |
| 6. नाथ योगियों के वेष–प्रतीक | : | माधो भारती | 83–94 |

*खण्ड द्वितीय*

| | | | |
|---|---|---|---|
| 7. भारतीय संस्कृति में नाथ चिन्तन: एक मूल्यांकन | : | डा. ब्रजबिहारी चौबे | 01–15 |
| 8. नाथ और सिद्ध | : | डा. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय | 17–28 |
| 9. राजस्थान के नाथ आसन एवं पंथ | : | डा. सोहनकृष्ण पुरोहित | 29–35 |
| 10 मेवाड में नाथ संप्रदाय के आसन और उनका प्रभाव | : | डा. ब्रजमोहन जावलिया | 37–49 |
| 11. बीकानेर क्षेत्र में नाथ संप्रदाय के मंदिर–मठ | : | जीवनराम मीणा | 51–56 |
| 12. सिरै मन्दिर सैंसू सिरे | : | डॉ. भगवतीलाल शर्मा | 57–66 |
| 13. राजस्थान के राजघरानों को नाथ योगियों का आर्शीवाद | : | डा. हुकमसिंह भाटी | 67–75 |
| 14. नाथ संप्रदाय में रावल पंथ | : | मदननाथ रावल 'मृदुल' | 77–84 |

*खण्ड तृतीय*

| | | | |
|---|---|---|---|
| 15. नाथ संप्रदाय और मारवाड़ के पंचपीर | : | डा. सोनाराम विश्नोई | 01–07 |
| 16. नाथों का सामाजिक प्रभाव | : | पं. दीनदयाल ओझा | 09–15 |
| 17. नाथ संप्रदाय और मारवाड | : | पं. रामदत्त थानवी | 17–30 |
| 18. नाथसिद्धों की संगीत साधना | : | डा. पंकजमाला शर्मा | 31–35 |
| 19. मेवाड़–मारवाड़ की अज्ञात नाथ–धूणिया | : | रतनलाल कामड़ | 37–44 |

खण्ड चतुर्थ


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 20. | ORIGINAL HATHA-PRADIPIKA SOURCES IN RAJASTHAN | : | YOGAMAHARATNA M. VENKATA REDDY | 1-5 |
| 21. | हठप्रदीपिका की कतिपय गुत्थिया | : | डॉ. म.ल.घरोटे | 07–14 |
| 22. | मुण्डकोपनिषद् टीका विद्वज्जनमनोरञ्जिनीः एक अनुशीलन | : | डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा | 15–22 |
| 23. | हठप्रदीपिका पर कौल सम्प्रदाय का प्रभाव | : | गोविंदलाल श्रीमाली | 23–33 |
| 24. | महाराजा मानसिंह (जोधपुर) का नाथ भक्ति साहित्य | : | डॉ. रामप्रसाद दाधीच | 35–39 |
| 25. | सिद्धराजसतसईः एक अनुशीलन | : | डॉ. शक्तिदान कविया | 41–52 |
| 26. | जालंधरगुणरूपक | : | विक्रम सिंह राठौड | 53–59 |
| 27. | जलंधर जस वर्णन | : | डॉ. भगवतीलाल व्यास | 61–64 |
| 28. | जलंधरनाथ रूपग : एक अनुशीलन | : | डॉ. मनमोहन स्वरूप माथुर | 65–72 |
| 29. | गोरखवाणीः क्षेपक, प्रतिपाद्य और उल्टी चर्चा के संदर्भ में | : | डॉ. रमेशचंद्र मिश्र | 73–99 |
| 30. | नाथसम्प्रदाय और मलिक मुहम्मद जायसी | : | डॉ. देवेन्द्र गौतम | 101–117 |
| 31. | जाम्भोजी महाराज की वाणी में नाथ–सम्प्रदाय के प्रसंग | : | कृष्णलाल विश्नोई | 119–126 |
| 32. | नाथ साहित्य में प्रतीक योजनाः | | डॉ. सर्वेश कुमार शर्मा | 127–133 |
| 33. | सन्त जाम्भोजी का नाथों को उपदेश | : | डॉ. मंगलराम विश्नोई | 135–143 |
| 34. | महाराजा मानसिंह पर नाथसम्प्रदाय का प्रभाव | : | कमलकिशोर सांखला | 145–150 |

# प्राक्कथन

डॉ नागेन्द्रनाथ उपाध्याय

गोरखनाथ और नाथ–संप्रदाय को जो और जितना प्रसंग और महत्व राजस्थान में सुदीर्घकाल से है, उसका गौरव अन्य प्रांतों को नहीं प्राप्त हो सका है। राजकीय सहाय्य से इस संप्रदाय ने इस प्रान्त विशेष में अभ्युन्नति, विशेषकर महाराजा मानसिंह जी के समय में प्राप्त की, उतनी किसी अन्य काल में, किसी अन्य प्रान्त में नहीं। यही कारण है कि इस संप्रदाय से सम्बन्धित अध्ययन की जितनी विपुल सामग्री इस प्रान्त में प्राप्त है, उतनी किसी अन्य प्रान्त में नहीं। इस सम्प्रदाय का व्यापक प्रभाव तो बंगाल, आसाम, उडीसा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, अफगानिस्तान, जम्मू–कश्मीर आदि प्रदेशों पर भी पड़ा। अनेक विध क्षेत्रिय साहित्य की रचना में भी इस संप्रदाय ने विविध प्रकार से योगदान किया, प्रेरणा दी। इतना ही नहीं, इस संप्रदाय ने सामाजिक, साधनात्मक, दार्शनिक और साम्प्रदायिक क्रांति करने में पर्याप्त योगदान किया है। सामान्य जनसमाज पर, लोकजीवन पर, लोकविश्वास पर, किंबहुना, सामाजिक पुनर्रचना पर इसका प्रभाव भक्ति–मत के अतिरिक्त सबसे अधिक है।

विद्वान् लोग यह स्वीकार करते हैं, कि बौद्ध मत का उच्छेद सबसे पहले कुमारिल और शंकराचार्य ने किया। मुसलमानों के आक्रमण से उसका उच्छेद तो बाद में हुआ। इस प्रंसग में नाथ संप्रदाय के महान् सिद्धों के योगदान को विद्वानों ने उतना महत्व नहीं

दिया, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि यह स्वीकृति अधूरी है, प्रतिपादन एक पक्षीय है और प्रयोजन–विशेष से प्रेरित है। यह सभी लोग जानते हैं कि तांत्रिक बौद्ध धर्म में अधिक भेद–भाव का सैद्धांतिक प्रतिपादन तो खूब हुआ और तांत्रिक ग्रंथों में दीक्षा अभिषेकादि का यथा सेकोद्देश टीका में विधि–विधान भी पर्याप्त विवरण के साथ प्रस्तुत किया गया, किंतु उसके परिपालन में उतनी ही अधिक शिथिलता भी बरती गई। अधिकांश तांत्रिक बौद्ध–सिद्धों और अनुयायियों ने संघभाषा के माध्यम से योगतंत्र और अनुत्तरयोग तंत्र की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करते हुए साधना की गुह्यतम अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी। किंतु व्यवहार में योगतंत्रयान (वीराचारपरक साधना) के प्रयोग को ही अधिक प्रश्रय मिला, क्योंकि वह मनुष्य की दुर्बलताओं के अनुकूल अधिक था। सामान्य–जन अथवा वे लोग साधना की आरम्भिक कठोर संयम प्रधान जीवन पद्धति में परिपक्व नहीं थे उनके लिए चारित्रिक पतन और शैथिल्य के गर्त बहुत गहरे थे। हिन्दू तांत्रिक ग्रंथों जैसे महानिर्वाणतंत्र या अन्य ग्रंथों में, अधिकार भेदवादी व्यवस्था का कठोर विधान था जिसका अनुसरण विभिन्न शैव सम्प्रदायों ने किया। इसका अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि हिन्दू तांत्रिक ग्रंथों जैसे शारदातिलक में दशांग–यम –नियम का निर्देश किया गया है जो पातंजल पंचांग यम–नियम से अधिक कठोर है। नाथ साधना में मान्य ग्रंथ हठयोगप्रदीपिका ने इसी दशांग–यम नियम को मान्यता प्रदान की थी, जबकि वज्रोली–सहजोली जैसी साधनाओं के ज्ञानमात्र को ही पर्याप्त समझा था। मैं समझता हूं कि यह मान्यता नाथ–संप्रदाय की कठोर संयम–परायणता का प्रमाण प्रस्तुत करती है। इसे कदाचित् इस सम्प्रदाय ने, तांत्रिक बौद्धों की चारित्रिक स्थितियों को देख कर ही स्वीकार किया था। इसका नाथों ने अत्यंत दृढता और चारित्रिक ओजस्विता के साथ प्रचार किया। तांत्रिक बौद्ध धर्म की साधना में जो गुह्यता, वैयक्तिकता, सहजता के होते हुए भी रहस्यात्मकता थी, समाज के अंधविश्वासों का विरोध करते हुए भी ऐकांतिकता थी, उसका घातक प्रभाव जन–मानस पर पड़ रहा था, जनमानस उसे भय और आश्चर्य से देखता था। किंतु श्रद्धा और विश्वास उसे प्राप्त नहीं हो सका, क्योंकि मैं ऐसा मानता हूं कि रहस्यात्मक जीवन से उद्भूत उनकी अनुभूतियां जनसमाज के मानस को अभिभूत नहीं कर पायी। इसके

लिए संयमपूर्ण चारित्रिक बलवत्ता और समाज के प्रति खुलेपन की आवश्यकता थी, जिसे बौद्ध सिद्ध नहीं दे सके।

इन सारी बातों को कहने का मेरा एक अभिप्राय विशेष यह है कि शंकराचार्य ने यद्यपि शास्त्र और तर्क की सहायता से बौद्धों को निरुत्तर कर दिया था, किंतु भारतीय जन–मानस के मानस के सिंहासन पर छठी शती से जमे बौद्धों को वे नहीं हटा सके थे। यह कार्य गोरखनाथ ने जिस प्रतिष्ठा के साथ किया, वैसी प्रतिष्ठा के साथ उनके गुरु मत्येन्द्रनाथ भी नहीं कर सके। इसका कारण तो यही प्रतीत होता है कि जैसा कौलज्ञाननिर्णय के आलोचनात्मक अध्ययन से तथा उनके कदलीदेश या स्त्रीदेश या कामरूप की यात्रा से संबंधित अनुश्रुतियों से प्रमाणित होता है, वे वीराचार या सामाचार की साधना में अग्रसर हुए थे और यह साधना तत्कालीन बौद्ध सिद्धों की योगतंत्रात्मक साधना के समान ही थी। परिणामतः सामान्य जनता उनके प्रति भी उसी प्रकार भय और आश्चर्य की भावना से ग्रस्त हो गयी थी जैसी वह तत्कालीन कापालिकों, तांत्रिक बौद्धों के प्रति रखती थी। इस प्रसंग से गोरखनाथ का व्यक्तिव जनसमाज में और अधिकं समुज्ज्वल होकर प्रोद्भासित हुआ। भारतीय समाज ने गोरखनाथ और उनकी साधना और जीवनदृष्टि का अधिक उत्साह से स्वागत किया। शास्त्रीय और तार्किक दृष्टि से परास्त बौद्ध इस शैव प्रचार–प्राबल्य का सामना नहीं कर सके और जनमानस से अधिकाधिक दूर होते गए।

इन बातों को आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने ढ़ंग से स्वीकार किया। यद्यपि वे नाथों द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था को दी गई अस्वीकृति से इतने मर्माहत थे कि वे उन्हें अपना समर्थन नहीं दे सके। फिर भी उन्होंने इतना तो अवश्य स्वीकार किया कि चारित्रिक दृढ़ता और समाज के निम्न वर्ग में आत्मविश्वास जगाने की दृष्टि से नाथ–संप्रदाय के इन महापुरुषों का योगदान अवश्य महत्वपूर्ण है। तात्पर्य यह है कि गोरखनाथ ने तांत्रिक बौद्ध धर्म को जनसमाज से काट दिया, बहिष्कृत कर दिया। यह भी होना ही था क्योंकि तत्कालीन समाज के जीवनादर्श की पूर्ति बौद्धों द्वारा नहीं हो रही थी। नाथों ने विदेशी–मुसलमान आक्रमणकारियों का प्रतिरोध भी किया था, जैसा ब्रिग्स के विवरण से ज्ञात होता

है। किंतु यह बौद्धों द्वारा संभव न हो सका। शासकीय, शास्त्रीय व साम्प्रदायिक दृष्टि से जर्जर नींव वाले बौद्धों का मूलोच्छेद, जो कुछ भी था, मुसलमान आक्रमणकारियों ने नालंदा, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालयों और बौद्ध-विहारों को ध्वस्त कर सम्पन्न कर दिया। तांत्रिक बौद्धों की मनोवृत्ति उस समय, लगभग ११-१२ वीं शती में, कैसी हो रही थी, इसका पता तो इसी से लग जाता है कि १२ वीं शती तक आते आते उनमें साधना के प्रति उतना उत्साह नहीं रह गया था जितना की टीका-टिप्पणी और भाष्य में बौद्ध सिद्धों के विचारों को शास्त्रीय सम्पुष्टि देने में। नाथों के, विशेषकर गोरखनाथ के इस योगदान को विद्वानों द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए। मैं जब इस प्रकार के विचार व्यक्त कर रहा हूं तब मेरी दृष्टि में उन विद्वानों के विचार भी हैं जो क्रमश नाथ-संप्रदाय और नाथों को बौद्ध उपयान और बौद्ध घोषित करने के लिए अनेक तथ्यों का भ्रमपूर्ण अर्थनिरूपण करते हैं। इसी दृष्टि से मैं गोरखनाथ को शंकराचार्य से भी महान् और उदारचेता महिमाशाली व्यक्तित्व वाला जननायक मानता हूं।

इसी बात को और आगे बढ़ाता हुआ अनेक ऐसी सूचनाओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं जिससे हमारे उपर्युक्त विचारों की पुष्टि होती है। यहां मैं गोरखनाथ के समय के विवाद में नहीं पड़ना चाहता किंतु इतना तो स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जो अद्यतन सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर गोरखनाथ का समय ६ वीं शताब्दी है, जब बंगाल में पालवंश शासन कर रहा था और कान्हुपा उस शासन में कायस्थ थे। जालंधरपाद उनके गुरु थे। मत्स्येन्द्र और जालंधर गुरुभाई थे, किंतु उनमें साधनागत भेद था। इनके कनिष्ठ समकालीन इनके शिष्य क्रमशः गोरक्ष और कानिफा थे। जांलधरपाद कापालिक थे और इन दोनों में साधनात्मक और साम्प्रदायिक प्रतिस्पर्धा थी। इतना ही नहीं काबुल-कंधार से लेकर आसाम के पूर्वी छोर तक बंगाल तक उड़ीसा तक और पश्चिम में गुजरात, महाराष्ट्र तक, दक्षिण में केरल तक, उत्तर में कश्मीर तक उनके तथा उनके अनुयायियों के जीवन, तत्संबंधी मंदिर, छतरियाँ, सरोवर आदि हैं, कि उनका विवरण तैयार करने के लिए एक बहुत बड़े शोधक दल की आवश्यकता होगी। अनेक वर्षों तक व्यापक यात्राएं करनी पड़ेंगी और विभिन्न सामाजिक,

क्षेत्रिय, प्रान्तीय, भाषिक वर्गों में प्रचलित अनुश्रुतियों का संग्रह एवं अर्थ निरूपण करने तथा उनके तथ्य संकलित करने में दीर्घकालव्यापी बौद्धिक व्यायाम करना पडेगा जिसमें नृवंश–शास्त्र, पुरातत्व, धर्म–शास्त्र, समाज–शास्त्र आदि की सूक्ष्म जानकारी की आवश्यकता होगी। एक ही कथा अथवा अनुश्रुति के प्रदेश भेद या क्षेत्रभेद से अनेक रूपों के कारणों का संधान अत्यंत रोचक कार्य है, क्योंकि व्यापकता इतनी अधिक है कि प्रत्येक क्षेत्र का समाज अपने जननायक से अपने स्थानों, मंदिरों, मठों आदि को सम्बद्ध कर उनकी स्मृति को जीवित रखना चाहता है।

यहां का नाथपंथीय अगाध भंडार मुझे आकर्षित कर रहा था। इसकी जितनी अधिक जानकारी आपको है, उतनी मुझे नहीं। इसलिये मैं सारे भारत में प्रायः सभी प्रांतों में फैले नाथपंथीय शोधसंपत्ति की चर्चा न कर विस्तार भय से, केवल दो–चार प्रांतों की चर्चा करूंगा। आचार्य शुक्ल तथा कुछ अन्य विद्वान् कहते हैं कि बौद्ध सिद्धों का प्रचार क्षेत्र पूर्वी भारत था और नाथों का पश्चिमी भारत। किंतु यह मुझे आंशिक सत्य लगता है। उडीसा के विद्वानों की मान्यता है कि नाथ–संप्रदाय के प्रभाव के कारण ही पुरी के पुरुषोत्तम का नाम जगन्नाथ पड़ा। 'मत्स्येन्द्र–गीता', से उड़ीसा के नाथ–धर्म और जगन्नाथ मंदिर की महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। उड़ीसा के नाथ संप्रदायानुयायी अपने महासिद्धों का जन्म उड़ीसा में ही मानते हैं। अन्य राज्यों की तरह ही इस राज्य में भी नाथ सिद्ध महापुरुषों से संबद्ध अनेक मठ और गद्दियां हैं। यह भी कहा जाता है कि गोरखनाथ ने ही पुरी के 'बडा अखाड़ा' मठ की स्थापना की थी और वे वहां जब सिंगानाद करते थे तो समुद्र बावन हाथ हट जाता था और जगन्नाथ जी का आसन हिलने लगता था। परिणामतः उन्हें मंदिर के सिंहद्वार की दक्षिण दिशा में स्थान दिया गया। वहां उनकी मूर्ति स्थापित की गई। जो लोग बारह पंथों के इतिहास का अध्ययन करते हैं, वे सत्यनाथी या सतनाथी शाखा के विषय में भी जानते हैं। इसकी प्रधान गद्दी मठ के रूप में पुरी में स्थापित है। उड़ीसा के १६ महंतों और उनके मठों में भुवनेश्वर का कपाली मठ विशेष महत्वपूर्ण माना जाता है। पुरातत्वज्ञ लोग मानते हैं कि उड़ीसा के राजा कपिलेन्द्र का राज्याभिषेक इसी मठ में २६ जून १४३५

ई. को हुआ था जिसका प्रमाण मठ के पूर्वद्वार के दक्षिण की ओर स्थापित एक शिलालेख में मिलता है। कटक जिले के सालेपुर थाना के अंतर्गत खगुसाही ग्राम में मल्लिकानाथ की गद्दी विद्यमान है जिसे उनकी समाधिपीठी भी कहा जाता है। बहुत दिनों तक मल्लिकानाथ संबंधी विवरण अज्ञात रहा। 'गोरक्षमल्लिकासंवाद' नामक हस्तलेख से इन दोनों महापुरुषों के संबंध की पुष्टि होती है। 'माडर्न बुद्धिज्म एण्ड इट्स फालोअर्स एन ओरिसा' (नगेन्द्रनाथ बोस) में भी थोड़ा सा परिचय उपलब्ध है, किंतु 'मल्लिकामकरंद' नामक हस्तलेख से, जो मुझे पूर्व संसद सदस्य स्व. प्रफुल्लचंद्र भंजदेव से प्राप्त हुआ था, इनका विस्तृत विवरण मिला। इस हस्तलेख के इतिहास–खण्ड से जो सूचनाएं मिली वे अत्यंत रोचक हैं।

मल्लिकानाथ नीवार देश के क्षत्रिय योद्धा थे और उस समय उनका नाम बिबुधेन्द्र मल्ल था। किसी समय में मृगया में उन्होंने कापालिक वेशधारी गोरखनाथ का दर्शन होने पर नमस्कार किया किंतु उसका उत्तर ना पाकर अत्यंत क्रुद्ध हुए और गोरक्ष को दंभी समझ कर उनके जटा–जूट पर खड्ग से प्रहार किया। समाधिस्थ गोरखनाथ के जटा–जूट से टकरा कर खड्ग टूट जाने पर बिबुधेन्द्रमल्ल को अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ और वे गोरक्ष के शिष्य बने। गोरक्ष की तरह ही उन्होंने भी कालीकुल और ताराकुल की साधना कर सिद्धि प्राप्त की। बाद में अपनी साधना के उच्चतर स्तर में उत्तरासाधिका के रूप में एक ब्रह्मवादिनी ब्राह्मण कन्या का वरण किया। सिद्धि के बाद अपनी सिद्धा भैरवी का नाम मल्लिका रखा। उनके मुख्य शिष्य वाहनीनाथ जिन्होंने गुरु के आदेश के अनुसार ही उनके स्वार्चित शिवलिंग को स्थापित कर पास में ही मल्लिकानाथ के शरीर को भी समाधिस्थ किया और उस पर शिवलिंग भी स्थापित कर दिया। वारुणीनाथ रससिद्ध और परम ज्ञानी थे। इस क्षेत्र को मल्लिकामकरंद में दण्डभुक्ति कहा गया है। यह भी कहा गया है कि यहां पर गोरखनाथ आकाश मार्ग से उड्डीयान से आये थे और मल्लिकानाथ को दर्शन दिया था।

हठयोग प्रदीपिका का अध्ययन करने वाले नाथ सिद्धों की सूची पर विचार करने वाले विद्वानों को यह ज्ञात है कि उसमें अल्लम प्रभुदेव नाम के एक सिद्ध को हठयोगी सिद्धों में अन्तर्गणित

किया गया है। कभी–कभी भ्रम से इसे दो सिद्धों के रूप में माना लिया गया है। गोरखनाथ और अल्लम प्रभुदेव के बीच भी लगभग उसी प्रकार की एक प्रकार की घटना घटित हुई बताई जाती जैसी बिबुधेन्द्र मल्ल के साथ घटित हुई थी। अल्लम प्रभुदेव वीर शैव मत के प्रथम महापुरुषों में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। ये भी गोरखनाथ की तरह सिद्धदेह थे। किंतु दोनों के कार्य सम्पत् में यदि पांतजल योग के अनुसार वज्राङ्ता को कार्य सम्पत् के अन्तर्गत मान लिया जाए तो, अन्तर स्वीकार किया जाना चाहिए। म. म. गोपीनाथ कविराज का विचार है कि दोनों की कार्य सिद्धि में विलक्षणता थी। कहा जाता है कि श्रीशैल के कदलीवन में अल्लम प्रभुदेव की नाथपंथ के सिद्ध गोरक्षनाथ से भेंट हुई थी। अल्लम प्रभुदेव के जीवनवृत्तकार यह उल्लेख करते हैं कि वे गोरक्षनाथ की तरह वज्रकाय सिद्धि को मुक्ति नहीं समझते थे। दोनों परीक्षा के लिए तत्पर हुए। गोरक्ष ने प्रभुदेव के हाथ में खड्ग देकर प्रहार करने के लिए कहा प्रहार होने पर आघात से 'खून' की ध्वनि हुई। गोरक्ष ने जब प्रभुदेव के शरीर पर प्रहार किया तो न कोई शब्द हुआ और न ही शरीर को ही कोई क्षति पहुंची। गोरक्ष के शरीर को भी हानि नहीं हुई थी। प्रभुदेव पर किए प्रहार से ऐसा लगा कि खड्ग हवा में चलाया गया हो। इससे प्रभावित होकर गोरक्ष ने प्रभुदेव से इसका रहस्य समझाने की प्रार्थना की। इस प्रसंग में सिद्धि की उत्कृष्टता–निकृष्टता का कोई प्रश्न नहीं है। देखना यह चाहिए की उस समय सिद्धियों को लेकर सिद्ध–महापुरुषों में परस्पर विचारों के आदान प्रदान होते रहते थे। दूसरे नाथ–साधना की दृष्टि से वज्रकाय की प्राप्ति अंतिम नहीं है। यह जो केवल इच्छित काल तक ज्ञान को इसी काया में सुरक्षित रखने का उपाय मात्र है, साध्य नहीं है। इस प्रसंग में और भी बाते कही जा सकती हैं। गोरक्षनाथ ने आन्ध्र और कर्नाटक तक भ्रमण किया था। उनके संप्रदाय का प्रस्तार आंध्र तक हो गया था। यह गोरक्षनाथ के व्यक्तित्व के कारण ही संभव हुआ था।. यहां आंध्र की चर्चा आई तो एक प्रंसंग और याद आ गया।

पन्द्रहवीं शती के मध्य भाग में तेलगु भाषा के एक कवि गौराना (६) ने 'नवनाथचरित्र' नामक द्विपद काव्य लिखा था। इसे

वहां रीतिबद्ध (क्लासिकल) काव्य के रूप में स्वीकार किया गया। अभी कुछ दिनों पहले इस काव्य का प्रकाशन संपादन तेलगु में प्रो. टी. कोटेश्वर राव ने किया है। गौराना ने हरिश्चन्द्र द्विपद नामक चम्पू काव्य की भी रचना की है। 'नवनाथचरित्र' में मीननाथ को शिव और पार्वती का पुत्र कहा गया है। इस काव्य की रचना की प्रेरणा गौराना को श्रीशैल के नाथ मठ के प्रधान भिक्षुकवृत्ति संत राय से मिली और उन्हीं की प्रार्थना पर श्रीशैल के उपासेय मल्लिकार्जुन को यह काव्य समर्पित भी किया गया। इस ग्रंथ में मीननाथ की सिद्धियों और चमत्कारों का भी वर्णन है। जिसका संबंध तेलगु समाज में शाङ्गधर की कथा से स्वीकार किया जाता है। यह कथा पूर्वी चालुक्य राजराज राजेन्द्र को केन्द्र में रख कर लिखी गई जिसने ११ वीं शती में तेलगुदेश के राजमहेन्द्रपुरम् (राजमहेन्द्र) पर शासन किया था। मीननाथ की कृपा से ही शाङ्गधर ने सिद्धि प्राप्त की थी। इस ग्रंथ में मीननाथ तथा उनके शिष्यों के द्वारा किये गए चमत्कारों और सिद्धियों का भी वर्णन है जिनमें परकायप्रवेश, रससिद्धि, वज्रदेह प्राप्ति आदि की गणना की जा सकती है। इस विवरण से मैं यह संकेतित करना चाहता हूं कि लगभग ६ठी–७वीं शती से लेकर १२–१३ वीं शती तक आंध्र का श्रीशैल विभिन्न प्रकार की तांत्रिक साधनाओं का प्रमुख केन्द्र था। रससिद्ध नागार्जुन का इससे संबंध प्रसिद्ध है। इस केन्द्र का बौद्ध तांत्रिक साधना के साथ–साथ शैव, शाक्त और कापालिक साधना से भी घनिष्ठ संबंध था। यह भी एक तथ्य है कि यह श्रीशैल क्रांतिकारियों और रूढ़िविरोधियों का गढ़ था। बुद्ध के महा निर्वाण के बाद उस अंधक निकास का प्रमुख केन्द्र यह श्रीशैल ही था जिसने स्थवि–वाद के विरुद्ध विद्रोह का झंड़ा सबसे पहले ऊंचा किया था। यहां कि साधना में कार्यविधि साधना भी थी जिसके उल्लेख बाणभट्ट और भवभूति ने भी किए हैं। भैरवानंद और कपालकुण्डला की साधना का केन्द्र यही था। गोरखनाथ के संप्रदाय के ग्रंथ गोरक्षसिद्धांत संग्रह से प्रमाणित होता है कि नाथ संप्रदाय का तंत्र–साधना से बहुत गहरा संबंध है और कापालिक भी नाथ संप्रदाय से विच्छिन्न नहीं हैं। काशी में शंकराचार्य को कापालिक ने ही पराजित किया था।

महाराष्ट्र के वारकरी संप्रदाय का अध्ययन करने वाले विद्वानों का स्पष्ट मत है कि इस संप्रदाय के विकास, विचार और संगठन में नाथ संप्रदाय का महनीय योगदान है। लोग जानते है कि ज्ञानदेवकालीन संत गोरा कुम्हार की साधु सभा में जब उसने अपनी थापी से संतों को ठोक–ठोकर उनके पक्के होने की परीक्षा ली तो नामदेव अपना क्रम आने पर बिगड़ खड़े हुए। ज्ञानेश्वर आदि ने उन्हें कच्चा घड़ा घोषित कर दिया था। उन्हें नाथपंथी विसोबा खेचर से दीक्षा की प्रेरणा दी। महाराष्ट्र का औंध या नागनाथ मठ नाथपंथी संत विसोबा खेचर का निवास स्थल था जहां वे नित्य खेचरी मुद्रा में रहा करते थे। जिस समय नामदेव वहां पहुंचे, विसोबा शिवलिंग पर पैर रखकर लेटे हुए थे। नामदेव से यह नहीं देखा गया तो उन्होंने उनकी असमर्थता देख कर स्वयं उनके पैर को हटाने का प्रयास किया। पैर के साथ–साथ शिवलिंग भी हटता गया तब नामदेव ने उन्हें पहचाना और दीक्षा ली। वारकरी संप्रदाय में यह दीक्षागत आदान प्रदान प्रचलित रहा है। ज्ञानेश्वर के पूर्व से ही यह प्रभाव बना हुआ था।

बंगाल में नाथकथा, मनसा कथा, बाउलकथा, धर्मकथा सब में किसी न किसी प्रकार अनुस्यूत है। प्रभूत साहित्य रचना हुई, आख्या काव्य लिखे गये। मैथिली में लोक प्रचलित मंत्रों तक में नैना योगिनी और गोरक्षनाथ का प्रभाव देखा जा सकता है। पंजाब में हीर–रांझा भी गोरखनाथ के संपर्क से मुक्त नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रांत की अलग–अलग नाथ कथा है।

## सम्पादकीय

वर्णाश्रम धर्म पर आधारित वैदिक समाज की व्यवस्था तब अनुपयुक्त सिद्ध होने लगी जब इन्हीं चार वर्णों के परस्पर सम्बन्धों में से एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिसका समावेश किसी वर्ण–विशेष के अन्तर्गत नहीं हो सकता था। 'अवर्ण' होने से इन को वैदिक यज्ञ–साधना में भी प्रवेश नहीं मिल सका। अतः वर्णाश्रम के साथ यज्ञप्रक्रिया का क्षीण स्वर में प्रारंभ हुआ विरोध, धीरे–धीरे प्रखर होने लगा।

पुराणों के साथ–साथ तांत्रिक उपासना का विकास हुआ और वेद की ही सर्जक, संहारक और पालक शक्तियों की तांत्रिक उपासना का प्रारंभ हुआ। चमत्कार तंत्र से जुड़ा हुआ था, अतः जिन्हें किसी साधना--पद्धति में प्रश्रय नहीं मिला वे वर्णाश्रम से बहिष्कृत हुए लोग इस ओर अधिक आकृष्ट होते चले गये। कोई शाक्त हुए, कोई शैवानुयायी हुए तो कोई कौल कहलाये। परन्तु तांत्रिक उपासना की नैष्ठिकता और ब्रह्मचर्य का कठोर संयम इतना आसान न था, साथ ही जरा–सी असावधानी भारी अनिष्ट कर सकती थी। इसलिए इस मार्ग को वाममार्ग कहा गया, सर्वसामान्य के लिये यह मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाया।

परन्तु तंत्र, वेदविरोधी नहीं थे, वेदों का विरोध तो बौद्ध और जैनों ने ही किया और अपने कल्याण का अलग मार्ग ढूँढ लिया। वर्णाश्रम से बहिष्कृत अथवा अतिवर्णाश्रमी व्यक्तियों को इन दोनों ने ही खुलकर प्रश्रय दिया। पर बौद्धों में भिक्षुणी–संघ के कारण पनप रहे अनाचार ने इसकी लोकप्रियता पर कई प्रश्नचिह्न लगा दिये। जैन–मत मूलतः विरक्तिपरक कठोर तपस्या और संयम भरे पथ को प्रशस्त करता था, पर धर्म के प्रवृत्तिमूलक स्वरूप

के व्यवहार–पक्ष पर जैनाचार्यों का चिन्तन सर्वाङ्ग–परिपूर्ण न होने से इस मत का धार्मिक आचार केवल साधुओं–मुनियों तक ही सीमित रहा। दर–असल इन दोनों ही धर्मों के आचार्यों ने अपना उद्देश्य निवृत्ति–मूलक ही रखा– मानव जीवन की उदात्तता और ऐहिक कल्याण पर इन्होंने विचार नहीं किया, केवल पारलौकिक कल्याण ही इनकी आधारशिला है। धर्म के प्रवृत्तिमूलक व लौकिक कल्याण की उपादेयता का विचार उन्होंने कम किया। अतः ऐहिक उपभोग से रहित संन्यास–अकाल संन्यास–इन धर्मों के व्यापक रुप से लोकाभिमुख न बनने का संभवतः सबसे बड़ा कारण रहा।

अब तक वैदिक व्यवस्था चरमरा गयी थी, जन सामान्य दिग्भ्रान्त था, विदेशियों का आगमन और अतिवर्णाश्रमी व्यक्तियों को विदेशियों के धर्म में धर्मान्तरित करने की प्रक्रिया का प्रारम्भ हो गया था। चारों ओर दिड्मूढता थी, ऐसे समय में गोरक्षनाथ का प्रादुर्भाव हुआ। वर्णाश्रम से अलग थलग पड़े लोग जो अनेक वेदेतर साधनाओं का आश्रय लेते अपने कल्याण की खोज में भटकते फिर रहे थे, उनके संगठन का कार्य, गोरक्षनाथ ने किया। उन्होंने शैव, शाक्त, कौल यहाँ तक कि मुसलमानों को भी अपने पंथ में स्वीकार किया। ये लोग रावल–पीर कहलाते हैं। आनेवाले समय में गोरक्षनाथ के अनुयायियों ने एक ऐसे समाज का निर्माण किया जो न हिन्दू था, न मुसलमान।

गोरक्षनाथ और नाथ संप्रदाय के विकास और उसके प्रभाव की व्यापकता की चर्चा करने वाले पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ–पंथ और भक्ति की विवेचना करनेवाले डा. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय या इनके सदृश अन्य मूर्धन्य विद्वानों ने राजस्थान में जन–जीवन को अत्यधिक प्रभावित करनेवाले नाथ संप्रदायों पर विशेष विचार नहीं किया है। बाप्पा रावल के गुरू हारीत ऋषि और लकुलीश संप्रदाय अथवा आबू के परमारों के नाथानुयायी होने का संकेत पं. द्विवेदी ने अवश्य किया है। परन्तु राजस्थान की पूर्व रियासतों द्वारा नाथों को दिये गये प्रश्रय, नाथ–विषयक साहित्य सर्जना, नाथों के आसनों/मठों की बहुलता अथवा नाथों की जीवन–पद्धति का यहां के जन–जीवन को प्राप्त अवदान पर कोई गंभीर चर्चा अब तक नहीं हो पाई है। राजस्थान के पांच पीरों का नाथमूलत्व या नाथप्रश्रयत्व, रामदेव

के समकालीन रावल मल्लीनाथ और उनकी पत्नी रांणी रूपांदे द्वारा प्रवर्तित नाथाश्रयी भक्ति मार्ग और उनके द्वारा किया गया दलित उद्धार का कार्य, नाथों के अत्यधिक प्रभाव से जोधपुर के शासकों द्वारा उन्हें दिया गया वैभव युक्त आश्रय और उससे हुआ जनसामान्य का उत्पीडन, नाथ महन्तों की परम्पराएं आदि विषय ऐसे हैं जिन्हें हम अछूते कह सकते हैं। इन विषयों पर कम से कम विचार का प्रारम्भ हो सके तथा पिण्ड–ब्रह्माण्ड की एकता में निष्ठा रखते हुए शरीर सिद्धि कर उसी में ब्रह्माण्ड का दर्शन करनेवाले योगियों के सामाजिक और साहित्यिक अवदान पर संशोधन के लिए अनुसंधित्सु प्रवृत्त हो सकें इस आशय से राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। चूंकि अधिकाश नाथ साहित्य पाण्डुलिपि के रूप में महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में सुरक्षित है तथा वह भी प्रकाश में आ सके इसलिये उनका सहयोग लिया जाना अपेक्षित ही था। उक्त संगोष्ठी में विद्वानों द्वारा पढ़े गये शोध आलेखों को जहां तक हो सका, अपने मूल रूप में, राजस्थान पुरातन ग्रंथ माला के इस पुष्प में प्रस्तुत किया गया है। विषयवस्तु के अध्ययन की दृष्टि से शोधपत्रों को १ साधना और दर्शन २ इतिहास ३ सामाजिक अवदान तथा ४ साहित्य–इस प्रकार चार खण्डों में वर्गीकृत किया गया है।

नाथ संप्रदाय के विषय में सर्वसामान्य धारणा है कि वह वेद विरोध का वह संगठित रूप है, परन्तु सत्य यह है कि नाथों की साधना पद्धति उपनिषदों का अनुसरण करती है। योगी आदित्यनाथ ने नाथ साधना का वेदानुयायित्व सिद्ध करते हुए योग और ज्ञान की परस्पर अनिवार्यता की स्थापना की है। उनके अनुसार इस साधना के दो उद्देश्य हैं– सिद्ध देह की प्राप्ति और स्वयं को नाथ–पद में अवस्थित करना। डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा का मानना है कि पातञ्जलयोग में हठयोग को सम्मिलित कर हुआ यौगिक प्रक्रियाओं का विकास ही नाथ साधना है।

नाथ साधना मूलतः ज्ञानमार्गी शाखा है, उसमें भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु परवर्ती समय में नाथों की गुरु निष्ठा से किस प्रकार लोक जीवन में नाथभक्ति का विकास हुआ इसकी चर्चा डॉ. ओंकारनारायण सिंह ने की है। मारवाड में नाथ

योगियों की वेषभूषा, प्रतीक एवं उनके अर्थ पर जहां माधो भारती ने प्रकाश डाला है, डॉ. राजेन्द्रनाथ पुरोहित ने मेवाड की नाथ परम्परा और मेवाड के शासकों पर नाथों के प्रभाव की चर्चा नवरात्रि–उत्सव के माध्यम से की है। वैसे राजस्थान के पूर्व शासक किसी न किसी रूप से नाथों से जुडे रहे हैं– वह प्रभाव सदियों तक बना रहा। मेवाड के शासकों द्वारा नाथ महंतों को भेजे जाने वाले खास रुक्के नाथों के वर्चस्व के प्रमाण के रूप में उदाहृत किये जा सकते हैं।

डॉ. सत्यप्रकाश दुबे ने नाथ और पांतञ्जल योग की तुलना प्रस्तुत की है। डॉ. अमलधारी सिंह ने वेद और गोरखवाणी के समानधर्मा उद्धरणों को देते हुए न केवल नाथदर्शन का वेदमूलत्व सिद्ध किया है, अपितु उसे परमात्मवादी वैदिक दर्शन कहा है। गोरक्षनाथ का 'सर्वमिति' को समझाने का तरीका भी 'नेति–नेति' की तरह ही है। नाथों की परमस्थिति या परमपद द्वैताद्वैतविनिर्मुक्त' न होकर सदानंदमय है, शिवशक्तियुक्त है।

नाथ मत और चिंतन का भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में एक व्यापक मूल्यांकन डॉ. बृजबिहारी चौबे ने प्रस्तुत किया है। डॉ चौबे नाथचिंतन को वेद विरोधी तो मानते ही हैं, पर जिन अन्यान्य मतों का सम्मिश्रण नाथों के अन्तर्गत हुवा उनमें उपभोगवादी यक्ष संस्कृति का भी उन्होंने अन्तर्भाव माना है। बौद्धों के वज्रोली संप्रदाय का भी वे नाथों पर अनन्य प्रभाव मानते हैं। इस संबंध में प्रश्न किया जाता है– क्या नाथ परंपरा बौद्ध – सिद्ध परंपरा का ही विकसित रूप है ? इस मान्यता का खण्डन डॉ नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने किया है। इनके अनुसार नाथों के द्वारा किया गया स्त्री–संगति का विरोध, उनकी चमत्कारिक सिद्धियां और कौलाचार–मूलत्व उन्हें बौद्धसिद्धों से अलग करते है, अतः नाथों को शैव या शैवशाक्त कहना अधिक समीचीन होगा। एक निश्चित सीमा तक सहजिया बौद्धों से इनकी समानता प्रतिपादित की जा सकती है। परन्तु नाथ साधना में स्त्री–प्रवेश अपेक्षाकृत अधिक परवर्ती है।

मेवाड़ के बाप्पा रावल और हारीत ऋषि की चर्चा प्रसिद्ध है। हारीत ऋषि की तरह अनेक नाथ योगियों ने आबू के परमारों

व जालौर के चौहान शासकों के गुरुपद को विभूषित किया है। राजस्थान में इनके व्यापक प्रभाव की चर्चा का सुखद सूत्रपात इस संगोष्ठी में हुवा। मेवाड़ और मारवाड़ के शासकों ने प्रभूत मात्रा में नाथ योगियों को प्रश्रय दिया, जगह जगह पर उनके आसन कायम हुए जिनके व्यय और सुरक्षा का दायित्व शासकों ने उठाया। डॉ. ब्रजमोहन जावलिया ने मेवाड के नाथ आसनों की समग्र चर्चा करते हुए राज्य द्वारा उनके नाम जारी किए गये पट्टे आदि का विस्तार से उल्लेख किया है। मारवाड के शासक महाराजा मानसिंह ने समस्त भारत के नाथ–आसनों की विगत तैयार कराई थी। पुस्तक प्रकाश में सुरक्षित इस बही के आधार पर डॉ. सोहन कृष्ण पुरोहित ने राजस्थान के १६ वीं शती के नाथ–आसनों और पंथों का प्रथम दृष्टि परिचय प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार बीकानेर क्षेत्र के नोहर मठ, नाथ सागर, नवल नाथ मठ, शालू नाथ मठ, बीड स्थित भानीनाथ का मठ तथा जसनाथी मठ आदि आसनों का रोचक परिचय श्री जीवनराम मीणा ने प्रस्तुत किया है।

सुवर्णगिरि या कंचनगिरि नाम से प्रसिद्ध जालोर 'जलन्धरनाथपीठ' नाम से विख्यात है। यहीं पर जलन्धरनाथ ने तपस्या की थी ऐसी मान्यता है। यहां पर स्थित सिरेमंदिर, भ्रमरगुफा तथा रत्नेश्वर महादेव आदि रमणीक स्थलों का डॉ. भगवतीलाल शर्मा ने कवितामयी भाषा में विवरण प्रस्तुत किया है। जलन्धरनाथ–पीठ पर इन्हीं की हाल ही में एक शोधपूर्ण पुस्तक भी प्रकाशित हुई है जिसमें मानसिंह और जालौर–विषयक उनकी आस्था का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। मानसिंह से पूर्व भी अनेक शासक नाथ महंतों के शिष्य रहे हैं। उनकी नाथ–भक्ति तथा नाथों से उन्हें मिले कृपाप्रसाद की चर्चा डॉ. हुकम सिंह भाटी ने की है। नाथों की रावल पीरों की शाखा एवं उनकी वर्तमान स्थिति व श्री मदननाथ रावल द्वारा की गई चर्चा उपयोगी बन पडी है।

लगभग ६–१० वीं शती से राजस्थान में नाथ संप्रदाय की मान्यताओं में जनता विश्वास करने लगी थी। दूसरे शब्दों में नाथों ने यहाँ के समाज को अत्यधिक प्रभावित किया है। रामदेव का नाथानुयायी होना स्वयंसिद्ध है। उन्होंने अपनी वाणियों में नाथों

के सिद्धान्त पक्ष को अधिक महत्व दिया। डा. सोनाराम विश्नोई द्वारा नाथ संप्रदाय के आलोक में की गयी पंचपीरों की चर्चा नाथों के सामाजिक अवदान की दृष्टि से विशेष उपादेय है। इसी को आगे बढ़ाते हुए पं. दीनदयाल ओझा ने धर्म, व्यवहार, साहित्य, कला और सधुक्कड़ी या निर्गुण संप्रदाय के संतों की भाषा के विकास पर विचार किया है। नाथों की उलट–बांसी शैलो ने संतों को बहुत प्रभावित किया है। मारवाड़ में नांथों के प्रभाव से विकसित गिरि, पुरी, भारती, गुसांई आदि जातियों तथा साहित्य पर हुए प्रभाव को पं. रामदत्त थानवी ने गोरखवाणी के आधार पर चित्रित किया है।

नाद को ब्रह्म मानने वाली भारतीय संगीत साधना से नाथ भी अछूते नहीं रह सके हैं। डा. श्रीमती पंकजमाला शर्मा ने गोरख कल्याण या जोगिया आदि रागों की चर्चा करते हुए यह भी प्रतिपादित किया है कि नाथ चिह्नों में सारंगी, सिंगी या किंगरी वाद्यों का सम्मिलित होना ही नाथों की यौगिक साधना में संगीत के महत्व को प्रमाणित करती है। घूम–घूम कर गाने वाले नाथ योगियों को 'पैरिया' कहा जाता है। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान तर्कतीर्थ पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी के गुरु स्वांमी कैवल्यानंद सरस्वती ने १६५५ में वाई *(महाराष्ट्र)* में पं बी. एन. क्षीरसागर की रात भर हुई गान–सेवा में न जाने किसी क्षण नाद ब्रह्म में लीन होकर शरीर त्याग कर चिर–समाधि ली थी। ऐसे अन्य उदाहरण भी मिल सकते हैं।

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के संग्रह में सुरक्षित 'हठयोगप्रदीपिका सिद्धान्तरत्नावली' (सं ६७५६) अब तक उपलब्ध हठयोगप्रदीपिका की प्रतियों में विस्तृत व अधिक विषय–सामग्री को संजोये हुए है। डा. एम. वेंकट रेड्डी ने इस ग्रंथ पर पर्याप्त विचार किया है। इसी विषय की अधिक विस्तार से चर्चा करते हुए डा. एम. एल. घरोटे ने अन्य प्रदीपिकाओं से इस प्रति की तुलना करते हुए विषय–वस्तु पर अधिक प्रकाश डाला है।

नाथ शैव है, शैवशाक्त है या शाक्त है इस प्रश्न पर काफी ऊहापोह किया जाता है। हठ प्रदीपिका पर कौल संप्रदाय के प्रभाव को भी स्वीकार किया जाता है। पं. गोविन्दलाल श्रीमाली ने कौल–

साधना की नाथ साधना से तुलना करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि गुह्यता, वेद का उपहास, वर्णाश्रम का विरोध करते हुए दोनों ही उपासनाएं भोग–मोक्ष को करस्थ मानती है। परन्तु कौलाचार्य नारी को योग का साधन मानते हैं और नाथ कुण्डलिनी को साधन मानते हैं। नाथों ने कौलों के आचारमार्ग को नहीं अपनाया वरन् उसमें परिष्कार कर उसे नैतिकता प्रदान करने की चेष्टा की है। अतः हठप्रदीपिका पर कौल–प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी नारी के स्थान पर कुण्डलिनी को साधन के रूप में प्रतिष्ठित कर नाथ–योगियों ने आचार–मार्ग में नीतिमत्ता की स्थापना का श्लाघनीय प्रयास किया है।

जोधपुर के शासक महाराजा मानसिंह (१८०३–४३) आयस देवनाथ के शिष्य थे और स्वयं निष्ठावान् भक्त थे। उन्होंने नाथ चरित्र जैसे बृहत्काय ग्रंथों की रचना की है। उनके आश्रय में नाथानुयायी साहित्य की अनेक रचनाएं हुई हैं। उनमें से मुण्डकोपनिषद् की विद्वज्जनमनोरंजनी टीका का अनुशीलन डा. श्रीकृष्ण शर्मा ने किया है। टीकाकार की मान्यता के अनुसार योग ब्रह्मविद्या का अपना स्वरूप है। डा. शर्मा ने टीकागत ॐ, अवधूत, समित्पाणि आदि पदों के विशेष अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए योगविद्या के परावरत्व का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है। महाराजा मानसिंह ने संस्कृत के साथ–साथ हिन्दी राजस्थानी की रचनाएं कर भी सरस्वती का भण्डार समृद्ध किया है। मानसिंह–साहित्य के अधिकारी विद्वान् डा. रामप्रसाद दाधीच ने इन रचनाओं का सर्वेक्षणात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार मानसिंह के नाथ–साहित्य में दार्शनिक तत्वों के अलावा भक्ति के सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों का सुंदर विवेचन हुआ है। मानसिंह के गुरुपुत्र आयस लाडूनाथ की प्रशस्ति में रींवदान की लिखी सिद्धराज सतसई के आधार पर देवनाथ की वंश परम्परा, लाडूनाथ के चरित्र तथा उनके द्वारा कवियों को दिये गये 'लाख पसावों' की चर्चा डा. शक्तिदान कविया ने की है। नाथयोगी जालन्धरनाथ की प्रशस्ति में लिखे गये साहित्य में से जलंधर गुणरूपक, जंलधरजसवर्णन और जंलधरनाथरूपग इन तीन रचनाओं पर समीक्षात्मक शोधपत्र लिखे हैं, डा. विक्रमसिंह, डा. भगवतीलाल व्यास और डा. मनमोहन माथुर ने। यद्यपि इन रचनाओं का प्रतिपाद्य जलंधरनाथ माहात्म्य का वर्णन

करना है पर जंलधरगुणरूपग में राठौड़ सुजन विनोद और जालप मीणा का प्रसंग अतिरिक्त है। जंलधरजसवर्णन केवल आयस देवनाथ और मानसिंह के गुरूशिष्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। सेवक संतोकीराम कृत जंलधनाथ–रूपक में मैनावती, वीरमदे–शहजादी प्रसंग तथा महामंदिर के निर्माण के संबंध में कुछ जानकारी उपलब्ध होती है।

डा रमेशचंद मिश्र ने गोरखवाणी के क्षेपकों, प्रतिपाद्य और उलट–बांसी शैली का निरूपण किया है। उनके अनुसार गोरख के उपदेश व्यक्तिके व्यक्तित्व का और समाज का सुधार करने की दृष्टि से किये है। समाज में नैतिकता की स्थापना गोरखनाथ का साध्य है, केवल पिण्ड में दर्शन कर आत्मकल्याण का नहीं। डा. देवेन्द्र ने मलिक मोहम्मद जायसी के पद्मावत काव्य पर तथा उसके माध्यम से तत्कालीन समाज पर हुए नाथों के व्यापक प्रभाव की चर्चा की है। कृष्ण और गोरख का संवाद, दूती का योगिनी के वेष में भेजा जाना अथवा अन्यान्य चमत्कारिक सिद्धियों के काव्यगत प्रसंग तत्कालीन समाज पर हुए नाथों के प्रभाव को इंगित करते हैं।

राजस्थान के पाँच पीरों की तरह विश्नोई सम्प्रदाय के संस्थापक जाम्भोजी महाराज ने भी कई नाथयोगियों को आशीर्वाद देकर उपकृत किया है। इतना ही नहीं, नाथवाणियों के अंतर्गत जाम्भोजी के अनेक पद ढूँढ़े गये हैं। इनकी चर्चा श्री कृष्णलाल विश्नोई ने की है। डा. मंगलाराम विश्नोई का यह मानना है कि जाम्भोजी ने नाथों अथवा उनके अनुयायियों को भक्ति की ओर प्रवृत्त कर उनमें आचरण की शुद्धता और सात्विक वृत्ति से रहने पर बल दिया। डा. सर्वेश शर्मा ने सिद्ध साहित्य में प्रयुक्त चंद्र–सूर्य, ईडा–पिंगला, घोड़ा–सवार, ताला–कूंची आदि प्रतीकों की चर्चा करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि उलट–बांसी शैली वेदमूलक है और उसका पर्याप्त विकास नाथ–परम्परा के साहित्य में ही संभव हुआ है।

नाथ–साधना और दर्शन, उनके विकास का इतिहास, आसन और मठों की विगत, नाथों के सामजिक अवदान, समाज पर हुए व्यापक प्रभाव तथा नाथ–विषयक साहित्य की चर्चा करने वाले तथा संगोष्ठी में प्रस्तुत किये/पढ़े गये इन शोधपत्रों को शोध समीक्षकों के अवलोकन व चिंतन के लिए यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

परंतु इस सारी चर्चा को नाथ–संप्रदाय के इतिहास, साधना और साहित्य परक शोध का प्रारम्भमात्र कहना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। महाराजा मानसिंह के आश्रय में लिखा गया विपुल नाथ–साहित्य, उपनिषदों पर लिखी गई नाथान्वयी टीकाएं, सहस्राधिक नाथ स्तोत्र, राजस्थान की नाथ–परम्परा से संबद्ध योगियों के उपदेश –वाणियां, नाथ–साहित्य पर आधारित चित्रांकन की महती परंपरा, नाथों के आसन और उनके उत्तराधिकारियों का इतिहास एवं राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में नाथों की भक्ति में रचित अगणित गेय पद आदि सामग्री का अन्वेषण और अनुशीलन करने का बहु–आयामी कार्य अभी प्रारंभ होना बाकी है। इस प्रयत्नसाध्य कार्य के मंगलाचरण के रूप में नाथ संप्रदाय और साहित्य पर आयोजित सगोष्ठी के आलेखों को आपके समक्ष प्रस्तुतं करना मुझ जैसे अकिंचन साहित्य सेवी के लिए निश्चय ही गौरव की बात है। यह अवसर उपलब्ध कराने के लिए मैं माननीय श्री आनंद कुमार जी का ऋणी हूं। यह प्रस्तुति नाथ–साहित्य के अध्ययन में विद्वानों/छात्रों को प्रेरित कर सकेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

डा. डी. बी. क्षीरसागर

## नाथों की साधना पद्धति

योगी आदित्यनाथ

नाथयोग साधना से तात्पर्य परम्परा प्राप्त उस महायोग ज्ञान सम्पन्न योग साधना से है, जिसके क्षीरसागर के तट पर सप्तशृंग पर आदिनाथ शिव द्वारा भगवती पार्वती के प्रति उपदिष्ट किया गया है, जिसका श्रवण कर योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ ने उस महायोगज्ञान के ग्रहण और प्रचार के लिए महायोगी गोरखनाथ को सत्पात्र स्वीकार किया। इस प्रकार उस महायोग ज्ञान का गोरखनाथजी ने पोषण किया। यह महायोगज्ञान शिव–विद्या अथवा महाविद्या है। इस नाथ विद्या के सम्बंध में आदिनाथ शिवजी ने स्वयं कहा है–

"शिव विद्या महाविद्या गुप्ता त्यागे महेश्वरी।"

नाथ सम्प्रदाय के मान्य ग्रंथों में नाथ शब्द के शाब्दिक और दार्शनिक अर्थ मिलते हैं। गोरक्षसिद्धांतसंग्रह के अनुसार नाथ वह तत्व है, जो अनादि रूप है तथा भुवन त्रय की स्थिति का कारण है। दूसरे विद्वानों के अनुसार नाथ वह तत्व है, जो मोक्ष प्रदान करता है तथा अज्ञान का विनाश करता है। नाथ सम्प्रदाय से सम्बद्ध साहित्य में उपर्युक्त नाथ शब्द के दो अर्थ हैं– परमतत्व या ब्रह्म गुरु। गोरक्षसिद्धांतसंग्रह के अनुसार सृष्टि–स्थिति लय की प्रक्रिया में शक्ति विश्व का सृजन करती है। शिव उसका परिपालन करते हैं, काल उसका संहार करता है तथा नाथ मुक्ति देते हैं। इस नाथ के तीन रूप माने गये हैं। अद्वैत परवर्ती नाथ प्राप्य देवता है, निराकार ज्योति रूप नाथ ध्येय है तथा आदि गुरु के रूप में साकारनाथ उपास्य है। अद्वैत परवर्ती नाथ दो प्रकार की

सृष्टि के मूल हैं– १– नाथ रूपा, २– बिन्दु रूपा।

नाथ सम्प्रदाय उन साधकों का सम्प्रदाय है जो नाथ को परमतत्व स्वीकार कर उनकी प्राप्ति के लिए योग साधना करते हैं तथा दीक्षा के बाद नाम के अन्त में नाथ उपाधि जोड़ते हैं।

नाथपंथ या नाथ सम्प्रदाय के अवधूत मत, योग मत, योग सम्प्रदाय इत्यादि नामकरण सिद्धांत, दर्शन और साधना को ध्यान में रखकर किये गये हैं। गोरखनाथजी द्वारा प्रचारित नाथमत में हठयोग की साधना का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि उसका लक्ष्य राजयोग है। नाथों के साधन में मुद्रा शब्द बहुत प्रचलित है। मुद्रा शब्द कान में पहने जाने वाले एक विशेष प्रकार के कुण्डल के अर्थ में भी प्रयोग होता है जो दीक्षा के समय पहनाया जाता है।

नाथों की परम्परा में आदिनाथ शिव को सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है और उन्हीं से सभी योग–रहस्यों का निस्सरण माना जाता है कि नाथ सिद्धों की साधना का लक्ष्य अमरता से शिवत्व की प्राप्ति है। नाथ सम्प्रदाय जन्म और मृत्यु की सत्यता में विश्वास करता है तथा परिवर्तनशील भौतिक शरीर को सूक्ष्म वायव्य शरीर में द्रव्यान्तरित कर तथा उसे पुनः दिव्य देह में रूपान्तरित कर जन्म मृत्यु चक्र का निवारण कर सकता है। नाथों में जन्म–मृत्यु चक्र से समन्वित इस भौतिक शरीर द्वारा यौगिक प्रक्रिया का आग्रह विशेष है। नाथों में शैव परम्परा के अनुसार शिव निष्क्रियता, स्थिरता, अचलता, अमरता और परमार्थ के प्रतीक हैं। ऐसी व्यवस्था में नाथयोगियों ने अपनी प्रकृति के अनुसार अमरता, विराग आदि प्रतीक को ग्रहण किया तथा शक्ति को बलात् आक्रांत कर अपनी साधना के अनुकूल नियंत्रित कर उस पर विजय प्राप्त की।

नाथपंथी योगियों के दो वर्ग हैं, एक कनफटा है और दूसरा औघड़। औघड़ लोग नाथ सम्प्रदाय की सम्पूर्ण दीक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं होते हैं। दीक्षा की अंतिम प्रक्रिया उनकी नहीं होती है। अपने नाम के अन्त में नाथ के स्थान पर दास शब्द का प्रयोग करते हैं फिर भी वे अपने को नाथपंथी कहते हैं तथा गोरखनाथजी के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। नाथमत पाशुपत

शैवमत है। इस नाथमत में गोरखनाथजी का मत प्रधान है तथा उनमें भी कनफटा मत मुख्य है। कापालिक, लकुलीश, अघोरी जैसे पाशुपत शैव मतों का अधिकांश अर्थ नाथमत में अन्तर्भुक्त हो गया है। इन तीनों मतों में तांत्रिक तत्व अधिक थे तथा इनकी अधिकांश साधना पद्धति शाक्तों से मिलती–जुलती थी। अतः इनके नाथ मत में अन्तर्भुक्त होने से नाथों में इस समय भी कुछ तांत्रिक शक्तितत्व लक्षित होते हैं। कुछ लोगों ने इन तांत्रिक तत्वों को देखकर नाथों को तांत्रिक शैव कहा है।

नाथपंथियों का साधना दर्शन परवर्ती उपनिषदों से सम्बद्ध है। वे वेद का उस प्रकार विरोध नहीं करते, जैसा समझा जाता है। केवल वैदिक कर्मकाण्ड को न स्वीकार करना अवैदिकता है तो ऐसी स्थिति में भारत के अनेक धर्म और दर्शन अवैदिक और वेदबाह्य हो जायेंगे। जहां तक तांत्रिकता का प्रश्न है नाथों में तांत्रिक तत्व मिलते हैं तथा वेद और तंत्र बहुत भिन्न नहीं है। नाथों की साधना–पद्धति तथा दर्शन के अधिकांश तत्व वेदों से सम्बद्ध किये जा सकते हैं।

नाथमत दया, संतोष, अहिंसा, दान, जीवदया आदि कर्म और गुणों का परिचय देते हैं। नाथों की दृष्टि में योग का मूलतत्व है, दया और दान। नाथों को साधना मार्ग में अग्रसर होने के लिए गुरुकृपा व दया की आवश्यकता पड़ती है। बिना गुरु की कृपा और दया के, साधक अनेक बाधाओं का अनुभव कर सकता है और साधना की फलसिद्धि उसके लिए प्रायः दुर्लभ ही बनी रहती है। नाथयोग–साधना में निरंजन पद की प्राप्ति कराने में गुरुकृपादृष्टि अमोघ साधन है।

नमः शिवाय गुरवे नादबिन्दुकलात्मने।
निरंजनपदं याति नित्यं यत्र परायणः।

नाथों की साधना का आरम्भ गुरुतत्व से होता है। गुरुतत्व का योगसाधना से अतिघनिष्ठ सम्बंध स्वीकार किया गया है। कारण यह है कि साधक को इसमें अनेकानेक रहस्यमय, अपरिचित तथा कठिन मार्ग पर चलना पड़ता है जिनमें आंशिक असावधानी तथा अज्ञान से शिष्य के रुग्ण होने या उसकी प्राणहानि होने तक

की आशंका की जा सकती है। नाथों की साधना–पद्धति में पिंड के समरसीकरण को स्वीकार किया गया है। यह परमपद में समरसीकरण गुरु की कृपा से होता है। वही पिंडपद और परमपद का ज्ञान कराता है। केवल शास्त्रज्ञान या महापोह से इनका ज्ञान नहीं होता है। इस परमपद को स्वयं वेद्य कहा गया है। गुरुचरणों में रत रहने से इस स्वयंवेद्य परमपद की सिद्धि सम्भव बतलाई गयी है। केवल इसी साधना से योगियों को स्वपिंड के निरुत्थान का अनुभव होता है। तत्पश्चात् समरसीकरण की सिद्धि होती है। शौच, उदर–क्रिया स्वभावज्ञान, अभ्यास, आसन, वैराग्य, अनाहार, प्राणधारण, मुद्रा, कायाक्लेश, जप, तप, ध्यान, तीर्थसेवन, देवार्चन, भक्ति, आश्रमपालन, षड्‌दर्शन, केशधारण, मुंडन, आदि दैहिक साधनों से परमपद की प्राप्ति कदापि नहीं होती। सिद्धपुरुष अदैहिक साधनों का आश्रयण कर परमपद की प्राप्ति सिद्ध करते हैं। अदैहिक साधनों में स्थिति गुरु की कृपा से होती है इसलिए गुरु से बड़ा कोई नहीं है।

गोरखशतक के उपदेश में योग और तंत्र का मिश्रण है। नाथों ने पहले अपने सिद्धांतों के अनुसार योग–साधना का विकास किया। इन क्रियाओं का एक विकास मंत्र योग के रूप में तथा दूसरा हठयोग के रूप में हुआ। नाथों में हठयोग के साथ–साथ राजयोग और कुण्डलिनी योग का विचार और समन्वय मिलता है। हठयोग में प्राण नियमन को प्रधानता दी गयी तथा शरीर के अंगों के नियंत्रण के विभिन्न अभ्यास भी उसमें सम्मिलित किये गये। इस साधन में आसन, मुद्रा, प्राणायाम, व्यक्ति, चक्र, नाड़ी, कुण्डलिनी, आदि से सम्बंधित अभ्यास गृहीत हैं। साधना की दृष्टि से नाथों ने आसन को भी महत्व दिया है। मुद्रा और बन्ध में भी आसन के तत्व मिलते हैं। इसका सम्बंध प्राणायाम के विभिन्न प्रकारों से भी जोड़ा गया है।

नाथमत योगसाधना को तथा योगी को सर्वश्रेष्ठ मानता है। तंत्रमहार्णव में बताया गया है कि योगी ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश है। वही पूर्ण मोक्ष है। वही सृष्टिकर्ता और हर्ता है। षोडशनित्यातंत्र में कहा गया है कि तंत्रों के उपदेशक नाथ ही हैं। नवनाथों ने तंत्रों की रचना की है। तांत्रिक अनुष्ठान का फल योग ही

है। अन्तर यह है कि तांत्रिकों का अनुष्ठान बहिरंग होता है। इसके पश्चात् वे अवधूत पद को प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म शक्ति कुण्डलिनी की पूजा करते हैं। प्रकृति के सभी विकारों का अवधूतन करने वाला सिद्ध ही अवधूत है। अवधूत योगी ही सद्गुरु पद को प्राप्त कर सकता है।

नाथों की साधना पद्धति में पिंड व ब्रह्माण्ड एकत्ववाद का सिद्धांत मान्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पिण्ड ज्ञान आवश्यक है। सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कहा गया है कि साधक को पिण्डगत नव चक्र, षोडश आधार, तीन लक्ष्य, पंचव्योम आदि अवश्य जानना चाहिये। इसी प्रकार आगे कहा गया है कि जो साधक पिण्डगत एक स्तम्भ, नवद्वार, पंचदेवता आदि को नहीं जानता, वह सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। पिण्ड के अन्तर्गत जो कुछ भी है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त रूप या प्रतीक है। इसमें देवता, परमतत्व, पाताल, ब्रह्माण्ड, कलाएं, वर्ण, उपवर्ण, द्वीप, समुद्र, खण्ड, पर्वत, उपपर्वत, नदियां, उपनदियां, नक्षत्र, राशियां, नवग्रह, तिथियां, तारामण्डल, दानव, यक्ष, राक्षस, भूत–प्रेत, मुनिगण, मातृ–शक्तियां, मेघ, तीर्थ, अनन्त, सिद्ध, चन्द्र, सूर्य, कृमि–कीट, पतंग, सुख–दुःख, मुक्ति, शांति, सभी निवास करते हैं।

नाथों की साधना पद्धति में समरसीकरण के लिए योग रहित ज्ञान और ज्ञान रहित योग की निरर्थकता बताते हुए योग युक्त ज्ञान को ही मोक्षोपाय के रूप में स्वीकार किया गया है। दो प्रकार के देह में अपक्व देह को योगहीन कहा गया है। अपक्वदेह शीतोष्ण, सुख–दुःख आदि व्याधियों से पीड़ित रहता है। उसका मन चंचल तथा क्षुब्ध रहता है। इस देह को विजित करने का एक मात्र उपाय योग है। योग से स्थूल तथा जड़ से भी जड़ शरीर सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता है। योग साधना के बल से परिपक्व देह मृत्यु पर विजय प्राप्त करती है। किन्तु ज्ञान के बिना मुक्ति उपलब्ध नहीं होती है और न ही योग–सिद्धि प्राप्त होती है। नाथ योगियों का मुख्य लक्ष्य ऐसे देह की प्राप्ति है जिसका पतन न हो जिसके बाहर प्राण न जाता हो। उनका लक्ष्य वह अवस्था है जिसमें शरीर भी ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। शरीर चिन्मय हो जाता है और फिर अनन्यता की उपलब्धि होती है। यह पिण्ड सिद्धि परमपद की प्राप्ति का अनिवार्य सोपान है।

सिद्ध देह की प्राप्ति के लिए योग ही उपाय है। नाथयोगी हठयोग को प्रधानता देते हैं। हठयोग से ही राजयोग की सिद्धि होती है। प्राणायाम में इसका अधिकतम महत्व है। इससे नाड़ी शुद्धि भी होती है। हठयोग आधिभौतिक साधन है। योग की दो धाराएं हैं– ध्यान योग और कुण्डली योग। ध्यान योगी हठयोगी की तरह स्थूल शरीर से सम्बंधित नहीं रहता। एक सफल ध्यान योगी शरीर एवं स्वाथ्य से क्षीण, दुर्बल, अल्पायु और रोगी हो सकता है। उसकी मृत्यु का निश्चय वह नहीं, अपितु उसका शरीर करता है। वह सांसारिक और शारीरिक पीड़ाओं से मुक्ति केवल मृत्यु प्राप्त होने पर ही प्राप्त कर सकता है। हठयोग की सामान्य क्रियाओं से सिद्धदेह की प्राप्ति होती है। हठयोगी एक ऐसे शरीर की प्राप्ति करता है जो वज्र लौह के समान कठोर, स्वस्थ, रोगमुक्त और दीर्घायु होता है। हठयोगी शरीर का स्वामी होते हुए भी जीवन और मृत्यु का स्वामी होता है। नाथयोगियों के षडंग योग में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि की गणना की जाती है। इन साधनों के अलग अलग फल भी होते हैं। आसन से स्थिरता, प्राणायाम से नाड़ी शुद्धि, प्रत्याहार से मानसविकारों का नाश, धारणा से मानस धैर्य की प्राप्ति तथा समाधि से मोक्ष की प्राप्ति होती है। नाथयोगसाधना से पातंजलि योग के यम, नियम के अन्तर्गत गिनाये गये संयमों को सभी के लिए अनिवार्य माना गया है। अतः उन्हें अंगों के रूप में स्वीकार्य नहीं करते हैं। ये नैतिक ब्रह्मचर्य सम्बंधी आचार और संयम योग में दीक्षित, अदीक्षित सभी के लिए आवश्यक है।

यम, नियम अभ्यास के बाद हठयोग का वास्तविक आरम्भ होता है। यद्यपि हठयोग का मूल तत्व प्राणायाम है, पर आसन स्थिर और सिद्ध हो जाने के बाद ही प्राणायाम का विधान है। हठयोग में हठ शब्द दो अक्षरों 'ह' और 'ठ' से मिलकर बना है जिसमें ह का अर्थ है सूर्यनाड़ी या पिंगला तथा 'ठ' का अर्थ है चन्द्र नाड़ी या इड़ा है। हमारे शरीर के सभी शारीरिक अवयवों की क्रियाएं ज्ञान, भावना, इच्छा, और क्रिया तत्वों के सभी कार्य तथा सभी आंतरिक चेष्टाएं, चाहे स्वेच्छा से हो या अनिच्छा से, चाहे चेतन से हो या अचेतन स्थिति में, यह सभी कुछ नाड़ी मण्डल के द्वारा, जिनकी संख्या बहत्तर हजार है, संयमित एवं

नियोजित होती है। यह नाड़ी मण्डल भी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्वुषा, कुहु, तथा शंखिनी दस प्रमुख नाड़ियों से सम्बद्ध और शासित है। इड़ा तथा पिंगला क्रमशः बांये-दांये नथुनों के द्वारा प्रवाहित होती हैं। सुषुम्ना सूक्ष्म केंद्रिय नाड़ी है जो कि पृष्ठ प्रदेश के निम्नतम से उच्चतम सीमांतों तक गुजरती है और एक विशेष बिन्दु पर इड़ा तथा पिंगला नाड़ी से मिलती है जिन्हें चक्र कहते हैं। इसी प्रकार गान्धारी बायें आंख में, हस्तिजिह्वा दांये आंख में, पूषा दक्षिण कर्ण में, यशस्विनी बायें कर्ण में, अलम्वुषा मुख में कुहु लिंग देश में तथा शंखिनी मूलस्थान पर स्थित मानी गयी है।

शरीर के भीतर कार्य करने वाली सभी प्राण शक्तियां, प्राण अपान समान, उदान और व्यान, इड़ा और पिंगला के सुचारु क्रिया शीलता और श्वास क्रिया की नियमित व्यवस्था पर अवलम्बित है। शरीर के भीतर होने वाली प्रायः सभी महत्वपूर्ण क्रियाएं सामान्यतः हमारे नियंत्रण या इच्छा से ही नहीं, स्वतः होती हैं। इन सभी को अपनी इच्छा शक्ति और विवेक से संयमित करना ही हठयोग का लक्ष्य है। इड़ा और पिंगला का सुषुम्ना से, प्राण और अपान की वायु की जीवनी शक्ति के केंद्र बिंदु और रज की सम्पूर्ण मानसिक, शारीरिक शक्ति के केन्द्र बिन्दु से और अन्ततः चेतना की उच्चतम स्थिति में शिव और शक्ति की एकता स्थापित करना हठयोग की साधना का अन्तिम लक्ष्य है।

सिद्धसिद्धांतपद्धति में कहा गया है कि प्राणायाम प्राण की स्थिरता है। रेचक और कुम्भक तथा पूरक इसके लक्षण हैं। प्राण अहंकार के साथ बाहर हो जाता है तथा राकार के उच्चारण के साथ पुनः प्रवेश करता है। हंस-हंस इस मंत्र का जाप जीव सदैव करता रहता है। रात और दिन मिलाकर कुल २६६०० वार जप करता है। इसी को अजपा नाम की गायत्री कहते हैं जो मोक्षदायिनी है। प्राणायाम के अभ्यास से यदि पवन को गगन में प्रेरित किया जाय तो घण्टा, बाधादिकों की ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, तथा सिद्धि प्राप्ति की संभावना प्रबल हो जाती है।

प्राणायाम का सम्बंध तीन मुख्य बन्धों से भी जोड़ा गया है। ये हैं- मूलबंध, उड्डीयानबन्ध तथा जालन्धरबन्ध।

उड्डीयानबन्ध को कुम्भक और रेचक के अन्त में करना चाहिए। इससे सुषुम्ना में बद्ध होने के कारण प्राण उड़ता है इसीलिए इसे उड्डीयान बन्ध कहते हैं। इसी प्रकार पूरक के अन्त में जालन्धरबन्ध करना चाहिए।

नाड़ी, बन्ध आदि के अतिरिक्त कुण्डलिनी साधन से भी प्राणायाम का धनिष्ठ सम्बंध है। यह क्रिया कुण्डलिनी जागरण तथा चिंतन की स्थिरता दोनों में सहायक होती है। नाथयोगियों का मत है कि प्राण की चंचलता से चित्त चंचल होता है तथा चित्त के चांचल्य से बिन्दु चंचल होता है। अतः दोनों की स्थिरता के लिए प्राणायाम आवश्यक है।

प्राणायाम के बाद षडंगयोग में प्रत्याहार का स्थान आता है। मानस का सभी विकारों से प्रत्याहरण ही प्रत्याहार का लक्षण है। प्रत्याहार के बल से ही मन और प्राण तथा बिन्दु वश में होते हैं और चित्त की वृत्तियां निरुद्ध होकर आत्मा परमात्मा के एकीभूत स्वरूप में तल्लीन हो जाती हैं। प्रत्याहार के साधित होने पर चित्त सर्वथा विकारमुक्त हो जाता है।

षडंगयोग में चतुर्थ अंग धारणा है। धारणा में बाह्य और अन्तस् के एक मात्र निजतत्व स्वरूप का अन्तः करण से साधन किया जाता है जो कुछ भी उत्पन्न होता है उसे निराकार में धारणा–जीवात्मा का निर्वात दीप की तरह धारण आदि धारणा के लक्षण हैं। धारणा से मानस स्थैर्य की प्राप्ति होती है। धारणा पाँच प्रकार की होती है– क्षिति धारणा, वारुणी धारणा, वैश्वानरी धारणा, वायवी धारणा, और नभी धारणा। इन पाँच प्रकार की धारणाओं के नाम से ही स्पष्ट है कि इनका पंचभूत तत्व (पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश) से सम्बध है।

नाथों की साधना पद्धति में कुण्डलिनी और कुण्डलिनी–जागरण के परिचय के लिए आसन, प्राणायाम तथा षट्चक्रों का ज्ञान आवश्यक माना गया है। चक्र ६ प्रकार के माने गये हैं– आधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र और आज्ञा चक्र। इनकी क्रमशः गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठदेश तथा भ्रूमध्य में स्थित मानी गयी है। निरंजन की स्थिति इन चक्रों

से परे मानी गयी है। ओंकार में अ, उ, म, तीन वर्ण हैं। अकार नाभिदेश में, उकार हृदय स्थान में, तथा मकार भ्रूमध्य में स्थित हैं। तीन ग्रन्थियां हैं-- सबसे नीचे आधार में, ब्रह्म ग्रंथि -- हृदय में विष्णु ग्रंथि तथा भ्रूमध्य में रुद्र ग्रंथि की स्थिति मानी गयी है। इस प्रकार अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु तथा मकार रुद्र है। आज्ञा चक्र के ऊपर भी नौ चक्र हैं। ये हैं- त्रिकूट, त्रिहर, गोल्लाट, शिखर, त्रिशिख, वज्र, ओंकार, ऊर्ध्वनाद और भ्रुवोर्मुख। कुण्डलिनी शक्ति के भी आठ प्रकार होते हैं। ये हैं-- प्रणवा, गुदनाला, नलिनी, सर्पिणी, बंकनालि, क्षया, शौरी, और कुंडली।

जब कुण्डलिनी मूलाधार से जागृत होकर चक्रों का भेदन करती है तब इस क्रिया को षट्-चक्र भेदन कहते हैं। सहस्रार तक पहुंचने की क्रिया को आरोहण क्रिया या प्रलय कहते हैं और सहस्रार से पुनः परावृत्त होकर मूलाधार में आने की क्रिया को अवरोहण क्रिया या सृष्टि क्रिया कहते हैं। षट्चक्रसाधन के लिए मूलतत्व कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी के द्वारा मुख्यतः भेदन क्रिया किये जाने के कारण ही इस साधना को कुण्डलिनी साधन या कुण्डलिनी योग कहते हैं।

कुण्डलिनी यात्रा के आरम्भ, मध्य, और अन्त में पड़ने वाले विभिन्न शक्ति केंद्रों में सर्वोच्च स्थान सहस्रार है जिसे आकाश भी कहा गया है। वहां आकर कुण्डलिनी अन्ततः विश्राम लेती है। पवन को आते आश्चर्य जनक शक्तिशालिनी गुटिका के रूप में कल्पित कर उसी के बल से आकाश या ब्रह्मरन्ध्र में साधनात्मक जीवन व्यतीत करना सम्भव है। निम्न स्थानीय पिंडगत साधना केन्द्र (चक्र) का नाम पाताल या मूलाधार है जहां कुण्डलिनी सुप्तावस्था में रहती है। स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति मूलाधार या आधार चक्र से ३ अंगुल ऊपर मानी गयी है। पृथ्वीतत्व की स्थिति मूलाधार मानी गयी है। इसीलिए इसे भुवर्लोक कहते हैं। आधार चक्र में चार दल हैं। स्वाधिष्ठान चक्र ६ दलों का, नाभि चक्र दस दलों वाला, हृदय चक्र बारह दलों वाला, कंठस्थ चक्र में सोलह दल है तथा भ्रूमध्यचक्र में दो दल कमल हैं। सहस्रदल कमल विख्यात ब्रह्मरन्ध्र महापथ है।

जो कुंण्डलिनी इन चक्रों का भेदन करती है, वह तीन प्रकार की बतायी गयी है– ऊर्ध्व, मध्य और अधः। मध्यशक्ति मे प्रबोधन से, अधः शक्ति के निकुंचन से तथा ऊर्ध्वशक्ति के निपात से परमपद की प्राप्ति होती है। यथार्थ शक्ति तो एक ही है। किन्तु प्रभेद मात्रा से वह तीन रुपों में दिखाई पड़ती है। अधः शक्ति बाह्य इन्द्रियों वाली तथा विभिन्न प्रकार की चिन्ताओं से पूर्ण होती है। अतः मूलाधार के बन्धन से इसका आकुंचन किया जाता है। इधर उधर भटकने वाली तथा तरंगित स्वभाव वाली आत्मा को अपने प्रकाश में अपने स्वरुप से जो शक्ति धारण करने में समर्थ होती हैं वह मध्यमा कुंडलिनी शक्ति है। परमतत्व के स्वसंवेदन से, नानाप्रकार से, साक्षात्कार की सूचना देने वाली शक्ति ऊर्ध्व शक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। कुंडलिनी जाग्रत् और उर्ध्वमुख होकर क्रमशः चक्रों का भेदन करती है। इनके पक्ष क्रमशः भेदन से सघनता, शांति और विराम साधक को मिलते हैं। धारणा के अंतर्गत कुण्डलिनी योग के बाद षडंगयोग में ध्यान की गणना होती है।

ध्यान परमाद्वैतभाव है। ध्यान से सभी भूतों में समदृष्टि हो जाती है। ध्यान साधन में चित्त पूर्ण रूप से निश्चल रहता है। ध्यान दो प्रकार का होता है– सगुण और निर्गुण। सगुण ध्यान विभिन्न वर्णों रंगों वाला होता है तथा निर्गुण ध्यान केवल ज्ञानात्मक अनुभवात्मक होता है।

ध्यान के बाद समाधि है। समाधि एक ऐसी स्थिति है, जिसमें सभी तत्वों की सम अवस्था रहती है। समाधि से मोक्ष की प्राप्ति होती है जिसमें शुभ–अशुभ कर्मो का त्याग हो जाता है, विश्वतोन्मुख अनन्त परमज्योति का साक्षात्कार होता है। इस अवस्था में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द की स्थिति सिद्ध योगी के लिए नहीं रहती है।

इस प्रकार नाथों की साधना पद्धति में षडंगयोग के दो उद्देश्य हैं– सिद्धदेह या दिव्य देह की प्राप्ति तथा द्वैताद्वैतविवर्जित नाथ रुप में अवस्थान या पिण्ड पद का परमपद में समरसीकरण। इसके दो प्रमुख साधन हैं– हठयोग और लययोग। इसी प्रकार दो कार्य हैं– बिन्दु रक्षा और नादानुसन्धान। नाथयोग साधना का

मुख्य तत्व है—प्राणायाम। प्राणायाम से ही बिन्दु रक्षा और नादानुसन्धान दोनों ही साधित होते हैं। बिन्दु रक्षा का सम्बध अजरता—अमरता तथा दिव्य देह से है। प्राण के साधित होने पर मन स्थिर और अचंचल हो जाता है और मन के अचंचल होने पर बिन्दु रक्षा साधित होती है। परिणामस्वरूप काल जय की सिद्धि होती है। नादानुसन्धान प्राण—नाड़ी—चक्र तथा मंत्र साधन से सम्बंधित है। मंत्र साधना में ओंकार और अजपा गायत्री दोनों आते हैं। इन दोनों का सम्बंध प्राणसाधना से है। कुण्डलिनी का जागरण प्राण की प्रेरणा से होता है। सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश, कुण्डलिनी का सुषुम्ना में प्रवेश। प्राण साधन में सम्पूर्ण नाड़ी जाल का शोधन होता है।

# नाथों की साधना पद्धति

वेदप्रकाश जुनेजा

**साधना का अर्थः**

साधना का अर्थ प्रयत्न करना, उद्योग करना अथवा लगना माना जाता है। साधि (सिद्धौ) धातु में ल्युट् और टाप् के योग से साधना शब्द बना है। किसी भी लक्ष्य या उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो स्वाभविक प्रयत्न किये जाते हैं वे सभी साधना के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार से साध्य की सिद्धि के लिए जो चेष्टा अथवा क्रिया की जाती है उसे साधना कहते हैं। इसे इस प्रकार से भी कह सकते हैं कि जो सिद्धि के अनुकूल है उसी का नाम साधना है और उसका अवलम्बन ही साधना है।

धार्मिक दृष्टिकोण से साधना शब्द उस प्रयत्न अथवा पुरुषार्थ के लिए रूढ़ हो गया है जिससे आध्यात्मिक ध्येय, मुक्ति अथवा ब्रह्म की प्राप्ति होती हो। आत्मोपलब्धि के लिए विभिन्न धार्मिक प्रणालियों द्वारा निर्धारित स्वानुशासन के नियम ही साधना कहलाते हैं। स्वानुशासन का अर्थ इन्द्रिय, मन और बुद्धि का अनुशासन और उनमें भी मुख्यतः मन का अनुशासन है क्योंकि विषयोपभोग के लिए इन्द्रिय मन की करण अथवा साधनः मात्र हैं और केवल बुद्धि ही नहीं। अन्तःकरण चतुष्टय में से शेष दो चित्त और अंहकार की वृत्ति–भेद से मन की ही विशिष्ट अवस्थाएं हैं। संकल्प–विकल्पात्मक होने के लिए जिसे मन कहा जाता है वहीं अहंभाव प्रकट करने से अहंकार तथा निश्चय करने से बुद्धि एवं संस्कारों को चित्रित करने से चित्त है। अतः स्वानुशासन का अर्थ मन का अनुशासन है।

मन स्वभावतः सुखान्वेषी, चंचल तथा अस्थिर हैं। मन में चंचलता तथा अधीरता उसके सुखान्वेषी स्वभाव का ही परिणाम है क्योंकि किसी एक स्थान पर सुख न पाकर मन अन्यत्र भटकता रहता है। अध्यात्म क्षेत्र के मनीषियों का अनुभव है कि वास्तविक सुख अल्प तथा नाशवान् में नहीं वरन् पूर्ण तथा अविनाशी में है।[1] अतः अल्प तथा नाशवान् वस्तुओं में मन को लिप्त रखना उसे वास्तविक सुख से अलग रखना है। काम, क्रोध आदि को इसी कारण साधक का शत्रु माना जाता है क्योंकि वे मन के अविनाशी परम तत्व तक पहुंचने में बाधक होते हैं। इन मनोविकारों से मन को मुक्ति मिलने में ही मन का अनुशासन निहित है। मन को विकारमुक्त करके उसे अनंतज्ञान की ओर, असम्बद्धता एवं विविधता से सम्बद्धता, एकता तथा संतुलन की ओर, शक्तिहीनता से सर्वशक्तिमत्ता की ओर, सान्त से अनन्त की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर[2] ले जाना ही साधना है।

**साधना के भेदः**

किसी साधन के सम्पादन के लिए अधिष्ठान, कर्त्ता उपकरण प्रयत्न और दैव की अनुकूलता आवश्यक है। ध्येय समान होते हुए भी प्रकृति–भिन्नता के कारण अधिष्ठान तथा उपकरण में विभिन्नता के दर्शन होते हैं। कर्त्ता के स्वभावभेद के कारण साधना में प्रकार भेद दृष्टिगोचर होता है। विश्व में अनेक धर्म सम्प्रदायों तथा प्रत्येक संप्रदाय के अन्तर्गत अनेक उप–संप्रदायों के आविर्भाव का मूल कारण मानव प्रकृति की भिन्नता ही है और इस प्रकृति–भिन्नता के कारण उसकी देश, काल एवं परिस्थिति की भिन्नता है। मानव प्रकृति के गम्भीर अनुशीलन के पश्चात् विचारक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि कुछ लोग ज्ञानमार्ग से, कुछ भक्ति मार्ग से और कुछ कर्म मार्ग से आराध्य तक पहुंचते हैं। इस दृष्टि से विश्व की समस्त साधना प्रणालियों को मुख्य रूप से कर्मप्रधान, ज्ञानप्रधान एवं भावप्रधान तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

**कर्मप्रधानः**

साधना के क्षेत्र में कर्म का प्रयोग सीमित और व्यापक अर्थ में किया जाता है। स्थूल कर्मकाण्डों के कर्म का प्रयोग उसका

सीमित प्रयोग है तथा परमात्मा प्राप्ति के लिए देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि द्वारा की जाने वाली समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियाओं के लिए कर्म का प्रयोग उसका व्यापक प्रयोग कहा जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये सभी अष्टांग योग के अंग [3] अपनी निष्पन्नता के लिए बाह्य अथवा आन्तर कर्म की अपेक्षा करते हैं। कर्मयोग के अनुयायी कर्म शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ के रूप में करते हैं। अतः साधक के लिए कर्म अनिवार्य है। साधना की प्रगति के साथ कर्म क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म और बाह्य से आभ्यन्तर स्वरूप धारण करता जाता है और एक स्थिति ऐसी आती है कि जब किसी भी प्रकार का कर्म आवश्यक नहीं रह जाता है, इस साधना प्रणाली में निष्कामता का तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है।

ज्ञानप्रधानः

साधना के क्षेत्र में ज्ञान शब्द का प्रयोग परम ध्येय की प्राप्ति के लिए साधनरूप में तथा साधन एवं साध्य दोनों रूपों में होता है। ज्ञान ही साधना और ज्ञान ही साध्य माना गया है। आत्मा शुद्धज्ञान का आश्रय मात्र न होकर स्वयं ही शुद्धज्ञान है। उसका ज्ञान किसी अन्य ठोस वस्तु की भांति प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वेदान्त के अनुसार ब्रह्म को जानने का अर्थ ही ब्रह्म होना है। ज्ञान पराविद्या तथा अपरा–विद्या दो प्रकार का कहा गया है। समस्त वेदांग अपरा विद्या के अन्तर्गत हैं तथा ब्रह्म विद्या को पराविद्या कहा जाता है।[4] ज्ञान साधना के लिए साधक की चित्त बुद्धि के लिए काम्य एवं निषिद्ध कर्मों का त्याग करना होता है तथा नित्य नैमित्तिक एवं प्रायश्चित्त कर्मों में संलग्न रहना पड़ता है। इस प्रकार चित्त शुद्धि होने पर ही वह जगत् तथा स्वर्गिक भोगों को अनित्य मानकर, शमदमादि सप्त कठोर साधना सोपानों को पार कर ज्ञान योग का अधिकारी बनने की योग्यता प्राप्त करता है तथा साधक श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि का तब तब अवलम्बन जारी रखता है जब तक उसे परम तत्व का साक्षात्कार न हो जाए।

भावसाधनाः

साधना क्षेत्र में मन की विशुद्ध सत्व प्रधान अवस्था का नाम 'भाव' है जिसके उदय होने पर चित्त में एक विशेष प्रकार

की आर्द्रता उत्पन्न हो जाती है। इसे प्रेम की प्रथमावस्था भी कहते हैं[5] तथा परमात्मा के प्रति प्रेम ही भक्ति है।[6] यह अनिवर्चनीय प्रेम–स्वरूप होते हुए भी मानव–जीवन की सर्वश्रेष्ठ अनुभूति है। इसके प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है तथा न ही उसे विषय भोगों के प्रति उत्साह ही रह जाता है।[7] इसे पाकर व्यक्ति केवल इसी को देखता है, इसी को सुनता है, इसी का वर्णन करता है और इसी का चिन्तन करता है। अतः भाव साधना का परम ध्येय प्रभु की प्राप्ति है। वह अपनी समस्त वासनाओं को निर्मूल करने का कार्य भी उस पर छोड़ कर आराध्य को एक बार मन में बसा कर उसे प्रेममय भाव–साधन द्वारा प्राप्त कर लेता है।

इन्हीं तीन साधना मार्गों में से प्रायः किसी एक को अपने स्वभाव तथा संस्कार के अनुरूप साधक ग्रहण करता है जो उसकी साधना में प्रमुख रूप से रहता है तथा अन्य दो तत्व उसकी साधना प्रणाली में सहायक बन कर आते हैं। अतः चित्तशुद्धि ही साधना का प्रमुख एवं अनिवार्य अंग है तथा आत्मोपलब्धि के लिए मन को अनुशासित कर उसे सान्त से अनन्त की ओर ले जाने का प्रयास ही साधना है। इस प्रयास में सफलता साधक के प्रयत्न, परमात्मा की कृपा एवं सद्गुरु के मार्गदर्शन पर अवलम्बित है। गन्तव्य एक होते हुए भी देशकाल एवं साधक के प्रकृति भेद के कारण अनेक प्रकार के साधन–मार्ग प्रचलित हैं जिन्हें कर्म, ज्ञान एवं भाव इन तीन वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इनमें प्रत्येक साधना मार्ग का प्रथम सोपान चित्त शुद्धि है और आत्म अथवा परमात्म साक्षात्कार उसकी अन्तिम स्थिति है।

***नाथ सम्प्रदाय से पूर्व साधनाः***

ईसा की छठी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक का काल भारतीय धार्मिक संस्कृति में तांत्रिक साधनाओं का काल था। ये साधनाएं इतनी व्यापक हो उठी थीं कि सभी संप्रदाय चाहे वे वैदिक हो अथवा अवैदिक, वैष्णव हो अथवा शैव, बौद्ध हो या जैन, सभी तंत्राधारित सृष्टि तत्व, देव–मण्डल, यंत्र विधान, मंत्र साधना, आचार–विधान तथा हठयोगी साधनाओं को प्रत्यक्ष या परोक्षरूप

में प्रश्रय देने लगे थे। इसी कारण विद्वानों ने इस काल को तांत्रिक काल कहा है।[८] इस काल की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें समस्त प्राचीन धर्म–परम्पराओं में लोक धर्म के आचार प्रविष्ट हो गए थे और उसके पुराने सिद्धांतों के योगपरक एवं तंत्रपरक अर्थ किये जाने लगे थे।

समस्त भारतवर्ष में व्याप्त इस तांत्रिक वातावरण ने ही बौद्ध धर्म के अन्तर्गत वज्रयान अथवा सहजयान को जन्म दिया। बौद्ध धर्म में निर्वाण के तीन मार्ग माने गए हैं। अर्हतयान, प्रत्येक 'बुद्धमान' और 'बोधिसत्व मान'। जो स्वयं मुक्त होना चाहता है वह 'अर्हत्', जो अपने साथ अन्य लोगों की मुक्ति का भी प्रयास करता है वह 'प्रत्येक बुद्ध' और जो संसार के मोक्ष की साधना करते हुए निर्वाणपद प्राप्त करता है वह 'बोधिसत्व' कहलाता है। ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग 'बोधिसत्व' को विशेष महत्व दिया जाने लगा अर्थात् व्यक्ति मुक्ति के स्थान पर लोकमुक्ति ही साधना का प्रमुख आधार बनी तो महायान का जन्म हुआ। वज्रयान महायान की ही वह परवर्ती प्रणाली थी जिसमें तांत्रिक प्रवृतियां प्रविष्ट हो गई थीं। सहजयान इसी वज्रयान शाखा का ही दूसरा नाम है। पिंड और ब्रह्माण्ड की एकता, गुरु का महत्व, कुंडलिनी एवं चक्र साधना आदि हिन्दू एवं बौद्ध दोनों प्रकार के तांत्रिकों में समान रूप से मान्य थे। केवल कुछ शाब्दिक और साधनात्मक अंतर ही था। शैव तांत्रिक मानव शरीरस्थ मूलाधार में शक्ति की तथा शीर्षस्थ सहस्रार में शिव की कल्पना करते हैं। परन्तु बौद्ध तांत्रिक उनके स्थान पर क्रमशः प्रज्ञा और उपाय को स्थान देते हैं। इन समस्त साधनाओं में तत्व दर्शन गौण था। केवल साधना, क्रिया और चर्या ही प्रमुख थी। सभी में साधना की मिथुन–परक व्याख्या उपलब्ध होती है तथा गुरु को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। रूढ़िवादियों की उपेक्षा, जाति–भेद की निन्दा, वेदों की उपेक्षा, योग–साधनाओं का विधान आदि समान रूप से सभी में देखे जा सकते है।[९] मरणोपरान्त मुक्ति की अपेक्षा जीवन–काल में ही साधना द्वारा जीवन–मरण, सुख–दुख, मैं–तुम से परे हो जाना भी समान रुप से इनका लक्ष्य रहा है।

गीता में श्रीकृष्ण ने सांख्य और योग में भेद नहीं माना है। उनके अनुसार सांख्य यदि विचार है तो योग उसकी प्रक्रिया है।[10] योगी सम्प्रदाय भी इसी समन्वित विचारधारा का समर्थन करता है। भागवत को इसी विचारधारा का पोषक होने के कारण परमहंस संहिता कहा जाता है।

**नाथ साधनाः**

नाथ योगियों की साधना प्रणाली 'हठयोग' पर आधारित है जिसका मूल आधार योग दर्शन कहा जाता है। योग दर्शन में 'योगश्चित्त–वृत्तिनिरोधः कह कर उसे चित्तवृत्तियों का निरोध बताया गया है। चित्त स्वभाव से चंचल है और अपनी चंचलवृत्ति के कारण यह सदैव सांसारिक वस्तुओं में रुचि लेता है। संसार में बंधा रहने के कारण मनुष्य नाना दुःखों का भागी बनता है क्योंकि इस प्रकार उसके शरीर में स्थित शक्ति का क्षय होता है और वह अपनी सहज गति से विमुख हो जाता है। संसार की ओर उन्मुख होने वाली चित्तवृत्तियों को रोकना ही योग है। किन्तु हठयोग में सांसारिक इच्छाओं को हठपूर्वक रोककर अन्तर्मुखी किया जाता है। नाथ सम्प्रदाय में शक्ति से शिव का योग ही हठयोग है। इसके लिए शरीर में स्थित शक्तिरूप कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध कर क्रमशः षट्चक्रों का भेदन करते हुए शीर्षस्थ सहस्रार चक्र में जहां शिव का निवास है, ले जाया जाता है। 'ह' शब्द से सूर्य जो शरीर के भीतर 'इड़ा' नाम से जाना जाता है तथा 'ठ' 'चन्द्र' को कहते है जिसे 'पिंगला' नाम दिया गया है तथा इनकी उच्चतम स्थिति में एकता स्थापित करना ही हठयोग की साधना का अंतिम साध्य है।[11]

योग दर्शन में योग को अष्टांग योग बतलाते हुए उसके आठ भेद स्वीकार किए हैं किन्तु नाथ–योगी अपनी षडंग योग साधना के अन्तर्गत आवश्यक अंगों 'यम' और 'नियम' की गणना नहीं करते किन्तु प्रारम्भिक योग–साधना के रूप में उन्हें पर्याप्त महत्व देते है।[12] पतञ्जलि द्वारा निर्धारित पांच यम और पांच नियम के भेदों के स्थान पर नाथ योगी दस 'यम' और दो 'नियम' की व्यवस्था करते हैं. जिनका क्रमिक अभ्यास प्रत्येक योग साधक के लिए आवश्यक है।

यमः

अहिंसा, सत्यता, चोरी न करना, सभी प्रकार की विषयासक्तियों और विशेषतया यौनेच्छा पर पूर्ण नियन्त्रण तथा शारीरिक और मानसिक शक्तियों का संचय क्षमा, धैर्य और सहनशीलता, दया, जीवन में सरलता, मिताहार, शरीर और मन की पवित्रता (शौच) आत्मसंयम की इन दस विधियों को 'यम' कहते हैं। ये योग–साधना के लिए शरीर और मन को प्रस्तुत करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

नियमः

तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धान्तवाक्य, श्रवण, ह्री, मति, जप और हुत या होम नियम की निर्धारित विधियां हैः–

तपःसंतोष–आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धांतवाक्यश्रवणं ही मतिश्च जपो हुतम्।।
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्रविहरवे।

आसनः

'स्थिरा सुखम् आसनम्' अर्थात् स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने को आसन कहते हैं। योगशास्त्रों में शारीरिक अवयवों के नियमित एवं निर्धारित वे व्यायाम जिनके द्वारा शारीरिक विकृतियों को दूर कर शरीर को स्वस्थ बनाया जा सके 'आसन' कहलाते हैं। हठयोग के ग्रन्थों में ४८००० आसनों का उल्लेख हैं जिनमें ७४ विशेष उपयोगी हैं जिनमें से भी सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन को योग साधना की दृष्टि से विशेष महत्व दिया जाता है। इनमें से सिद्धासन को योगी सर्वोत्तम मानते हैं जो ७२००० नाडियों को शुद्ध कर मुक्ति का मार्ग खोलता है।[13]

प्राणायामः

श्वास–प्रश्वास की गति का विच्छेद प्राणायाम कहलाता है। इसके चार प्रकार होते हैं – पूरक, रेचक, बहिःकुम्भक ओर केवल कुम्भक। इसे पवन अभ्यास अर्थात् प्राणवायु को नियन्त्रित करने का अभ्यास भी कहते हैं। श्वास–व्यायाम की निर्धारित विधि के अनुसार प्राण–तत्वों के नियमन और सामंजस्य स्थापना में प्रवीणता प्राप्त करना 'पवन विजय' कहलाता है। 'पवन विजय' आत्मा अर्थात् चेतन की पदार्थ गौरवमयी विजय है और इस भौतिक जीवन में वास्तविक स्वतन्त्रता की व्यावहारिक अनुभूति है।

**प्रत्याहारः**

इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा कर निरुद्ध करना प्रत्याहार है।

**धारणाः**

देशबन्धस्य चितस्य धारणा' अर्थात् एक निश्चित वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रक्रिया 'धारणा' कहलाती है।

**ध्यानः**

ज्ञान की अपरिवर्तित एवं अविचल अवस्था को ध्यान कहते हैं।

**समाधिः**

जहां ध्याता ओर ध्येय एकमेव हो जाए वह दशा समाधि कहलाती है।[१४] अर्थात् जहां व्यक्ति और विश्व का, अहं और इदम् का, आत्मा और पर का विरोध शमित हो जाता है, उसका मस्तिष्क लोकोत्तर मस्तिष्क और उसकी शक्ति लोकोत्तर शक्ति हो जाती है, वह स्थिति 'समाधि स्थिति' कहलाती है।

इस अष्टांग–योग के अतिरिक्त नाथ–योगी आसन और प्राणायाम के अभ्यास के पश्चात् 'महामुद्रा' की साधना करते है.।[१५] मुद्रा की कुछ विधियों का अभ्यास आसन और प्राणायाम के साथ इनके अविच्छिन्न अंग के रूप में करना पडता है। हठयोग की पुस्तकों में मुद्रा की दस विधियों का उल्लेख मिलता है– महामुद्रा, महाबन्ध, महावेद्य, खेचरी, उद्दान, मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, विपरीत करनी, वज्रौली (सहजोली और अमरौली के साथ) तथा शक्तिनालन। इनके द्वारा केन्द्रित मनोप्राण शक्ति को सभी दिशाओं से समेट कर अन्तरतम प्रदेश की नाड़ी सुषुम्ना के माध्यम से उच्चतर भूमियों की ओर उन्मुख किया जा सकता है।

'योगस्वरोदय' में दो प्रकार के हठयोग का विवरण दिया गया है।[१६] पहले भेद के अन्तर्गत नाड़ियों को शुद्ध करने का प्रयांस किया जाता है जिसके लिए षट्कर्मों का विधान है। हठयोग के दूसरे रूप में आसन पर स्थित होकर नासिकाग्र में दृष्टि को निबद्ध किया जाता है और कोटि सूर्य की ज्योति का ध्यान किया जाता है।

हठयोग की साधना साधक के संसार से मुक्त होने के साथ शुरू होती जिसके लिए वैराग्य सर्वाधिक आवश्यक है जब तक संसार में चित्त की प्रवृति है तब तक अन्तःसाधना संभव नहीं है। 'नाथ' शब्द का अर्थ 'मुक्तिदाता' है, अतः साधक के लिए स्वयं संसार से मुक्त होना अनिवार्य है। मुक्त होने के लिए वैराग्य भावना ओर इन्द्रिय निग्रह आवश्यक है। इसके बाद ही सच्चा साधक साधना हेतु गुरु द्वारा उपदिष्ट होता है।

हठयोग की साधना के लिए साधक विविध साधनाओं से सोई हुई अथवा निष्क्रिय कुण्डलिनी शक्ति को प्रबुद्ध कर ऊपर की ओर उद्‌बुद्ध करता है। उद्‌बुद्ध कुण्डलिनी नामक शक्ति षट् चक्रों को भेदती है। ये मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आशा चक्र हैं। अधोमुखी कुण्डलिनी इन षट्‌चक्रों का भेदन करती हुई तालु मूल से सिर तक स्थित सहस्त्रार के ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श करती है। प्राणवायु के निरोध से इस पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की सार्थकता योगी अनुभव करता है। षट्‌चक्र की विस्तृत तालिका का परिचय डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने (नाथ सम्प्रदाय के पृष्ठ १२८ पर) निम्नलिखित रूप में दिया है।

साधारण मनुष्य काम–क्रोध का दास रहता है क्योंकि उसकी कुण्डलिनी अधोमुखी रहती है। कुण्डलिनी के ऊर्ध्वमुखी होने पर उससे स्फोट होता है। जो नाद है तथा जिससे प्रकाश होता है, इसी प्रकाश का व्यक्त रूप महाबिन्दु है, जो इच्छा ज्ञान और क्रिया तीन प्रकार का होता है।यह नाद वास्तव में सृष्टि में समष्टि रूप व्याप्त अनाहत नाद का व्यष्टिरूप है। अतः जो नाद अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है उसी का प्रकाश जब व्यक्ति में होता है तो उसे नाद कहते हैं। बद्धजीव जिसकी सुषुम्ना का पथ अवरुद्ध रहता है इस नाद को नहीं सुन सकंता है। इसी कारण उस की वृति बाह्य विषयों में रहती है। किन्तु जब सुषुम्ना का पथ उन्मुक्त हो जाता है और कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है तो साधक के प्राण स्थिर हो जाते हैं और वह निरन्तर उस अनाहत (अनहद) नाद को सुनने लगता है। इस नाद की प्रारम्भिक अवस्था में समुद्र–गर्जन, भेरी, झर्झर आदि के समान भीषण ध्वनि होती है। दूसरी अवस्था में मर्दल, शंख, धंटा की ध्वनि–सी सुनाई

| चक्र | स्थान | दल संख्या | वर्ण | तत्व और गुण | तत्व का रंग | मंडल का आकार | बीज और वाहन | देवता और वाहन | धातु शक्ति | लिंग और योनि | अन्य तत्व और इन्द्रिय | पीठ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ मूलाधार | रीढ के अधो भाग में पायु और मुष्क मूल के मध्य | ४ | व,श,ष,स | पृथ्वी आकर्षण गंध | पीत | वर्गाकार | लं ऐरावत | ब्रह्मा हंस | डाकिनी | त्रैपुर त्रिकोण | गंधतत्व घ्राणेन्द्रिय पैर | कामाख्या |
| २ स्वाधिष्ठान | मेरुदण्ड में मेढ्र के ऊपर | ६ | ब,भ,म,य,र, ल | जल संकोचन रस | श्वेत | अर्द्ध चन्द्र | वं मकर | विष्णु गरुड़ | राकिनी | बाण त्रिकोण | रसतत्व रसना हाथ | पूर्णगिरी |
| ३ मणिपूर | मेरुदण्ड में नाभि के पास | १० | ड, ढ, ण, न, त,थ,द,ध,प,फ | तेज प्रसारण रूप | लाल | त्रिभुज | रं मेष | रुद्र वृषभ | लाकिनी | इतर त्रिकोण | रूपतत्व चक्षु पायु | जालंधर |
| ४ अनाहत | हृदय के पास | १२ | क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ,ञ,ट,ठ | वायु गति स्पर्श | धूम्र | षट्कोण | यं कृष्ण मृग | ईश | काकिनी | | स्पर्श त्वचा उपस्थ | उड्डियान |
| ५ विशुद्धाख्य | कंठ के पास | १६ | अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः | आकाश अवकाश शब्द | | वृत्त | हं श्वेत हस्ती | सदाशिव | शाकिनी | | शब्द कान वाक् | |
| ६ आज्ञा | भ्रुवों के मध्य में | २ | ह,क्ष | मन | | | | शंभु | हाकिनी | | महत् सूक्ष्म प्रकृति अथवा हिरण्य गर्भ | |

देती है तथा अन्त में किंकणी, वंशी, भ्रमर एवं वीणा की मधुर गुंजार सुनाई पड़ती है तथा नादासक्त साधक उसी में लीन हो जाता है। अन्तिम अवस्था में तो इन शब्दों का सुनाई देना बंद हो जाता है और साधक की आत्मा उस समय अपने स्वरुप में पूरी तरह स्थिर हो जाती है तथा बाह्य प्रकृति से उसका कोई सम्बंध नहीं रहता है। यही परमानंद तथा ब्रह्मानंद की अवस्था है। इस अवस्था को प्राप्त योगी 'जीवन्मुक्त' हो जाता है तथा इस ब्रह्मानुभूति को प्राप्त योगी के लिए समस्त सांसारिक वादविवाद मिथ्या ही प्रतीत होते हैं। इस सम्बंध में गोरखनाथ का कथन है कि–

'सारमसारं' गहरगम्भीरं गगन उछलिया नादं।
मानिक पाया फेरि लुकाया झूठा वाद विवादं।।[१७]

हठयोग की पूर्ण परिणति राजयोग है। पातञ्जल दर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से इसी का वर्णन किया गया है। हठयोग की नियमित साधना के द्वारा राजयोग की सिद्धि होती है, इसी कारण आचार्यगण हठयोग का राजयोग के सोपान के रूप में वर्णन किया करते हैं। इस राजयोग के प्रभाव से ही साधनशील जीव काल के पराक्रम से छुटकारा पाने में समर्थ होता है। 'हठयोग प्रदीपिका' के मतानुसार समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्व, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहज, तुरीय – ये सभी राजयोग के नामान्तर है। स्वात्माराम ने स्पष्ट ही कहा है कि कुम्भक द्वारा प्राण की गति रुद्ध हो जाने पर चित्त निरालम्ब हो जाता है। ब्रह्मानन्द ने भी अपनी टीका में स्पष्ट लिखा है कि जिस समय सम्प्रज्ञात समाधि के बाद ब्रह्माकार स्थिति का उदय होता है, उस समय वैराग्य धारण करके चित्त को सम्यक् प्रकार से निरुद्ध करना जरुरी है। इससे स्पष्ट है कि हठयोग से स्वभावतः राजयोग का विकास होता है।

देहशुद्धिः

देहशुद्धि हठयोग का अव्यवहित उद्देश्य है, जो योगियों की परिभाषिक भाषा में घट शुद्धि के नाम से विख्यात है।[१८] 'घेरण्ड संहिता' का मत है कि हठशास्त्रोक्त धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपाल–भाति – इस षट्कर्म के द्वारा देह की शुद्धि

होती है। देह की दृढता और स्थिरता आसन और मुद्रा का अभ्यास करने से सिद्ध होती है। प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के द्वारा क्रमशः दैहिक धीरता, लघुता, आत्म–प्रत्यक्ष तथा निर्मलता सुसम्पन्न होती है। अनेक आचार्य आसन, प्राणायाम अथवा कुम्भक, मुद्रा अथवा करण तथा नादानुसन्धान – इन चारों को हठयोग का प्रधान प्रतिपाद्य विषय कहते हैं। इनमें आसन का अभ्यास विधिवत् करने से देह की स्थिरता, निरोगता तथा लघुता सम्पन्न होती है। 'आसनेन रजो हन्ति' – यह सिद्धांत योगिसम्प्रदाय में अत्यंत प्रसिद्ध है। दीर्घकाल तक इस विधि के साथ आसन का अभ्यास करने से रजोगुण से जनित देह की चंचलता और मन की अस्थिरता दूर हो जाती है। रोग–विक्षेप का एक प्रधान कारण है, आसन के अभ्यास से उसकी भी निवृति हो जाती है। इस अभ्यास से तमो गुण की क्रिया से उत्पन्न देह का भारीपन भी दूर होता है। देह में सात्विक तेज की बुद्धि होने से तमोगुण का हास होता है और स्वभावतः ही देह हलकी हो जाती है। बार बार अभ्यास करके आसन को स्थिर कर लेने पर प्राणायाम की क्रिया सहज साध्य हो जाती है। परन्तु नाड़ी चक्र नाना प्रकार से आच्छन्न रहने के कारण वायु सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश नहीं कर सकती। इसीलिए प्राण–संग्रह से पहले नाड़ी–शोधन की आवश्यकता होती है। नाड़ी के विशुद्ध किए बिना उन्मनीभाव अथवा मनोनिवृत्ति की कोई आशा नही रहती। विधिपूर्वक प्राणायाम करने से सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर का समस्त मल नष्ट हो जाता है। शाण्डिल्य उपनिषद् के मतानुसार नाड़ी शोधन प्राणायाम कई महीने तक नित्य दो बार करना चाहिए। देह की कृशता, कान्ति, इच्छानुसार वायुधारण करने की सामर्थ्य, अग्निवृद्धि, नाद की अभिव्यक्ति और आरोग्य – ये सब लक्षण जब क्रमशः आविर्भूत हो जाएं, तब समझना चाहिए कि सभी नाड़ियां शुद्ध हो गयी हैं।

त्रिशिख ब्राह्मण–उपनिषद् में लिखा है कि यम, नियम और आसन सिद्ध हुए बिना प्राणायाम नही किया जा सकता। अतएव उस अवस्था में नाड़ी शुद्धि की चेष्टा अनुचित है। हठाचार्यों का कहना है कि सब साधकों के लिए षट्कर्म की आवश्यकता नहीं होती। वायु, पित्त या कफ, इन तीनों दोषों में से किसी एक या दो की अधिकता होने पर षट्कर्म की सहायता लेना आवश्यक

है। घटशुद्धि की तरह स्थूलता का नाश आदि भी हठयोग का एक अव्यवहित फल है। याज्ञवल्क्य का भी यह विचार है कि जब एक मात्र प्राणायाम के द्वारा ही समस्त मल की निर्वृत्ति हो जाती है, तब षट्कर्म की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

मुद्रासाधन का उद्देश्य यह है कि इससे ब्रह्मद्वार या सुषुम्ना–मुख से निद्रिता कुल कुण्डलिनी जागृत होकर ऊपर की ओर उठती है। कुण्डलिनी के जगने पर चक्र और ग्रन्थि सब का भेदन होता है, प्राण अनायास सुषुम्ना में प्रवेश करता है, चित्त निरालम्ब होता है और मृत्यु भय छूट जाता है। आधारशक्तिरूपा कुण्डलिनी समस्त योगाभ्यास का मूल अवलम्ब है। मुद्रा आठ प्रकार की होती है और मुद्रा के अभ्यास का फल है – अष्टैश्वर्य–प्राप्ति।

नाथयोगियों की साधना पद्धति मुख्य रूप से यौगिक साधना पद्धति है जिससे इन्होंने षडंग योग का विधान किया है। गोरखनाथ के अनुसार 'शरीर के नवों द्वारों' को बंद करके वायु के आने जाने का मार्ग अवरुद्ध कर लिया जाए, तो उसका व्यापार चौसठ संधियों में होने लगेगा। इससे निश्चय ही कायाकल्प होगा और साधक एक ऐसे सिद्ध में परिणत हो जाएगा जिसकी छाया नहीं पड़ती। दम को पकड़ना चाहिए तथा प्राणायाम के द्वारा उसे वश में करना चाहिए। इससे उन्मनावस्था सिद्ध होगी, अनाहद नाद रूपी तूरी बज उठेगी और ब्रह्मरंध्र में बिना सूर्य अथवा चंद्रमा के ब्रह्म का प्रकाश चमक उठेगा[१९] तथा आकाशमण्डल (शून्य अथवा ब्रह्मरंध्र) में एक औंधेमुंह का कुआं है जिसमें अमृत का वास है। जिसने अच्छे गुरु की शरण ली है वही उसमें से भर भर कर अमृत पी सकता है, क्योंकि उसे पीने का उपाय गुरु ही बता सकता है, जिसने किसी अच्छे गुरु को धारण नहीं किया वह इस अमृत का पान नहीं कर सकता, प्यासा ही रह जाता है।[२०] उनका विचार है कि जो अजपा का जाप करता है, ब्रह्मरंध्र (शून्य) में मन को लीन किए रहता है, पांचों इंद्रियों को अपने वश में रखता है, ब्रह्मानुभूति रूपी अग्नि में अपने भौतिक अस्तित्व अर्थात् काया की आहुति कर डालता है, योगीश्वर महादेव भी उसके चरणों की वन्दना करता है।[२१] उनकी दृष्टि में परमतत्त्व ऐसा है कि न उसे बस्ती अर्थात् भाव और न शून्य अर्थात् अभाव ही कह

सकते हैं।[22] वेदों और शास्त्रों से जो ब्रह्म प्राप्य नहीं है उसे बिरले योगी ही जानते हैं। बाकी दुनियां तो माया में लिप्त होकर धंधों में ही लगी रहती है।[23]

वास्तव में गोरखनाथ का विचार यह है कि मनुष्य को खाना, खेलना, हंसना आदि सांसारिक कर्म करते हुए चित्त की दृढ़ता का विचार सदैव ही रखना चाहिए। इस प्रकार संयमी आचरण युक्त व्यक्ति सदैव ब्रह्म के साथ ही रमण करते हैं।[24]

नाथों की साधना पद्धति में आगमिक शैवों, बौद्धों एवं शाक्तों की साधना पद्धति मिश्रित है, अतः इनकी योग पद्धति अधिकांशतः तांत्रिक योग पद्धति का आश्रय प्राप्त कर अग्रसर हुई है। काश्मीर शैव सम्प्रदाय में नाथों का उल्लेख हुआ है जहां अभिनवगुप्त ने 'तंत्रालोक' में मत्स्येन्द्रनाथ को 'मच्छंदविभु' के नाम से स्मरण किया है। डा. फर्कुहर ने नाथों को पाशुपत शैव माना है। 'अमरौधशासनम्' में गोरखनाथ ने स्वच्छंद तंत्र आदि शैवागमों के अनुरूप योग का विवरण प्रस्तुत किया है जिससे नाथों का संबंध शैवागमों से भी प्रमाणित होता है। कापालिक, लकुलीश, अघोरी जैसे पाशुपत मत भी कालान्तर में नाथ मत में ही अन्तर्भुक्त हो गए। इन तीनों मतों में तांत्रिक तत्वों की अधिकता तथा इनकी साधना पद्धति की शाक्तों की साधना प्रणाली से समानता होने के कारण नाथ मत में भी शाक्त तत्व प्रविष्ट हो गया।[25]

महामना पं. हरप्रसाद शास्त्री के विचार से गोरखनाथ पहले बौद्ध थे और बाद में शैव हो गए जिससे गोरखनाथ बौद्धमत की साधना पद्धति से पूर्णरूपेण परिचित थे। डा. रामकुमार वर्मा का विचार है कि नाथपंथ बौद्धसिद्धों के गर्हित तांत्रिक बौद्धमत के विरोध में उठ खडा हुआ था। बौद्ध धर्म कालान्तर में मंत्रयान, वज्रयान तथा सहजयान में परिवर्तित होकर अपने मूल लक्ष्य से भ्रष्ट हो चुका था। प्रज्ञोपाय की साधना वज्रयानियों में आकर कमल (स्त्रीन्द्रिय) और कुलिश (पुंसेन्द्रिय) की भोगजन्यगर्हित साधना में बदल चुकी थी, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इस से स्पष्ट होता है कि नाथ पंथियों का तांत्रिक बौद्धमत एवं तांत्रिक शैवमत की यौगिक साधना पद्धति से पूरा परिचय था। ब्रिग्स ने 'गोरक्षशतक' के आधार पर नाथ सम्प्रदाय में योग और

तंत्र का सम्मिश्रण माना तथा इनकी साधना में तांत्रिक तत्वों की प्रमुखता मानी है।[२७]

नाथयोग प्रमुख रूप से हठयोग तथा लययोग के अन्तर्गत गिना जाता है। इनका हठयोग कोई निरपेक्ष साधना नहीं है। हठयोग की साधना राजयोग की सिद्धि के लिए ही की जाती है। नाथयोगियों ने तांत्रिकों का षट्चक्र भेद अथवा लययोग भी स्वीकार किया है। तांत्रिक एवं नाथयोगी दोनों का मूलभूत सिद्धांत 'पिंड ब्रह्मांड का ही लघुसंस्करण' है। जो ब्रह्मांड में है, वह पिंड में भी है। मनुष्य के किस अंग में ब्रह्माण्ड का कौन सा अंश है इसका सविस्तार विवेचन 'सिद्धसिद्धांतसंग्रह' के तृतीयोपदेश में किया गया है। विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त महाकुंडलिनी का पिंडगत स्वरूप कुंडलिनी है। जब पिंड ब्रह्माण्ड का ही लघु संस्करण है, तब पिंड के परिचय से ब्रह्माण्ड का परिचय भी संभव है। अतः नाथयोगी सिद्धि के लिए बाहर भटकना उचित नहीं मानते हैं। उनके विचार से अपने पिंड को पहचानने से ही ब्रह्माण्ड को पहचाना जा सकता है। जीव का पिंडगत केंद्र बिन्दु मूलाधार है जहां जीवशक्ति कुंडलिनी निवास करती है। जब साधना द्वारा यह कुण्डलिनी सहस्राधार स्थित शिव में लीन हो जाती है, तब जीव ही शिव हो जाता है। अर्थात् पिंड स्थित कुंडलिनी ब्रह्माण्डगत महाकुंडलिनी में लीन हो जाती है:–

षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपंचकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः।।[२८]

नाथ सम्प्रदाय में आदिसत्ता

पर शिव के दो तत्व स्वीकार किये गए है, जो सूर्य और चन्द्र हैं। सूर्य कालाग्नि अथवा नाशक तत्व और चन्द्र अमृतनिधि अतः पोषक तत्व है। इन सूर्य और चन्द्र की हठयोगी साधना द्वारा मिलाकर अद्वैत – स्थिति या परशिव से सामरस्य की प्राप्ति संभव मानते हैं। सूर्य चन्द्र के मेल से दिव्यदेह और अमरता प्राप्त हो सकती है। दिव्यदेह और अमरता की नाथयोगियों की कल्पना रसेश्वर सिद्धांत पर आधारित है क्योंकि गोरख–सम्प्रदाय में रसेश्वर मत भी अन्तर्भुक्त है। [२९] इड़ा और पिंगला को हठयोगप्रदीपिका में सूर्य और चन्द्र कहा गया है। अतः प्राण और अपान के प्रवाह

का इड़ा और पिंगला से हटाकर सुषुम्ना मार्ग से प्रवाहित करने वाले योग को भी हठयोग कहा गया है तथा हठयोग कार्य साधना को केंद्रित करने वाला योग है। सिद्धि प्राप्ति के लिए छः चक्र, सोलह आधार, दो लक्ष्य तथा पांच व्योम का ज्ञान अनिवार्य माना गया है। यही कायासाधना योगी को उसकी परमकाम्य कैवल्य अवस्था अथवा सहज समाधि तक पहुंचाती है।[30]

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि नाथ योगी शरीर के महत्व को स्वीकार करते हैं, क्योंकि शरीर के रहस्यों के ज्ञात होने से परिपक्व अथवा सिद्ध–देह की प्राप्ति की जा सकती है। योगाग्नि से सप्तधातुमय तथा महाभूत के द्वारा निर्मित शरीर को दग्ध किया जा सकता है। अपक्व शरीर व्याधि आदि से पीडित होता है। हठयोग की क्रियाओं से सिद्ध देह की प्राप्ति होती है। मानस साधना के लिए यह देह सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम मानी गयी है। स्वस्थ, रोगमुक्त शरीर के बिना समाधि योग की साधना नहीं हो सकती है, अतः नाथयोगी वज्रलौह के समान कठोर एवं सिद्धदेह अथवा चिन्मय शरीर की प्राप्ति के लिए हठसाधना करते हैं। अष्टांग अथवा षडंग योग की साधना नाथपंथ में प्रचलित है। इनकी साधना में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बौद्ध एवं बंध का प्राणायाम से संबंध, प्राणायाम तथा प्रणव साधना, अजपा जप तथा नादानुसंधान, प्रत्याहार, धारणा, षट्चक्र–भेद, कुंडलिनी योग, समाधि, अमृत साधन और ध्यानयोग का विस्तृत विवेचन एवं प्रयोग मिलता है। इस साधना का हेतु चरित्रगत दृढ़ता और पवित्रता को माना गया है। नाथ पंथ की साधना पद्धति को पातजञ्ल योग साधना का विकसित रूप माना जाता है। यदि पातजञ्ल साधना पद्धति का अंश छोड़कर उसमें हठयोग जोड़ दिया जाए तो वह नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धति हो जाती है।[31]

१ पाणिनी, ७:१:१
२ छान्दोग्यापनिषद् – 'न ऽल्पै सुखं अस्ति भूमा एवं सुखम्' १:२:३
३ बृहदारण्यक उपनिषद् – 'असतो माय सद्गमय, तमसोमाज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृत गमय'
४ अक्षयकुमार बनर्जी – नाथयोग, पृ. २३
५ मुण्डकोपनिषद – १:१:४५
६ श्रीरूप गोस्वामी, भक्तिरसामृतसिंधु, पृ. ९१
७ शांडिल्यभक्ति सूत्र–३, नारदभक्तिसूत्र–३
८ शांडिल्यभक्तिसूत्र–२
९ डॉ. बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता में यह युग को तांत्रिक काल नाम दिया है
१० डॉ. धर्मवीर भारती – सिद्ध साहित्य, पृ. १३२–३३
११ श्रीमद्भगवद्गीता ५:४
१२ अक्षय कुमार बनर्जी – नाथ योग, पृ. ३३–३४
१३ वही, पृ. २३
१४ वही, पृ. ४४–४५
१५ वही, पृ. ५४
१६ वही, पृ. ५०
१७ पुरूषोत्तम प्रसाद आसोपा – आदिकाल की भूमिका – पृ. १३८
१८ गोरखबानी, पृ. ५।
१९ डॉ. गोपीनाथ कविराज – भारतीय संस्कृति और साधना – प्रथम खण्ड, पृ. ३९५
२० गोरखबानी, पृ. १९
२१ वही, पृ. ९
२२ वही, पृ. ७
२३ वही, पृ. १
२४ वही, पृ. ३
२५ वही, पृ. ४
२६ डॉ. जे. एन. फ कुंहर – एन आउट लाइन आफ रेलिजस लिटरैचर ऑफ इण्डिया, पृ. १९१–९२
२७ डॉ. रामेश्वर प्रसाद सिंह– संत काव्य में योग का स्वरूप, पृ. १४७
२८ जी. डब्लू. ब्रिग्स – गौरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज, पृ. १९२–१९३, १७१–१७२
२९ गोरक्षशतक – १३
३० डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी – नाथ सम्प्रदाय, पृ. १७५
३१ डॉ. राजदेवसिंह – संतों की सहज–साधना, पृ. ५८
३२ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय – हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि,पृ. ३२६

## नाथ–साधना में लौकिक अभिव्यक्ति

डा. ओंकार नारायण सिंह

नाथ सम्प्रदाय की साधना हठयोग परक रूप में सुविख्यात है। हठयोग साधना प्रायः प्राण निरोध–साधना के तत्वार्थ में प्रयुक्त होती रही है। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे मूलतः ऐसी साधना अथवा अभ्यास के रूप में निर्देशित किया है जिससे हठात् सिद्धि प्राप्ति की संभावना हो।[1] हठयोग परक नाथ–साधना परम्परागत योग साधना का ही युगीन सोपान प्रतीत होती है। किन्तु पारम्परिक पातंजल योगसाधना जहां विचार प्रधान लक्षित होती है वहीं मध्य युगीन हठयोग साधना पद्धति क्रियाप्रधान।[2] हठयोग साधक हेतु कायसाधना का ज्ञान अनिवार्य है। इसमें मेरुदण्ड के निम्नतम सिरे पर पायु तथा उपस्थ मे मध्यवर्ती भाग के अन्तर्गत त्रिकोणाकार अग्निचक्र में अवस्थित स्वयम्भू लिंग की परिकल्पना की गई है जिसे साढ़े तीन वलयों में आविष्टित कर कुंडलिनी सर्पिणी की भांति अधोमुखी होकर सुप्त है। ब्रह्मभाव व्याप्त महाशक्ति के पिंड में व्यक्त इस कुंडलिनी को जागृत एवम् ऊर्ध्वमुखी कर मेरुदण्ड के ऊर्ध्वछोर पर सहस्रार (ब्रह्मरंध्र) स्थित परमशिव से सामरस्य स्थापित करना योगी का चरमलक्ष्य धोषित किया गया है।[3] कुंडलिनी के उद्‌बोधन से मोक्ष द्वार का हठात् ही खुल जाना माना गया है। अतः उपर्युक्त योग हठयोग कहलाता है। ऐसे हठयोग मूलतः स्वयं में साध्य न होकर राजयोग का साधन मात्र ही प्रतीत होता है।

सिद्धसिद्धांतपद्धति के अन्तर्गत 'ह' को सूर्य तथा 'ठ' को चंद्र के तत्वार्थ में ग्रहण करते हुए दोनों के योग को हठयोग की संज्ञा से अभिहित किया गया है।[४] तदनन्तर इसे बहुप्रकारेण व्याख्यायित करते हुए एक ओर सूर्य–चन्द्र को प्राण अपान के रूप में निर्दिष्ट करते हुए दोनों के योग अर्थात् प्राणायाम द्वारा वायु निरोध को हठयोग माना गया। दूसरी ओर इन्हें इड़ा पिंगला की वाच्यार्थी संज्ञाएं देते हुए दोनों नाड़ियों को अवरुद्ध कर सुषुम्ना नाड़ी से प्राणवायु संचरित करने के मार्ग को हठयोग घोषित किया गया।[५]

काय–साधना के क्रम में बिंदु (शुक्र) प्राण एवं मन रूपी तीन प्रबल शारीरिक स्रोतों को वशवर्ती बनाने की अनिवार्यता निर्दिष्ट की गई है। इनमें से किसी भी एक की स्थिरता उपलब्ध होने पर अन्य दो स्वयं साधक के अधीन हो जाते है। बिन्दु का स्थिरीकरण तथा ऊर्ध्वमुखी होना मात्र ब्रह्मचर्य और प्राणायाम साधना से ही संभव होना मानकर नाथ–साधना के अन्तर्गत इन्द्रिय–निग्रह पर विशेष बल दिया गया है।[६] इसीलिए नाथ योगियों ने चित्त की दृढ़ता पर विशेष बल देते हुए[७] सर्वाधिक चित्त प्रलुब्धकारी मायारूपिणी नारी की सर्वथा उपेक्षा की है।[८] इस प्रकार कामोपभोग के निरोध के समानान्तर नाथ साधना में नाड़ी शोधन हेतु षट्कर्म धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति) के विस्तृत विधान का अनिवार्यतः पालन भी उपदिष्ट किया गया। नाड़ी–विशोधन से न केवल पिंड का स्थिरीकरण एवम् सुषुम्नापथ की निर्मलता की प्राप्ति अपितु प्राण तथा मन के चांचल्य का अंत होकर उद्‌बुद्ध कुंडलिनी की शिव के साथ समरसता भी निर्दिष्ट की गई है। इस प्रकार साधक साध्य से एकाकार हो जाता है।[९] इसी साधना हेतु बज्रोली मुद्रा के अभ्यास के अन्तर्गत इडा–पिंगला नाड़ियों को सतत अभ्यास द्वारा योगी अवरुद्ध कर देता है तब योनिकन्द के मूल में अवस्थित सुषुम्ना के मुख को खुला पाकर ऊर्ध्वमुखी होने वाली कुंडलिनी षट्‌चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा चक्र) का वेधन कर तालुमूल से कपाल तक अवस्थित सहस्रार का स्पर्श करती है।[१०] इस प्रकार पिंड के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड की सार्थकता अथवा यथार्थता योगी प्राणवायु के निरोध से अनुभूत करता है। कुंडलिनी के उद्‌बुद्ध होने पर योगी

अनाहत ध्वनि अथवा अनहद नाद का श्रवण करने लगता है, जिसे सूरति शब्द की संज्ञा भी प्रदान की गई है।[11] षट्चक्र के समानान्तर योगी हेतु सोलह आधार (रूपदांगुष्ठ, मूलाधार, गुह्याधार, पिंडचक्र, नाड्याधार, नाभिभूमंडलाधार, हृदयाधार, कंठाधार, क्षुद्रघंटिकाधार, ताल्पन्ताधार, रसाधार, ऊर्ध्वदंतमूलक, नासिकाग्र, नासामूल, भ्रूमध्याधार, नेत्राधार दो लक्ष्य बाह्य, आन्तर, पांच व्योम (श्वेत, रक्त, धूम्र, नील, सूर्याकाश) का ज्ञान भी अनिवार्य घोषित किया गया है। गोरखनाथ द्वारा नाथ साधना के अन्तर्गत वाद विवाद की व्यर्थता के निर्देश स्पष्टतः उपलब्ध होते हैं।[12] साधनागत जटिलता को दृष्टिगत रखते हुए इसमें गुरु की अनिवार्यता पर विशेष बल दिया गया।[13] इसके अतिरिक्त आचरण की शुद्धता और मन के सम्मार्जन के साथ नाथ योगियों ने जातीय विभेदों एवं बहिर्मुखी साधना, आडम्बर की निरर्थकता भी प्रतिपादित की है।[14] स्वयं गोरखनाथ का कथन है–[15]

मूरिष सभा न बैसिवा अवधू, पंडित सौ न करिव वादं।
राजा संग्रामे झूझ न करवा, हेले न षोड़वा नादं।।

अन्यत्र उन्होंने व्यावहारिक दृष्टि से स्वयं (पंथ) के ही लौकिक आचार प्रतिष्ठित करते हुए कहा–

हबकि न बोलिबा ढबकि न चलिबा, धीरे धरिबा पांव।
गरब न करिब सहजै रहिबा, भणत गोरख रांव।।[16]

तथा

कोई न्यदै कोई व्यंदै, कोई करै हमारी आसा।
गोरख कहै सुणौ रे अवधू, यहु पंथ खरा उदासा।।[17]

सारांशतः पारम्परिक योगदर्शन की साधना पद्धति का एक रूपांतरण हठयोग में हुआ। जिसके अन्तर्गत चित्त–निरोध तथा काय–साधना के विविध मार्गों, अन्यान्य चक्रों एवं मुद्राओं के व्यापक विधि विधानों को अनेक योगियों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित करते हुए क्रियात्मक स्वरूप दिया गया। इसके विकृत प्रयोग के क्रम में वज्रयानी सिद्ध परम्परा ने इन्हें वासना पूर्ति के अर्थ में प्रयुक्त करते हुए आचरण की विशृंखलता और कामोपभोग की स्वच्छन्दता का पर्यायं बना दिया। परन्तु नाथ साधना के अन्तर्गत इसकी प्रतिक्रिया

चारित्रिक दृढता तथा नैतिक स्वर की अत्यधिक तीव्रता के रूप में प्रकट हुई। कतिपय विद्वानों के मतानुसार नाथ–साधना परम्परागत योग साधना का ही युगीन परिष्कृत रूप है, उसके दार्शनिक अंश के स्थान पर हठयोग का समावेश कर देने से वह नाथ–साधना में परिणत हो जाता है।[18]

*लौकिक अभिव्यक्ति*

प्रतीत होता है कि उत्तर मध्यकाल में योग साधना का लोकपरक अभिव्यक्तीकरण लोकहित एवं लोकभाषा प्रधान दीर्घकालीन परम्परा का अंतिम रूप था। शनैः शनैः उसके नैतिक रूप के समक्ष साधनात्मक रूप का हास होता चला गया। निर्गुणियों और निरंजनियों का वाणी साहित्य इस तथ्य की पुष्टि करता है।[19]

भारतीय धर्म साधना के अन्तर्गत दसवी ग्यारहवीं शती में नाथ साधना का स्वर विशेष प्रभावी रहा। इस पद्धति में बौद्ध सहजयान के विकास क्रम की उपलब्धि के समानान्तर उसके प्रति विद्रोहात्मक स्वतंत्रा साधना की स्थापना भी प्राप्त होती है।[20] वस्तुतः शंकराचार्य द्वारा जिस प्रकार अपने समन्वयपरक चिन्तन से बौद्ध धर्म के तात्विक प्रभाव को भारतीय धर्म साधना से स्थानच्युत किया गया था उसके अगले सोपान के रूप में गोरखनाथ का हेतु ऐसी आस्तिक तथा नैतिक कठोर योग साधना के प्रवर्तन से था जो अपने विशुद्ध रूप में युगों से प्रचलित थी। इसकी लौकिक अभिव्यक्ति शारीरिक शुद्धि और मन के सम्मार्जन के अन्तर्गत मुखरित हो उठी। एक ओर आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्ड के प्रति लोक अरुचि का युगीन प्रभाव नाथ साधना पर अंकित हुआ[21] दूसरी और गृहस्थ जीवन के प्रति परम्परागत उपेक्षा का भाव भी स्पष्ट प्रकट हुआ।[22] जनसामान्य में पारंपरिक योग साधना के दार्शनिक पक्ष की अपेक्षा प्रक्रिया प्रधान पक्ष का विशेष रूप से प्रचार हुआ। इसलिए नाथ योगियों द्वारा अपनी साधना प्रक्रियाओं को लोकभाषा में उपदिष्ट किया गया। डा. बडथ्वाल के विचार में गोरखनाथ अपनी तरह के एकमात्र कवि होने के अतिरिक्त हिन्दी काव्य पर अपनी विशिष्ट छाप अंकित करने वाले भी सिद्ध हुए। उनके अनेक परवर्ती अनुयायियों ने योग विषयक काव्य सृजन की परंपरा जीवन्त रखी।[13] सन्त साहित्य की संज्ञा से अभिहित मध्यकालीन हिन्दी काव्य के अन्तर्गत

यही लोकाभिव्यक्ति अपने नैतिक स्वरूप में प्रतिध्वनित होती प्रतीत होती है। योगपरक अभिव्यक्तियां यद्यपि साहित्य की कोटि में ग्राह्य नहीं हुई तथापि उन्होंने समकालीन साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया।

नाथ साहित्य की रचनाओं का स्वर जहां ब्रह्मचर्य–संयम,[२४] सत्य, मधुरता, मनोविकार–निवारण,[२५] युक्ताहार–विहार,[२६] गुरुशरणागति,[२७] इत्यादि पर बल देने के रूप में नैतिक रहा है वहीं नाथ योगियों ने अपनी कठोर साधना द्वारा ज्ञान चर्चा को मात्र कहने के स्थान पर 'करनी' प्रधान रूप में प्रतिष्ठित करने की भी चेष्टा की है। यथा–

कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुंण्यां सूवा बिलाई साया, पंडित के हाथ रह गई पोथी।[२८]

आदर्श एवं व्यवहार के सामरस्य की उपर्युक्त परम्परा परवर्ती भक्ति साहित्य के अन्तर्गत पुनर्पुष्टि प्राप्त करती प्रतीत होती है। नाथ सम्प्रदाय की लोकाभिव्यक्ति ज्ञान परक होने के समानान्तर मौलिक रूप से साधनात्मक है, वह अपने समय की यथार्थ अभिव्यक्ति है। गोरखनाथ के नेतृत्व में गठित विविध साधना मतों की युगीन तथा क्षेत्रीय परिवेश में प्रभावकारिता ने नाथ पंथ के अन्तर्गत विभिन्न पक्षीय लोकात्मकता के समावेशन को पर्याप्त समृद्ध किया। फलतः नाथ साधना की लौकिक अभिव्यक्ति विविध प्रकारेण हुई। यथा– जादू टोने के चमत्कारिकता युक्त आतंक, संगीत और सती धर्म के अन्तर्गत नाथ साधना का उल्लेख आदि।

परन्तु उपर्युक्त सन्दर्भ में यह विशेष स्मरणीय है कि नाथ योगियों को लोकमानस से मात्र औपचारिक श्रद्धा ही प्राप्त हो सकी, इनके साधना व्यवहार से जनता प्रायः असंपृक्त ही रही। इसलिए एक ओर गोरखनाथ ने साधनाप्रवण लोकधर्म शब्दित करने के प्रयास किए तो दूसरी ओर उनकी अनुवर्ती परम्परा ने ऐसे विकृत "गुरुवाद" को प्रश्रय दिया जिसके अन्धगर्त में सनातन चिन्तन धारा अवरुद्ध होकर मनमाने मतान्तरों की भ्रामकता एवं लोलुपता के भंवरजाल में परिणत हो चली। परिणामस्वरूप यथार्थ साधक योग साधना के स्थान पर ज्ञान तथा उपासना की ओर अधिक उन्मुख होने लगे जिससे भक्ति के पुनरुन्मेष के अन्तर्गत मध्ययुगीन निर्गुण–सगुण संतों–भक्तों का साधना–व्यवहार लोकजीवन के आधारभूत निर्धारक तत्व के रूप में उभरा।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर

१ द्विवेदी, हजारी प्रसाद– नाथ सम्प्रदाय पृ १२३
२ द्विवेदी, ह. प्र – मध्यकालीन धर्म साधना, पृ ६५
३ नाथ सम्प्रदाय– पृ १२४
४ हकार कथितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचंद्रयशोयोगात् हठयोगो निगद्यते।।
५ नाथ सम्प्रदाय, पृ १२३
६ अजपा–जपै सुनि मन धरै, पांचौ इन्द्री निग्रह करै।
ब्रह्म अगिनि में होमै काया, तासु महादेव वन्दे पाया।।
–बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त, गोरखवाणी, सबदी १८
७ हसिबा खेलिबा गईबा गीत, दृढ़ करि राखि अपना चीत।। –वही, सबदी
८ धन जोबन की करै न आस, चित्त न राखै कामनि पास।
नाथ बिन्दु जाके घट जरै, ताकि सेवा पारवती करै।। –वही सबदी १९
९ नाथ सम्प्रदाय, पृ १२५
१० वर्मा, रामकुमार – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ११३
११ वही, पृ ११४
१२ सारंसारं गहर गंभीरं गगन उछलिया नादं।
मानिक पाया फेरि लुकाया झूठा वाद विवादं।। –गोरखवाणी, सबदी १२
१३ गुरु मध्य आदि अनन्त अद्भुत अमल अगम अगोचरम्।
विभु विरज पार अपार निर्गुण सगुण सत विश्वेश्वरम्।। –गोरखवाणी, सबदी ३४
१४ देव कला से संजय रहिबा, भूतकला अहारं।
मन पवनातौ उनमनि धरिबा, ते जोगी तत सारं।। गोरखवाणी, सबदी ३४
दास, श्याम सुन्दर– हिन्दी साहित्य, पृ १३० द्विवेदी, हजारी प्रसाद–हिन्दी साहित्य, कबीर, पृ १५३
१५ गोरखवाणी, सबदी १२१
१६ वही, सबदी ६८
१७ वही, सबदी १२६
१८ उपाध्याय, विश्वम्भरनाथ –हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ ३२९
१९ मध्यकालीन धर्म साधना, पृ ६८
२० बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त– योगप्रवाह, पृ २१७
२१ नागा मुनि दूधाधरी एता जोग न पाया।
२२ गोरखवाणी, सबदी १९
मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ ६६
२३ योग प्रवाह, पृ ६५–६६
२४ रांड तक्या न षसिया जीवै, पुरुष तज्यां नहिं नारी।
कहै नाथ वे दोनो जिनसे, धोखा की असवारी।।
२५ नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू, दिढ़ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अहंकार निबारौ, तौ सबै दिसन्तर कीया।।
२६ थोड़ा बोलै, थोड़ा षाई, तिस घट पवनां रहै समाई।
अवधू अहार तोड़ौ, निद्रा मोड़ौ, कबहुं न होइगा रोगी।
अति अहार इंद्री बल करै, नासै ग्यान मैथुन चित धरै।
व्यापै निद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल।।
२७ गगन मंडल में औंधा कुंआ, तहां अमृत का वासा।
सगुरा सूरा भरि भरि पीवै, निगुरा जाय पियासा।। –गोरखबानी
कोई वादी कोई विवादी, जोगी को बाद न करना।
अड़सठि तीरथ समंदि समावै यूं जोगी को गुरुमुखि जरना।। –गोरखबानी, सबदी १३
२८ गोरखबानी, पृ ४२

# मेवाड़ के नाथ–योगी एवं नवरात्रि पर्व

डा. राजेन्द्रनाथ पुरोहित

मेवाड़ में नाथयोगियों का उल्लेख ८वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी पर्यन्त पाया जाता है। उक्त योगी, शैव–सम्प्रदाय की पाशुपत–लकुलीश शाखा से नाथ पंथ में अन्तर्भुक्त अनुयायी हैं जो कनफड़े तथा शरीर पर भस्म रमाने वाले एवं आजीवन् ब्रह्मचारी रहने वाले साधु थे।[1] मेवाड़ में नाथयोगियों की दो श्रेणियां विद्यमान थीं। प्रथम मेवाड़ राजवंश के आराध्य देव एकलिंगेश्वर के (मठाधीश) महन्त हारीतराशि की शिष्य परम्परा के नाथ योगी एवं द्वितीय मेवाड़ क्षेत्र के आसनधारी नाथ योगी जिन्हें समय समय पर शासकों द्वारा आसन स्थापित करने हेतु भूमि दी जाकर आश्रय प्रदान किया गया। एकलिंगेश्वर के नाथ योगी हारीतराशि[2] का काल मेवाड़ के तत्कालीन शासक बापा (वि सं ७६१–८१०) में समकालीन माना गया है।[3] बापा को हारीत के वरदान से ही मेवाड़ राज्य की प्राप्ति हुई थी, तदनुसार कालांतर में हारीतराशि की शिष्य परम्परा में ही एकलिंगेश्वर के मठाधीश (महंत) नियुक्त होते रहे। हारीतराशि की शिष्य परम्परा के सन्दर्भ में नरवाहन के काल की एकलिंगेंश्वर मंदिर स्थित ''नाथों के मंदिर की प्रशस्ति [4] (वि सं १०२८) उल्लेखनीय है, जिसमें हारीत की शिष्य परम्परा में वेदांगमुनि, सुपूजितराशि, सद्योराशि तथा विनिश्चितराशि के नाम प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार ''चित्तौड़ नौ कोटा प्रशस्ति (वि सं १३३५)[5] में हारीत की परम्परा में महेश्वरराशि तथा उसके शिष्य शिवराशि के नाम पाये जाते हैं। ''चीरवा ग्राम के मंदिर की प्रशस्ति (वि. सं १३३०)[6]'' में शिवराशि तथा शशिगुण राशि का उल्लेख मिलता है। एकलिंगेश्वर मंदिर में स्थित मठ की एक ताक में लगे हुए वि सं १५६२ के शिलालेख[7]

के अनुसार मठाधीशों की परम्परा में नरहरि का सन्दर्भ प्राप्त होता है, जिन्होंने मंदिर के प्राचीन मठ का विस्तार किया था। कालांतर में नाथ मठाधीशों के चरित्र संदिग्ध होने लगे। तदनुसार महाराणा जगतसिंह ने वि सं १६८७ में नाथ मठाधीशों के स्थान पर काशी से सन्यासी रामानंद को बुलवाकर नियुक्त किया।[८] तब से एकलिंगेश्वर के मठाधीश गोस्वामी कहलाने लगे, किन्तु स्थान पाशुपत सम्प्रदाय का होने के कारण गोस्वामियों की वेशभूषा नाथ महंतों की भांति ही प्रचलित रही।[९] नाथयोगियों द्वारा मेवाड़ के शासकों को रावल उपाधि प्रदान करने के सन्दर्भ में कोई समकालीन प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। किन्तु १६ वी शताब्दी की मेवाड़ की वंशावलियां इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। वंशावली[१०] के अनुसार योगी आदिनाथ एवं हारीतराशि ने बापा को मेवाड़ राज्य का वरदान दिया तथा उसे रावल की पदवी प्रदान की। ''मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास[११] पांडुलिपि के अनुसार इष्टदेव शंकर की आज्ञानुसार मेवाड के शासकों ने आदित्य पद का त्याग कर रावल पद धारित किया। उपरोक्त विवरण से इस बात के संकेत प्राप्त होते हैं कि मेवाड के शासकों की शिवभक्ति के प्रसाद स्वरूप ही उन्हें एकलिंगेश्वर के नाथ–महंत तथा कुलगुरु ने रावल पदवी प्रदान की। इस तथ्य की पुष्टि राजस्थान के लकुलीश मत प्रभावित राज्यों के शासकों की रावल[१२] उपाधि से होती है जो उन्हें नाथयोगियों से ही प्राप्त हुई। रावल खुमाण एवं नाथ योगियों के सम्बंधों पर प्रकाश डालने वाली एक धटना के अनुसार खुमाण ने एकलिंगेश्वर के दर्शन के पश्चात् मेवाड के पर्वतीय प्रदेश में गमन किया, जहां उसकी भेंट योगी बसंतनाथ से हुई। खुमाण ने उसके दर्शन कर सम्मान किया। योगी ने खुमाण को उस प्रदेश में एक नगर बसाने की आज्ञा दी। तदनुसार खुमाण ने नगर स्थापित कर उसे सुखुमाणपुर नाम प्रदान किया जो कालांतर में खमणोर के नाम से प्रसिद्ध हुआ[१३]।मेवाड़ के शासकों द्वारा आसनधारी नाथयोगियों को पुण्यार्थ भूमि प्रदान करने के सन्दर्भ १०वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी पर्यन्त प्राप्त होते हैं। महाराणा जवानसिंह के काल में संगृहीत ताम्रपत्र की बही[१४] मेवाड़ के नाथ योगियों के सम्बंध में महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करती है। राजा शालिवाहन ने ग्राम पुर में आयस भैरुनाथ के पूर्व गुरु को ५०१ बीधा भूमि पुण्यार्थ प्रदान की। महाराणा

मोकल ने ग्राम सलोदा में धार्मिक स्थल जरगाजी के पुजारी आयस गुमाननाथ, रतननाथ तथा कीकानाथ के पूर्व गुरु को १० बीघा भूमि प्रदान की। महाराणा रायमल ने ग्राम आडणा में आयस जगन्नाथ, कुसालनाथ तथा केसूनाथ के पूर्वगुरु को ३० बीघा भूमि पुण्यार्थ प्रदान की। महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) ने ग्राम गांगड़ा में आयस हरजीनाथ, फतेहनाथ तथा चन्द्रनाथ के पूर्वगुरु को २४० बीघा भूमि पुण्यार्थ प्रदान की। महाराणा राजसिंह (प्रथम) ने ग्राम कपासन में आयस डूंगरनाथ, भीमनाथ के पूर्वगुरु को १६ बीघा भूमि प्रदान की। महाराणा अरिसिंह ने ग्राम भीलोड़ा में आयस नेछलनाथ के पूर्वगुरु को ९ बीघा भूमि पुण्यार्थ प्रदान की।

उपरोक्त विवरण के अतिरिक्त मेवाड़ के महाराणा एवं नाथ योगियों के सम्बंधों का बोध कराने वाले कुछ समकालीन तथ्य प्रकाश में आये हैं, तदनुसार वि सं १६४५ में महाराणा प्रताप ने आयस आणंदनाथ को सींदरी के बांधण ग्राम में हल चार की भूमि पुण्यार्थ प्रदान की। उक्त ताम्र–पत्र भामाशाह की आज्ञा से जारी किया गया[15]। सैन्य शिविर से महाराणा जयसिंह द्वारा दरीयानाथ के स्थानक, आयस सुकालनाथ को लिखे गये एक पत्र के अनुसार महाराणा ने आयस की कुशलक्षेम ज्ञात करते हुए, आयस द्वारा भेजे गये श्रीफल एवं केले के प्रसादी की प्राप्ति की सूचना भिजवाई।[16] महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) द्वारा भी आयस सुकालनाथ की कुशलक्षेम ज्ञात करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[17] वि सं १७७० में महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने आयस भिखारीनाथ को आसन हेतु ६० बीघा भूमि ग्राम पालड़ी में पुण्यार्थ प्रदान की।[18] वि सं १७७३ में महाराणा द्वारा आयोजित हाथियों की लड़ाई के एक आयोजन के अवसर पर आयस भिखारीनाथ के सम्मिलित होने का उल्लेख पाया जाता है।[19] वि सं १७८५ में महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने लादुवास के आयस कुंवरनाथ को करेड़ा का आधा परगना पुण्यार्थ प्रदान किया।[20] वि सं १८०२ में महाराणा जगतसिं (द्वितीय) ने आयस जोतनाथ को आसन हेतु ५०० रुपयों की आय का ग्राम खोड़ीप पुण्यार्थ प्रदान किया[21]।

नाथयोगियों की भूमिका कुलगुरु तथा एकलिंगेश्वर के महंत के रूप में महाराणा जगतसिंह के काल में समाप्त हो गई, किन्तु

कालान्तर में नवरात्रि पर्व में इन योगियों की भूमिका ने मेवाड़ के शासकों के साथ उनके सम्बंधों को चिरस्थायी बनाये रखा। प्रथा के अनुसार प्रतिवर्ष राज्य की ओर से मनाये जाने वाले नवरात्रि पर्व के अवसर पर खड्‌ग–स्थापना नाथ योगी के द्वारा ही की जाती थी। नाथ योगियों की इस सांस्कृतिक निधि ने मेवाड़ राज्य के साथ उनके महत्व को बनाये रखा। उक्त प्रथा का मुख्य कारण योगी हारीत राशि के आशीर्वाद से बापा को मेवाड़ राज्य की प्राप्ति होना था। समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों में प्राप्त विवरण के अनुसार प्रतिवर्ष आश्विन माह कृष्ण पक्ष में मेवाड़ के प्रमुख आसनधारी नाथ योगी (आयस) लादुवास आमेर, आंक्या तथा दांतड़ा को राज्य की ओर से सबको रुक्के भिजवाँये जाते तथा उन्हें नवरात्रि पर्व पर आमंत्रित किया जाता था। ये आयस अपने नाथ साधुओं की जमात सहित आश्विन कृष्ण १४ के पूर्व राजधानी, उदयपुर पहुंच जाते तथा लादुवास आयस के नेतृत्व में खड्‌ग स्थापना स्थल पर आश्विन शुक्ल ८ पर्यन्त निवास करते। आश्विन कृष्ण १४ को राज्य का षट्‌दर्शन अधिकारी उक्त स्थल पर जाकर लादुवास आयस से सम्पर्क कर खड्‌ग स्थापना के दौरान अष्टमी पर्यन्त निर्जल एवं निराहार बैठने वाले योगी के बारे में विमर्श करता। योगी का नाम निश्चित होने पर उसे हरड़े का सेवन करवाकर उदर को स्वच्छ करवाया जाता था। दूसरे दिन आश्विन शुक्ल १ को राजमहल में सिलेहखाना का दरोगा खड्‌ग लेकर महाराणा के समक्ष उपस्थित होता, महाराणा उसको प्रणाम कर, अपने मस्तक से स्पर्श करा पुनः दारोगा को प्रदान करते। सिलेहखाना का दारोगा उक्त खड्‌ग को लिए हुए घोडे पर सवार होता तथा राजकीय सवारी एवं प्रबंध के साथ स्थापना स्थल पहुंचता, जहां लादुवास आयस की देखरेख में एक नाथ योगी खड़ग को हाथ में लिए हुए दक्षिण दिशा में आसीन हो जाता। भूमि पर जव बोये जाकर कलश की स्थापना की जाती थी। अष्टमी पर्यन्त यह योगी निर्जल एवं निराहार इस अवस्था में बैठा रहता, उसके दर्शनार्थ प्रतिदिन नगर के हजारों नागरिक जाया करते थे। चतुर्थी को महाराणा भी दर्शन करने जाते थे। आश्विन शुक्ल ८ को नवरात्रि विसर्जन होता, खड्‌गधारी योगी राजकीय प्रबंध एवं सवारी के साथ पालकी में बैठे हुए लादुवास आयस एवं अन्य नाथ साधुओं की

जमात सहित राजमहल पहुंचता, जहां महाराणा नाथयोगियों का स्वागत करते थे। लादुवास आयस योगी से खड्ग लेकर महाराणा को पेश करता, महाराणा उसे मस्तक से स्पर्श कर सिलेहखाना के दारोगा को प्रदान करते। महाराणा इस अवसर पर खड्गधारी योगी का खप्पर रुपयों तथा मुहरों (स्वर्ण) से भर देते, प्रत्युत्तर में उपस्थित नाथयोगी नाद बजाते हुए महाराणा को आशीर्वाद प्रदान करते। राज्य की ओर से इस अवसर पर नाथ साधुओं की जमात को भोज दिया जाता तथा उन्हें माला, मेखला, दुपट्टा तथा दुशालें वितरित कर विदा किया जाता था। लादुवास, आंक्या, आमेर तथा दांतड़ा के आयस को महाराणा स्वयं भेंट कर विदा करते थे।

एकलिंगेश्वर के महंत, मेवाड़ राजवंश के कुलगुरु, मेवाड़ के आसनधारी योगी एवं नवरात्रि पर्व पर खड्गधारी साधु के रूप में नाथयोगियों की भूमिका उल्लेखनीय है।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, राजमहल, उदयपुर

१ माहेश्वरी, हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य भाग प्रथम पृ १९९–२०१।
२ ओझा. गौ. ही. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग –१, पृ ३३
३ गोस्वामी राघवानन्द भगवान एकलिंग और हारीत पृ. १२५–१२६
४ वही, पृ १३१
५ वही पृ १३१
६ वही पृ १३२
७ वही पृ १३२
८ (अ) वही पृ १३२ (ब) वही क्र सं २, पृ ३३
९ वही, पृ १३२
१० रा प्रा वि प्र उदयपुर, वंशावली, ग्रंथांक ४२६२, पृ ४ (ब)
११ वही, ग्रंथांक २७३०, पुरोहित अक्षयनाथ मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, पृ १८ (अ)
१२ वही, क्र सं १, पृ २००–२०१
१३ वही क्र सं ११, पृ २१ (ब)
१४ अभिलेखागार, उदयपुर, बक्षीखाना, तांबा पत्र की बही, वि सं १८९१–९३, पृ १५, २३, ११०, ११६, ११७, १२२, १६१
१५ भटनागर, राजेन्द्र प्रकाश, भामाशाह एवं ताराचन्द, पृ ७१–७२
१६ पुरोहित संग्रह, बही सं ५, वि सं १७६४–८१) पृ ५७
१७ वही क्र सं १६, पृ ५७
१८ वही, क्र सं १६, पृ ५७
१९ वही, क्र सं १६, पृ १२३
२० वही क्र सं १६ पृ १०७
२१ वही, क्र सं १६ पृ ५८

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१. [illegible]
२. [illegible]
३. [illegible]
४. वही, [illegible]
५. वही, [illegible]
६. वही, [illegible]
७. वही, [illegible]
८. वही, [illegible]
९. वही, [illegible]
१०. [illegible]
११. [illegible]
१२. [illegible]
१३. [illegible]
१४. [illegible]
१५. [illegible]
१६. [illegible]
१७. वही, [illegible]
१८. वही, [illegible]
१९. वही, [illegible]
२०. वही, [illegible]
२१. वही, [illegible]

# नाथयोगविमर्श

डा. सत्यप्रकाश दुबे

सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक के साक्षात्कृत धर्मा–ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों तथा दार्शनिकों ने प्रायः एकमत से योगविद्या को ही आत्मोन्नति का सर्वोपकारक कारक माना है। वैदिक एव अवैदिक धर्म तथा सम्प्रदाय इसी विद्या को मुख्यतः प्रतिपादित करते रहे हैं। ज्ञान, कर्म तथा उपासना आदि पद्धतियां भी इस योग चेतना से इतनी प्रभावित हुई हैं कि साधना के इतिहास में भी ये ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा उपासना योग में परिणत हो गयी। वस्तुतः इस योग विद्या के द्वारा मानव का अन्तःकरण निर्मल, शांत एवं स्थिर होता है जिसकी सामर्थ्य से वह आत्मा का रहस्य समझने में समर्थ हो जाता है। अतः इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है कि 'नास्ति योगसमं बलम्'। यह योगविद्या प्राणिमात्र का सार्वभौम धर्म है जो कि आत्मतत्व का साक्षात्कार कराता हुआ मन एवं अन्तःकरण को सुसंस्कृत करता है।

***योगशब्द की व्युत्पत्ति–***

भारतीय वाङ्मय में योग शब्द का प्रयोग इतने व्यापक अर्थ में किया गया है कि इसके सामान्य तथा विशेष दोनों ही प्रकार के अर्थ गृहीत होते हैं। संस्कृत व्याकरण के आचार्य पाणिनि के धातुपाठ के अन्तर्गत पठित तीन धातुओं से योग शब्द की सिद्धि होती है जो कि रुधादिगणपठित 'युजिर् योगे', चुरादिगण पठित युज् संयमने' तथा दिवादिगण पठित 'युज् समाधौ' हैं।

श्रीमदभगवद्गीता में वर्णित योग शब्द के अर्थ के आधार पर इसका तीन रूपों में विभाग किया जा सकता है–

१ 'युजिर् योगे' धातु से निष्पन्न योगशब्द परमात्मा के साथ नित्यसम्बंध को प्रतिपादित करता है। यथा–

'समत्वं योग उच्यते'

२ 'युज् संयमने' धातु से निष्पन्न योगशब्द संयमन, सामर्थ्य, प्रभाव आदि अर्थ को स्पष्ट करता है यथा–

'पश्य मे योगमैश्वरम्'

३ 'युज् समाधौ' धातु से निष्पन्न योग शब्द चित्त की स्थिरता का वाचक है। यथा–

यत्नोपरमते चित्तं निरूद्धं योगसेवया'

वैयाकरणसिद्धांतकौमुदीकार श्रीभट्टोजिदीक्षितने दिवादिगण पठित 'युज्' धातु के समाधि अर्थ. से. सन्तुष्ट न होकर उसके स्पष्टीकरण के लिए 'समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोधः' का भी प्रतिपादन किया है। 'युज्' धातु से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय से निष्पन्न योग शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है–

युज्यते समाधौ विधीयते मन अनेन इति योगः।

अमरकोशकार ने 'योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु' [1] आदि अर्थों में योग शब्द को स्वीकार किया है। आक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार 'योग' हिन्दू दर्शन की वह पद्धति है जिसके अनुसार एकाग्रचिन्तन, तथा तपस्या के द्वारा साधक की आत्मा–परमात्मा के साथ मिलकर ऐक्यभाव को प्राप्त हो जाती है।[2]

पातञ्जल योगदर्शन में चित्त (अन्तःकरण अर्थात मन, बुद्धि एवं अहंकार) की वृतियों के निग्रह को ही योग शब्द से व्यवहृत किया गया है।[3]

योगशास्त्र के अनुसार जीव स्वाभाविक रूप से शुद्ध, चेतन एवं स्वतंत्र है। वह सामान्य रूप से स्थूल शरीर एवं विशेष रूप से सूक्ष्म शरीर में अधिष्ठित होकर भी शारीरिक बंधन एवं मानसिक वैकृत भावों से सदा मुक्त रहता है।

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा एवं स्मृति ये पांच चित्त की वृत्तियां हैं। ध्यान कल्पना एवं स्मृति ये मानसिक वृत्तियां हैं। आत्मा इन सभी विकारों से रहित है। परन्तु भ्रमवश जब वह स्वयं को अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि क्लेशपञ्चक का आधार मान बैठता है तो उस स्थिति में विवेक ज्ञानशून्य होने से वह उन विकारों में स्वात्मसत्ता का अनुभव करने लगता है। यही भावना उस आत्मा के बन्धन का कारण बनती है। इसी बन्धन से निवृत्तिं हेतु शरीर, इन्द्रिय तथा मन की वृत्तियों के निरोध की अपेक्षा होती है। चित्तवृत्ति के निरोध से आत्मतत्व को उसके वास्तविक स्वरूप में संस्थापित करना ही योग का चरम उद्देश्य है।

**नाथ सम्प्रदाय तथा गुरुतत्व–**

नाथ सम्प्रदाय मध्यकालीन युग का एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय है। संस्कृत व्याकरण की 'नाथृ याञ्चोपतापैश्वर्याशीःषु' धातु से तद् अर्थों में अच् प्रत्यय करने पर 'नाथ' शब्द की सिद्धि होती है। इस नाथ शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है अनादिभुवन की स्थापना[4] अथवा अज्ञानान्धकार से दूर करने वाला ब्रह्म।[5]

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय के सिद्धमत योगमार्ग योग, सम्प्रदाय, अवधूतमत अवधूतसम्प्रदाय आदि संज्ञाओं से भी व्यवहृत होने का संकेत दिया है।

नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों को प्रायः शैव के रूप में अभिहित किया जाता है जिसका कारण यह भी हो सकता है कि इन्होंने शिव तथा शक्ति को एक शाश्वत सत्य के रूप में स्वीकार किया था। उसका यह मानना है कि आदिनाथ ही उनके प्रथम नाथ थे तथा वे ही मूलतः योगविद्या के रहस्यों के प्रवर्तक थे।

**गुरुतत्व–**

नाथसम्प्रदाय की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि उनके यहां 'नाथ' ही परमतत्व है। वही परमानन्दमय एवं विश्वगुरु निरंजन तथा विश्वव्यापी है। गोरक्षसिद्धांतसंग्रहकार ने योगतत्व का

चरम लक्ष्य 'नाथस्वरूपेणावस्थानम्'[६] है। नाथयोगी अपनी साधना के द्वारा प्रकृतिजन्य समस्त वैकृतभावों से रहित होकर अवधूत की स्थिति को प्राप्त करना चाहता है। अवधूत अर्थात सुख–दुःख, पाप–पुण्य, मित्र–शत्रु आदि सभी में समभाव रखने वाला। ऐसे महापुरुष ही नाथ सम्प्रदाय में 'गुरु' शब्द से अभिहित होते हैं क्योंकि वही महापुरुष ब्राह्मी–सम्पति का अक्षयकोश होता है जिसके ज्ञानशर से निहत होकर शिष्य का अतिचञ्चल एवं अति बलशाली मन स्ववश होता है। 'यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे' स्वरूप का साक्षात्कार भी इन्हीं की अनुकम्पा से होता है। नाथमतानुयायियों की अपनी यह धारणा है कि ऐसे महामानव नाथपद के अधिकारी होते हैं।

***नाथ सम्प्रदाय एवं योग***

नाथ सम्प्रदाय द्वारा प्रचारित साधना के अन्तर्गत योग के क्षेत्र में कई अभिनव सिद्धांतों का सूत्रपात हुआ। इन साधकों ने आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिए शरीर को सबसे उपयुक्त साधन मानकर 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' की दृष्टि से शरीर को पुष्ट रखने पर बल दिया जो कि अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा अपना वैशिष्ट्य है। इस सम्प्रदाय में जिन तात्विक सिद्धांतों के विवेचन मिलते हैं उनमें परमतत्व को भाव–अभाव से परे कैवल्यरूप ही माना गया है। यहां जीव एवं ब्रह्म के ऐक्य की पद्धति को ही योग कहा गया है।

पातञ्जलयोगदर्शन जहां यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार धारणा–ध्यान तथा समाधि रूप से अष्टांगयोग की बात कहता है जिनमें यम एवं नियम को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह तथा शौच–संतोष तपः स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान भेद से पांच पांच प्रकार का प्रतिपादित करता है वहां नाथ सम्प्रदाय आसन प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान तथा समाधिभेद से षडंगयोग को मानता है। उनकी दृष्टि में षडंग योग ही अमरत्व की प्राप्ति में सहायक बनते हैं। हठयोगप्रदीपिका में यम की दस कोटि मानी गयी है जो कि अहिंसा सत्य अस्तेय–ब्रह्मचर्य–क्षमा–धृति–दया–आर्जव मिताहार एवं शौचरूप है। इसी प्रकार नियम भी दस हैं– तपः–संतोष–आस्तिक्य–दान–ईश्वरप्रणिधान–सिद्धांतवाक्यश्रवण–ही–मति–जप तथा होम। यम–नियम की पूर्णता के अनन्तर ही हठयोग का श्रीगणेश

होता है जिसमें आसन के सिद्ध हो जाने पर ही प्राणायाम का विधान होता है। श्वास–प्रश्वास से गति का निरोध ही प्राणायाम है जिससे होने वाले परिणाम के सम्बंध में पंचशिखाचार्य का कथन है– 'तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य'।

इसी प्रकार मनुस्मृतिकार की दृष्टि में–

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।[७]

योगसाधना हेतु नाथ सम्प्रदाय में इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि साधक शरीरस्थ षट्चक्रों, षोडश आधारों, द्विलक्ष्य, पांच व्योम, एक स्तम्भ नवद्वार तथा पांच अधिष्ठाताओं की पूर्ण जानकारी रखें–

षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपंचकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः।।[८]

नाथ सम्प्रदाय में बौद्ध मतानुयायियों की तरह शून्य सिद्धांत को भी स्थान दिया गया है। इस शून्य तत्व की चार अवस्थाएं हैं– शून्य, अतिशून्य, महाशून्य एवं सहजशून्य। योग साधना के द्वारा इस शून्य चतुष्टय के अद्भुत नाद का चार विभिन्न अवस्थाओं के साथ ऐक्य स्थापित किया जाता है।

नाथ योग में परमतत्व की प्राप्ति के लिए दो प्रधान साधन देखे जा सकते हैं– हठयोग तथा लययोग। यहां हठ शब्द शास्त्रकारों की दृष्टि में सूर्य एवं चंद्र का बोधक है।

हकारः कथितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसो योगात् हठयोगो निगद्यते।।[९]

ये सूर्य एवं चन्द्र नामक तत्व ही दृष्टिभेद से प्राण एवं अपान तथा इड़ा पिंगला के रूप में भी अभिहित होते हैं। हठयोग का तात्पर्य आधिदैविक आधिभौतिक आदि बाधाओं की चिन्ता किये बिना हठ–दृढ़तापूर्वक सिद्धि प्राप्ति करना है।

योग का सम्बंध श्वास से होने के कारण नाथ सम्प्रदाय में वायु साधना को भी महत्व दिया गया है। वायु साधना से तात्पर्य है– वायु निरोध (वायुभक्षण)। इस सम्प्रदाय में पूरे शरीर

पर भस्म लगाने का भी रहस्य है जिससे रोमछिद्रों के बन्द हो जाने से वायु अन्दर बाहर आ जा न सके। इस पिंड के भिन्न भिन्न भागों में प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कर्क देवदत्त तथा धनञ्जय नामक दस वायु व्याप्त हैं जिसमें अन्य की अपेक्षा प्राणवायु की प्रधानता है क्योंकि योग के प्रक्रियात्मक पक्ष का आधार प्राण ही है। इडा पिंगला एवं सुषुम्ना प्राण की वाहिकाएं हैं। प्राण तथा अपान में परस्पर संघर्ष चलता रहता है। प्राण अपान को खींचता है तथा अपान प्राण को। इस वायुसाधना की पूर्णता के लिए 'अजपाजाप' की आवश्यकता पर बल दिया गया है–

ऐसा जाप जपौ मन लाई। सोऽहं सोऽहं अजपा गाई।।
आसण दिढ़ धरि धरौ धियानं। अहनिस सुमिरौ ब्रह्मगियानम्।।
जाग्रत न्यन्द्रा सुलप अहारं। कामक्रोध अहंकार निवारम्।।
छसै सहस्र इकीसौ जाप। अहनद उपजै आपहि आप।।
बंक नालि मैं अग्गैसूर। रोम–रोम धुनि बाजै तूर।।
उलटै कमल सहसदलवास। भ्रमरगुफा महिं जोति प्रकाश।।[10]

नाथ सम्प्रदाय इन्द्रिय निग्रह एवं प्राण निरोध के साथ साथ मनःसाधना पर भी बल देता है। वायु से भी चंचल वेगवान इस मन को अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा[11] सांसारिक विषयों से पृथक् करके अन्तर्मुखी हो जाना। इस प्रकार मन के स्थिर एवं निष्कलुष हो जाने पर आंतरिक निर्मलता आ जाती है।

इस तरह योगाभ्यास में निरत साधक अवस्था विशेष में पहुंच जाने पर सिद्धियों को भी प्राप्त कर लेता है। ये सिद्धियां– अणिमा–महिमा–लाधिमा–गरिमा–प्राप्तिः–प्राकाम्य– ईशित्व तथा वशित्व रूप से आठ प्रकार की होती है। इनकी उपलब्धि से योगी सकल संकल्प सिद्ध पुरुष हो जाता है।

नाथ सम्प्रदाय में योगसाधना के अन्तर्गत मुख्य रूप से इन्द्रियनिरोध प्राणसाधना एवं मनःनिग्रह पर विशेष बल दिया गया है जिसकी सिद्धि हो जाने पर योगी अवस्था विशेष से होकर नाथस्वरूपेणावस्थानम् की स्थिति तक पहुंचने में समर्थ हो जाता है। वे अवस्थायें घट, परिचय तथा निष्पति आदि नामों से अभिहित होती हैं। घट का तात्पर्य है– साधक का एकरस हो जाना, शरीर

चिन्तन में मग्न रहना, बिंदु की पूर्णतः रक्षा करना, स्वशरीर में निवास करना, अहर्निश वारुणी (अमृतत्व) का पान करना तथा द्वंद्वों पर विजय प्राप्त कर लेना।

घट ही रहिबा मन न जाई दूर।
अहनिस पीवै जोगी वारुणी सूर।।[12]

परिचय योगी वह है जो उन्मन समाधि में क्रीडा करता है, लीन रहता है, रातदिन इच्छानुसार परब्रह्म का समागम करता रहता है तथा क्षण क्षण में आणिमादि सिद्धियों के द्वारा नानारूप धारण कर सकता है–

परचय जोगी उन्मन बेला।
अहनिसि इन्छ्या करै देवता सूं मेला।।
जिन जिन जोगी नाना रूप।
तब जानिबा जोगी परचय सरूप।।[13]

निष्पत्ति की स्थिति तक पहुंचकर साधक अवधूत की दशा को प्राप्त कर लेता है। वह साधना में इतना मग्न हो जाता है कि सभी प्रकार के बन्धनों को काटता हुआ नाथस्वरूप को प्राप्त हो जाता है–

निष्पती जोगी जानिबा कैसा। अगनी पाणी लोहा मांनै जैसा।।
राजा परजा समिकरि देष। तब जानिबा जोगी सपति का भेषा।।[14]

इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय से सम्बंधित योग के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि यह सम्प्रदाय भारतीय साधना के पटल पर एक प्रकाश स्तम्भ की भांति अपनी योग युक्तियों का अमल आलोक प्रसारित करता है। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत साधना के क्षेत्र में मुख्य रूप से ये तत्व उभर कर सामने आये हैं– गुरुमहिमा, वैराग्य, इंद्रिय–निग्रह, प्राणनिग्रह, मनःनिग्रह, कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्रभेद, अजपाजाप, अनाहदनाद, शून्य तत्व, शिव–शक्ति, पिण्ड ब्रह्माण्ड एवं घट परिचय तथा निष्पत्ति के द्वारा नाथस्वरूपावस्थान।

अतः इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि नाथ सम्प्रदायानुमोदित योगसाधना 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' होकर भी श्रेष्ठतम कल्याणकारक

मार्ग है जिस पर चलता हुआ साधक अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसलिए शास्त्रों में योगयुक्त जीवन की ही श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है–

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव,
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा,
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।[१५]

सहायक आचार्य
संस्कृत विभाग
जयनारायण विश्वविद्यालय
जोधपुर, राजस्थान

१ अमरकोश तृतीय काण्ड नानार्थ वर्ण, २२
२ A Hindu system of philosophic meditation asd ascceticism designed to effect the re-union of the devotee's soul with the universal spirit
*(उद्धृत–भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में योग भावना, डॉ शिव शंकर शर्मा)*
३ *योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः पातञ्जलयोगदर्शन, १–२*
४ *नाकारोऽनादिरूपः थकारः स्थाप्यतेसदा। भुवनत्रयमेवैकः श्रीगोरक्ष नमोऽस्तुते।।*
*भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में योग भावना, पृ. १६७.*
५ *श्रीमोक्षदानदक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात्।*
*स्थगिताज्ञानविभवात् श्रीनाथ इति गीयते। वही पृ. १६९*
६ *तुलनीय–तदा द्रष्टुः तत् स्वरूपेऽस्थानम्, पातञ्जलयोगदर्शन, १–३*
७ *मनुस्मृति, ६/७१*
८ *गोरक्षशतकम्, १३–१४*
९ *सिद्धसिद्धांतपद्धति सम्पादक–कल्याणी मल्लिक, पृष्ठ ७, पादटिप्पणी*
१० *गोरखबानी, सम्पादक, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ १२४*
११ *अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। पातञ्जलयोगदर्शन, १–१२*
*अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। श्रीमदभगवत्‌गीता। ६/३५*
१२ *गोरखबानी – सम्पादक डा. बड़थ्वाल, पृष्ठ, ४७*
१३ *वही*
१४ *वही पृष्ठ ४८*
१५ *श्रीमद्भगवद्गीता ८/२५*

# वैदिक दर्शन के आलोक में गोरखनाथ दर्शन

डा. अमलधारी सिंह

गोरखनाथ के उदय का प्रमुख हेतु तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक दुर्व्यवस्था थी। विषम परिस्थितियों में गोरखनाथ का उदय हुआ। धार्मिक चेतना में उन्होंने एक नवीन प्राणशक्ति अनुप्राणित कर दी। रूढ़ियों, कुरीतियों बाह्याडम्बरों पर प्रहार करने में उन्होंने कोई दुर्बलता नहीं दिखलाई। सदाचरण, शारीरिक एवं मानसिक शुद्धता पर उन्होंने विशेष बल दिया। शारीरिक साधना हेतु हठयोग का प्रतिपादन किया। वेदों के आधार पर एक भव्य शिवरूप जीवनदर्शन, व्यावहारिक जीवन पद्धति का उन्होंने प्रतिपादन किया। समाज को यही है उनका महनीय योगदान 'नाथपंथ'। यह नाथ निज तत्व है, अपना ही स्वरूप और यही परमतत्व सर्वत्र ब्रह्माण्ड में घट घट में परिव्याप्त है। यही परमपद ध्येय है और स्वकीय शरीर रूपी घट में अवस्थित इसको पाने के लिए कहीं अन्यत्र मंदिर इत्यादि में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस अनिर्वचनीय रहस्यात्मक दुर्लभ तत्व को उन्होंने वचनीय–प्रत्यक्ष दर्शनीय सुलभ बना दिया। योग मार्ग को उन्होंने एक बहुत ही सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया तथा संस्कृत के साथ साथ लोकभाषा को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया और इस तरह जन जन तक कल्याणकारिणी इस परम विद्या को पहुंचाने का उत्तम प्रयास किया। अपनी शास्त्रीय परम्परा को लोकव्यवहार, जनजीवन से जोड़ने का प्रयास किया। सामूहिक साधना की अपेक्षा व्यक्तिगत साधना पर, योगाभ्यास पर विशेष बल दिया। तत्कालीन सामाजिक धार्मिक आवश्यकता के अनुरूप एक श्रेयस्कर सरल सहज जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया। फलस्वरूप विशिष्ट अभिजात्यवर्ग, तथाकथित सुसंस्कृत समाज का सहयोग एवं

संरक्षण तथा राज्याश्रय न मिलने पर भी सहस्रों वर्षों से इस जीवनदर्शन की यह परम्परा अविच्छिन्नरूप से चली आ रही है और आज भी यह सामान्य जनता का, दलितों का जीवनदर्शन बना हुआ है, इसकी प्रासंगिकता अक्षुण्ण बनी हुई है। वास्तव में सर्वजनहिताय गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित यह नाथ दर्शन जनता का अपना ही जीवन दर्शन है।

### *नाथ तत्व*

यह नाथ शब्द अत्यंत रहस्यात्मक एवं व्यापक अर्थों वाला है। 'ना' का अभिप्राय 'अनादितत्व' तथा 'थ' का स्थापित होना, भुवनत्रय का धारण है। भुवनत्रय की स्थिति का कारण सकल ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला अनादितत्व ही नाथ है। यही परमतत्व है। अज्ञान के सामर्थ्य को स्थगित करके मोक्ष दान में दक्ष तत्व ही नाथ है–

श्रीमोक्षदानदक्षत्वान्नाथ ब्रह्मानुबोधनात्।
स्थगिताज्ञानविभवात् श्रीनाथ इति गीयते।।

शक्तिसंगमतन्त्र

इस विशिष्ट नाथ पंथ के प्रवर्तक आदिनाथ स्वयं भगवान् शिव ही है। अतः समग्र नाथ सम्प्रदाय शैव है–

देदीप्यमानस्तत्वस्य कर्ता साक्षात् स्वयं शिवः।
संरक्षन्ति विश्वमेव धीराः सिद्धमताश्रयाः।।

सिद्धसिद्धांतपद्धति

श्रीगोरक्ष को उस नाथ पद से संबोधित किया गया है–

नाकारो नादिरूपः थकारःस्थाप्यते सदा।
भुवनत्रयमैवैकः श्रीगोरक्ष नमोस्तु ते।।

यह नाथपंथ सर्वथा परमात्मवादी वैदिक दंर्शन है। मुख्यतः वेदों की आध्यात्मिक विचाराधारां से यह पल्लवित, पुष्पित, फलित है। इस सिद्धांत में शक्तियुक्त शिव ही अंतिम सत्य, परमतंत्व है। चन्द्र–चंद्रिका की भांति शिव एवं शक्ति परस्पर अवियोज्य है। दोनों

का संबंध अखण्ड एकत्व का है। अपनी शक्ति से वे सर्वथा अभिन्न है। शिव के अन्त में शक्ति तथा शक्ति के अन्त में शिव उपस्थित है–

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव पश्यामि चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

गोरक्षसिद्धांत संग्रहः १.४

यह शिव कार्य–करण–कर्तृत्व से परे, कुल–अकुल भेदातीत परम अव्यक्त तत्व है। स्वयं नाम द्वारा यही संबोधनीय है।

कार्यकरणकर्तृत्वं यदा नास्ति कुलाकुलम्।
अव्यक्तं परमं तत्वं स्वयं नाम तदा भवेत्।।

नाथ पंथ में क्रिया ब्रह्म तथा निष्क्रिय ब्रह्म को नहीं स्वीकार किया गया है। यह परमतत्व शिव सगुण तथा निर्गुण दोनों से परे उभयातीत है। यह द्वैताद्वैत विलक्षण है।

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समतत्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविलक्षणम्।।
यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः।
अतो माया महामोहो द्वैताद्वैतविकल्पना।।

गोरक्षसिद्धांत, अवधूत गीतावचन

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वेद, यज्ञ, सूर्य–चन्द्र, निधि निषेध, जल अग्नि, वायु दिक् काल इत्यादि सभी से परे यह नाथ तत्व सर्वातीत है। यह स्वतः प्रमाण, स्वयं ज्योतिःस्वभाव, एक, अद्वय, सच्चिदानन्दमूर्ति है–

न ब्रह्मा विष्णु रुद्रो न सुरपति सुरानैव पृथ्वी न चापो
नैवाग्निर्वापि वायुर्न च गगनतलं नो दिशो नैव कालः।
नो वेदा नैव यज्ञा न च रविशशिनौ नो विधिर्नो विकल्पः
स्वज्योतिः सत्यमेकं जयति तव पदं सच्चिदानन्मूर्ते।

सिद्धसिद्धांतपद्धतिः

सर्वातीत इस परोक्षसत्ता के स्वरूप का निरूपण शब्दों द्वारा संभव नहीं है। यह अतिसन्निकट अन्तःस्थ है, फिर भी लौकिक

तत्वों का वर्णन करने वाली भाषा इसके स्वरूप का सम्यक निरूपण करने में सर्वथा असमर्थ अक्षम है। इन्द्रिय मन बुद्धि का यह विषय नहीं है। अतः इसके सम्बंध में किए गए सभी वर्णन केवल वाग्विलास है। परोक्ष सत्ता इस परमतत्व का आदि, प्रथम रूप से संख्या द्वारा संबोधन करने पर संख्या उपाधि हो जाती है जो उस निरुपाधिक तत्व का संबोधन नही बन पाती। यह संख्या से अतीत है। यह अखंड ज्ञानरूपी निरंजन शून्य है। यह निष्क्रिय तथा क्रिया ब्रह्म दोनों से अतीत अवाच्य अव्याख्येय है। द्वैत अद्वैत दोनों से परे, उभयातीत द्वैताद्वैत विलक्षण इस परमतत्व की जालन्धर नाथ ने इस प्रकार स्तुति की है–

वन्दे तन्नाथ तेजो भुवनतिमिरहं भानुतेजस्करं वा
सत्कर्तृत्वव्यापकं त्वा पवनगतिकरं व्योमवन्निर्भरं वा।
मुद्रानादत्रिशूलैर्विमलरुधिरं खर्परं भस्ममिश्रं
द्वैतं वाऽद्वैतरूपं द्वयत उत परं योगिनं शंकरं वा।।

परोक्ष सत्ता परमतत्व यही परमशिव सिसृक्षा होने पर सगुण शिव बन जाते हैं। उनकी यह सिसृक्षा ही शक्ति है। परमशिव से शिव शक्ति दोनों की युगपत् उत्पत्ति होती है। इसी शक्ति का निजा–परा–अपरा–सूक्ष्मा–कुण्डलिनी रूप से पञ्च अवस्थाओं में क्रमशः स्फुरण होता है और शिव का भी क्रमशः अपर परम शून्य निरंजन परमात्मा रूपी पञ्च अवस्थाओं मे। इस तरह शक्ति का कुंडलिनी तथा शिव का परमात्मारूप में प्राकट्य होता है। यह कुण्डलिनी शक्ति समस्त ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है। अपनी इसी शक्ति की सहायता से परमात्मा शिव इस विश्व प्रपञ्च के सृजन, पालन तथा संहार कार्य को सम्पन्न करते हैं। इस कुंडलिनी शक्ति की अद्वैतवेदांत की माया के साथ कुछ समानता है–

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।

शंकराचार्य की माया अविद्या स्वरूपा, विवर्तात्मिका सृष्टि को उदभवित करने वाली है, पर कुंडलिनी चिच्छीला है। चिच्छीला इसी शक्ति का प्राकट्य जगद्रूप में होता है जो सत् है, मिथ्या नही। इस शक्ति के बिना शिव कुछ भी करने में समर्थ नहीं है। सृष्टिक्रम के प्रवर्तन में यह शक्ति सूक्ष्म से स्थूल की ओर अग्रसर होती

जाती है। इस तरह शिव स्वयं अपनी सिसृक्षा से अपनी शक्ति के योग से प्रपंचात्मक इस जगद्रूप में अभिव्यक्त हो जाते हैं। सभी पिंडों में उनका पूर्ण प्राकट्य होता है। तुलनीय–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।

नाथदर्शन का यह अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में है वह सब कुछ लघु पिण्ड में भी है–

'ब्रह्माण्डवर्ति यत् किंच तत्पिण्डेप्यस्ति सर्वथा'।

पिण्ड ब्रह्माण्ड के एकत्व की यह मान्यता भारतीय मनीषा, अध्यात्मचिन्तन की पूर्ण पराकाष्ठा, उदात्ततमा भूमि है।

यह परोक्ष सत्ता परमतत्व शिव केवल स्वसंवेद्य है तथा इसकी अनुभूति हेतु स्वयं का प्रयत्न ही अपेक्षित है। खड्ग की अति तीक्ष्ण निशित धारा पर चलने के समान यह साधना का पथ अतीव दुर्गम है। तुलनीय–

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो बदन्ति।

(कठो १/३/१४)

इस परमतत्व की अपनी अनुभूति का गोरखनाथ ने बहुत ही सुन्दर सरल सहज़ निरूपण किया है–

जहां कुछ नहीं, शून्य है वहां मैने सब कुछ देख लिया, फलतः विरल कैवल्यपद में समाकर मेरा द्वैत भाव मिट गया, मुझे शून्य के, ब्रह्म के साथ तादात्म्य का अनुभव हो गया।' ज्ञानतिलक ४२ पृ. २१७।

इस परोक्षसत्ता–परमतत्व शिव की अनुभूति में तर्क प्रमाणादि उपकारक नहीं है। स्वयं की साधना से ही प्रत्यक्षानुभूति होती है। स्वानुभूति होते ही अनावृत निस्सीम आनन्द से आत्मा विभोर, आनन्दमग्न हो उठता है। शिव तथा शक्ति के आनन्दमय एकत्व की स्वानुभूति ही ब्रह्मानुभूति है। यह स्वानुभूति अनिर्वचनीय अप्रकाश्य है। इसी का प्रकाशन गोरखनाथ अपनी उल्लासमयी वाणी में करते हैं–

उसकी उत्पत्ति बिना बीज के हुई है, वह बिना मूल का वृक्ष है, वह बिना पत्तों और फूलों के फल जाता है, वह वन्ध्या का बालक है और बिना आकाश का चन्द्रमा। वह बिना ब्रह्माण्ड का सूर्य है और बिना मैदान का युद्ध। वह न शून्य है न स्थूल, न उसके चिह्न है न पूजा ही है। बिना शब्द के अनाहत नाद का गर्जन होता है। वह बिना वाटिका के पुष्प है, बिना पुष्प के सौरभ है और बिना वायु के भृंगों का समूह शोभा दे रहा है। वह राहु के बिना ग्रास लेता है और अग्नि के बिना जला डालता है। आकाश के बिना बादल उमड़ आते हैं। वह स्वयंवेद्य, स्वयं प्रकाश, साहंभाव है जो न धरती में है, न आकाश में और न जल में।'

गोरखवाणी पद १८

तुलनीय–

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रुणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।

श्वेताश्व ३/१६

इसी सहानुभूति का सरल शब्दों में वे प्रकाशन कर रहे है–

जो लिखा नहीं जा सकता उसका लेखा करने वाले।
जो देखा नहीं जा सकता उसके देखने वाले।।

ब्रह्म का छू छूकर, स्वयं साक्षात् दर्शन करने वाले और ब्रह्म रन्ध्र को अपने अनाहतनाद से गर्जित करने वाले, निजप्रमाण से, स्वयं अपने अनुभव से ही ब्रह्म को जानते हैं। यथा तिलों में तैल व्याप्त ओत प्रोत है, उसी प्रकार अंजन में यह निरंजन परमतत्व। तिलों में से तेल निकालने की तरह इन्होंने अंजन, माया में अवस्थित इस निरंजन ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है। मूर्त में इन्होंने अमूर्त का स्पर्श किया है और इस तरह आध्यात्मिक परमानन्द को प्राप्त कर लिया है–

अंजन मांहि निरंजन भेट्या तिलमुष भेट्या तेलं।
मूरति मांहि अमूरति परस्या भया निरन्तरि खेलं।। पृ २१७

उपनिषदों की निषेधात्मक भाषा द्वारा इस अनिर्वचनीय परमतत्व का निरूपण स्थान स्थान पर किया गया है–

तदेजति तन्नेजति तद् दूरे तदन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्या बाह्यतः।। ईश ५

गोरखनाथ विरोधात्मिका एवं नेति नेति रूपात्मिका पद्धति से इस अव्याख्येय अनिर्वचनीय परमतत्व के निरूपण का प्रयास कर रहे हैं–

'वह न आकाश है न पृथ्वी, न चन्द्रमा न सूर्य, न दिन न रात, ओंकार तो निराकार है। वह न सूक्ष्म है न स्थूल, उसके न पेड़ है न पत्ते, वह न फूलता है न फलता है। उसकी न शाखाएं हैं न मूल। न वह वृक्ष है न बेल। उसकी न साखी है न शब्द। वह न गुरु है न चेला। न ज्ञान में है न पुण्य में। न मोक्ष में है और न बन्धन में ही। वह न उत्पन्न होता हैं न नष्ट होता है। न आता है, न जाता है। उसके न जन्म है न मरण और न बाप है न मां .......... न योग मे है न भोग में .......... वहां तो केवल एकाकार, कैवल्य अवस्थ है, वहां न उदय है न अस्त सारी चराचरमयी सृष्टि में कोई भिन्नता का भाव नहीं है। वही शुद्ध निरंजन ब्रह्म रह जाता है। मूल और शाखा का भेद नहीं रह जाता......... वह न बाहर है न भीतर, न निकट है न दूर'

गोरखवाणी पद ११

इस नेति नेति का वास्तव में भावात्मक रूप से अभिप्राय सर्वमिति है। वह परोक्ष सता परमतत्व सर्वत्र सकल सृष्टि में सर्वतोभावेन अनुस्यूत ओतप्रोत है–

तज्जलानिति, यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्ति अभिसंनिविशन्ति च, तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत, सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादिरूप से श्रुति सम्पूर्ण विश्व की ब्रह्मात्मकता को उदघोष कर रही है। यहां पर भी गोरखनाथ उसी का निरूपण कर रहे हैं–

उस एक परमतत्व में ही अनन्त सृष्टि का वास है और अनन्त सृष्टि में उस एक ही परमब्रह्म का निवास है। उस एकने ही इस अनन्त सृष्टि को उत्पन्न किया है। जब अभ्यन्तर में उस एक से परिचय हो जाता है तो सारी अनन्त सृष्टि उस एक में ही समा जाती है।'

गोरखवाणी पद १४

उसकी सुगन्ध से सारा जगत् सुगन्धित है। पुष्प में सुगन्धवत् वह इस जगत् में व्याप्त है। उसके स्वाद से सारा जगत् मीठा है। जिसको ब्रह्मानंद का स्वाद मिल जाता है उसके लिए संसार के आत्यन्तिक दुःख की कटुता मिट जाती है और समस्त जगत् आनन्दमय हो जाता है। निराकार–साकार, निर्गुण–सगुण, अद्वैत–द्वैत से परे सर्वातीत अखण्ड निरंजन नाथ तत्व शिव समस्त शरीरों में घट घट में अवस्थित होने पर भी वास्तव में यह अवाच्य अचिन्त्य है।

अवाच्यमुच्येत कथं पदं तद् अचिन्त्यमप्यस्ति कथं विचिन्तये।
अतो यदस्त्येव तदस्ति तस्मै नमोस्तु कस्मै वत नाथतेजसे।

स्वसंवेद्य स्वप्रकाश्य केवल अनुभवगम्य शरीरस्थ इस शिवतत्व के साक्षात्कार हेतु साधना के लिए अपना ही शरीर सवोत्तम क्षेत्र है, उत्तमसिद्धपीठ है। हमारा यह शरीर ही देवालय है। तुलनीय–

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

देव देवालय सभी तीर्थ इसी शरीर रूपी गढ़ के भीतर अवस्थित हैं। इसलिए अविनाशी परमात्मा शिव की अनुभूति इसी शरीर में होती है। काष्ठ में अग्नि के समान, बीज में वृक्ष की भांति, पुष्प में गन्ध की तरह अपने ही शरीर में अपना आत्मा निहित है। इसलिए आत्मान्वेषण हेतु स्वरूप साक्षात्कार के लिए कहीं अन्यत्रं जाने की आवश्यकता नहीं है। इस अविनाशी शिव की सहजरूप से उपलब्धि अपने इसी शरीर में होती है। प्रश्नोपनिषद श्रुति में इसी रहस्य का उदघाटन किया गया है–

इहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः
षोडश कलाः प्रभवन्ति।

हृदयरूपी गुफा में अवस्थित हमारी आत्मा ही परमात्मा है। अतः हृदयाकाश में ही इसकी खोज की जानी चाहिये। आत्मरूप में वही निरंजन हृदयस्थ है। अतः पिंड में ब्रह्माण्ड का दर्शन करना चाहिए।

***परमपद***

नाथस्वरूप में अवस्थान ही मुक्ति है। इस सिद्धांत में आत्मा परमात्मा के अद्वैताभाव की स्थिति चरमसाध्य नहीं है, अपितु इसके भी उपर सदानन्दवाली अवस्था है। कैलास, वैकुण्ठादि लोकों, ब्रह्मसायुज्य आदि से भी परे योगियों का सकलबन्धन विनिर्मुक्त पद है। ब्रह्मादि से परे सगुण–निर्गुण से अतीत, परात्पर ज्योतिःस्वरूप सच्चिद्दानन्दमूर्ति नाथ पद है, यही परमपद है। इस योगमार्ग में बन्धनभूत प्रारब्ध क्रियमाण–संचित समस्त कर्म भस्म हो जाते हैं जबकि अन्यत्र संचित क्रियमाण ही दग्ध बीजवत् होते हैं और प्रारब्ध शेष रह जाता है। इसका क्षय तो उपभोग से ही होता है। एतदर्थ उस मुमुक्षु को कर्मक्षयपर्यन्त शरीर धारण करना पड़ता है। तुलनीय–

सम्यक्ज्ञानाधिगमात् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवत् धृतशरीर,

सांख्यकारिका ६७

गोरखनाथ के दर्शन में नाथ ही परमपद है। इसी स्वरूप में प्रतिष्ठा ही जीवन का परमपुरुषार्थ है। इस लक्ष्य की सिद्धि हेतु दिव्य देह, कायाशुद्धि अत्यंत आवश्यक है। यह दिव्यता अन्तः तथा बाह्य दोनों ही प्रकार की शुद्धियों से आती है। इस तरह उन्होंने बाह्याडम्बरों, मिथ्याचारों का खंडन करके चारित्रिक दृढ़ता नैतिक जीवनमूल्यों के पालन पर शारीरिक मानसिक शुचिता, वाक्संयम ब्रह्मचर्य पर विशेष बल दिया। उपासना साधना में सच्चरित्र की प्रधानता होती है। शील के भी विशेष महत्व का उन्होंने प्रतिपादन किया है–

सहजशील का धरै शरीर। सो गिरती गंगा को नीर।।

बिन्दु ही अमृत है, शरीर में बिन्दु साधना से मरण भय नही रह जाता तथा परमपद सिद्ध हो जाता है। 'मरणं बिन्दुपातेन

जीवनं बिन्दुधारणात्' पर विशेष प्रकर्ष है और यह धारणा योग पद्धति द्वारा हठयोग प्रक्रिया से होती है। बिन्दुरक्षा के कारण ही योगी कभी बद्ध नहीं होता, संयम से वह परमतत्व का ध्यान करता है, वर्ष में तीन बार वह काया परिवर्तन करता है अतः पूर्ण ब्रह्मचर्य ही जीवन का आदर्श है और विशुद्ध ब्रह्मचारी इस मार्ग का पथिक है। गृहस्थी भी बिन्दु संयम से सिद्धिलाभ करता है।

परमपद की सिद्धि में गुरु के विशेष महत्व को प्रतिपादित कर रहे हैं। इसी सिद्धि में गुरु अत्यंत उपकारक एवं अपरिहार्य है। इस मार्ग में निगुरे, बिना गुरु की कोई भी गति नहीं है—

गुरु कीजै गहिला निगुरा न रहिला।
गुरु विनं ग्यानं न पाईला रे भाईला।।

गोरखवाणी

गुरुरेव परो मंत्रो गुरुरेव परो जपः।
गुरुरेव परा विद्या नास्ति किंचिद् गुरुं बिना।।

मन की शुद्धता एवं दृढ़ता पर बल देते हुए वे कहते हैं कि रातदिन चलते रहने से नाना तीर्थों में भटकते रहने की कोई आवश्यकता नहीं हैं क्योंकि शरीर रूपी घट के भीतर ही सम्पूर्ण तीर्थ स्थित है। अत हृदयस्थ तीर्थ को छोड़कर बाहर इतस्ततः इधर उधर दौड़ना भटकना निष्प्रयोजन है—

घट ही भीतरि अड़सठ तीरथ कहां भ्रमै रे भाई।
अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा'

इस प्रकार भारतीय अध्यात्मिक चिंतन की परम्परा में गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित नाथदर्शन का अत्यंत महनीय विशिष्ट योगदान है। यह एक वैदिक दर्शन है, व्यावहारिक क्रियात्मक जीवनदर्शन है। तत्वों की शास्त्रीय मीमांसा के साथ ही क्रियात्मक व्यवहार पक्ष को प्रस्तुत करने के कारण योगवत् यह पूर्ण दर्शन है। यह जन जन का, सभी का जीवनदर्शन है। गोरखनाथ ने शास्त्रीय ज्ञान को जन जीवन, लोक व्यवहार से जोड़ा है 'नहि मानुषात्श्रेष्ठतरं हि किंचित्' महाभारतकार के इस वचनानुसार मनुष्य ही सकल शास्त्रों, विद्याओं का केन्द्र है। लोकव्यवहार ही सुचारु सम्पन्नता हेतु मानवों में परस्पर सहयोग सौमनस्य सौहार्द हेतु इन्होंने जीवनमूल्यों के

पालन, सदाचरण पर विशेष बल दिया है। चरित्ररूपी महत्तम निधि के संरक्षण पर प्रकर्ष है। पूर्णाद्वैत की प्रतिष्ठा की है और इनका सिद्धांत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से बढ़कर ऊंचा है। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे– पिंड की एकता में सर्वत्र सभी में एक ही तत्व ओत प्रोत है, सभी अभिन्न एक है–

पुरुष एवेदं सर्वम्। ईशावास्यमिदं सर्वम्।
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम्।

वैदिक दर्शन विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

# नाथयोगियों के वेष प्रतीक

माधो भारती

नाथ योगियो में वेष-प्रतीक की दृष्टि से सामान्यतः दो भेद हैं। औघड़ एवं दर्शनी। औघड़ बिना कान फाड़े व कान फाड़े हुए योगी दर्शनी जोगी कहलाते हैं।

सामान्यतः प्रत्येक संप्रदाय के अनुयायी अपनी विशेष पहचान बनाने के लिए विशिष्ट चिह्नों को धारण करते हैं और परवर्ती समय में उनके प्रतीकार्थक अर्थों को भी खोज निकाला जाता है। नाथ-अनुयायी इन चिह्नों को धारण कर बाह्यतः शिवस्वरूप दिखाई देते हैं। प्रस्तुत पत्र में इन चिह्नों एवं यथासंभव उनमें निहित प्रतीकात्मक अर्थों को आप के सामने रखने का प्रयास किया गया है।

***राजस्थान के नाथ योगियों का लवाजमाः वेष-प्रतीक चिह्न***

नाथ योगी को, उनका लवाजमा विशेष व्यक्तित्व की संज्ञा से सुशोभित करता है। अपने लवाजमेसे इन योगियों को अनायास ही लोग पहचान सकते हैं। चिरकालीन परम्परित वेशभूषा में इनके द्वारा व्यवहार चिह्न इस प्रकार हैं:-

जटाः- जटा योगी का प्रमुख चिह्न है। जटा व पंचकेशी वैराग्य की उत्प्रेरणा है। नाथ-योगी लंबे-२ बाल रखते हैं, जिन्हें जटा कहते हैं। इन्हें खुला नहीं रखते, जूड़ा-सा बनाकर रखते है। इनमें बरगद का दूध लगाया जाता है। इस जटा-जूट को शिरो वस्त्र से ढ़क दिया जाता है। सिरे मंदिर, जालोर के पूर्व पीठासीन स्वर्गीय श्री केशरनाथजी के बड़ी लम्बी जटा थी जो भूमि का स्पर्श करती थी। यहां के श्रद्धालुओं में अब भी कुछ

जीवित हैं, जिन्होंने श्री केशरनाथजी के तपस्या से पीताभ केसर–सदृश शरीर को ऐसी जटा से सुशोभित देखा था।

नाथ योगियों के नित्याचार–अखण्ड पूजा में भी जटा का माहात्म्य कहा गया है–

बम शिव योगी सबी भाँति पूरे,<br>
लपेटे जटा–जूट खावें धतूरे।

मिश्र देश के पर्यटक इब्न बतूता ने अपनी भारत–यात्रा में ऐसे योगियों को देखा था, जिनके केश पैरों तक लम्बे थे, सारे शरीर पर भभूत रमी थी और तपस्या के कारण उनका वर्ण पीत था। मावश उन्नहर के सम्राट तरम शीरी के पड़ाव–शिविर में उसने इन्हें प्रथम बार देखा था। गिनती में यह पूरे पचास थे। इनके रहने के लिए धरती में गुफाएँ बनी थी। केवल शौच के लिए बाहर आते थे और प्रातः सायं तथा रात्रि में शृंग के सदृश किसी वस्तु को बजाया करते थे।[1] इब्न–बतूता ने इन योगियों की अनेक करामातों को स्वयं अपनी आँखों से देखा था।[2] यहीं कारण था कि चमत्कार प्राप्त करने के इच्छुक मुसलमान भी इस मार्ग की ओर आकर्षित हो गए।

२ मुद्राः– कान चिराकर मुद्रा धारण करना दर्शनी योगियों का विशिष्ट प्राचीन चिह्न है। नाथ–पंथ में दीक्षित होने वाले योगी के सर्वप्रथम कान फाड़े जाते हैं। इस कारण इन्हें कनफटा या कानफड़ा भी कहा जाता है।

इन योगियों के कान मध्य से फाड़े जाते हैं। इस छिद्र में मुद्रा पहनी जाती है। यह गोलाकार तथा मोटा छल्ला–सा होता है।

वैराग्य प्रवण योगी अधिकांशतः मुद्रा–धारण करते हैं। कुछ योगी धारण नहीं भी करते।[3] गृहस्थी नाथ–परिवारों में भी एकाध सदस्य मुद्रा धारण करता है।

यह मुद्रा दो प्रकार की होती है। १ कुंडल २ दर्शन। कुंडल को 'पवित्री' भी पुकारते हैं। 'दर्शन' का इस संप्रदाय में अधिक सम्मान है, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसे धारण

करने वाले योगी ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके होते हैं। इस मुद्रा के कारण इन्हें 'दर्शनी' भी कहा जाता है।

कर्ण–मुद्रा संस्कार के होने पर मिट्टी के कुंडल पहिनने–पहनाने का ही प्राचीन उल्लेख मिलता है। अब भी अनेक योगी ऐसी ही मिट्टी की मुद्रा धारण करते हैं। टूटने की आंशका से बचने के लिए फिर धातु से बनी मुद्रा का प्रयोग प्रारंभ हो गया। धनाढ्य मठाधीश हाथी–दांत, सोना बिलौर और नीलम तक की बनी कुंडल–जोड़ी भी पहिनते देखे गए हैं। कुछ हरिण के सींग की मुद्रा भी बनवाते है, तो कुछ गेंडे की खाल की।

बंगाल के पुराने योगी या कापालिक मानव–अस्थियों के कुंडल और गले में हड्डियों की ही माला धारण करते थे। वे पैरों में नूपुर और हाथ में नरकपाल लिए रहते थे।[४] वज्रयानी साधन–ग्रंथों में 'हेरूक' के ध्यान में कहा गया है कि वे नरास्थि की माला धारण करते थे।[५]

गोरक्ष–पंथ में मुद्रा का आध्यात्मिक अर्थ प्रतिपादित किया गया है–

मुद मोदे तु रा दाने जीवात्मंपरमात्मनोः।
उभयोरैक्यसंवित्तिर्मुद्रेति परिकीर्तिता।।
मोदन्ते देवसंघाश्च द्रवन्तेऽसुराशयः।
मुद्रेति कथिता साक्षात्सदा भद्रार्ध्थदायिनी।।

इसके अनुसार 'मुद्रा' द्विधातुक शब्द है–

आनंदार्थक मुद और दानार्ध्थक रा। इनके मेल से 'मुद्रा' शब्द बनता है। ये दोनों जीवात्मा–परमात्मा के प्रतीक हैं और दोनों की ऐक्य रूप संवित्ति ही मुद्रा है। इसे धारण करने से देवता गण प्रसन्न हो जाते हैं और असुर गण पलायन कर जाते हैं। ऐसी यह 'मुद्रा' साक्षात्कल्याणदायिनी है।

कान छिद्रित कराये बिना कोई भी व्यक्ति नाथ–पंथ में प्रविष्ट नहीं हो सकता। कान फड़वाने की प्रथा का प्रचलन कब से हुआ, इस संबंध में अनेक प्रवाद प्रचलित हैः–

१ स्वयं मछन्दर नाथ ने[६] इस प्रथा का प्रवर्तन किया। उन्होंने शिव से उनका स्वरूप मांगा था। शिव के कानों में कुण्डल थे। इन्हें प्राप्त करने के लिए उन्होंने दीर्घ काल तक कठिन तप भी किया था।

२ गोपीचन्द की विनति पर जालंधरनाथ ने अन्य संप्रदाय वालों से विशिष्टता एवं पृथक्ता प्रदान करने के लिए इसे चलाया।

३ गोरखनाथ ने भरथरी के कान फाड़कर इस प्रथा का चलन किया और स्वयं अपने हाथ से उन्हें मिट्टी के कुण्डल पहिनाये।[७]

कान फाड़ने में निष्णात योगी इच्छुक शिष्य को उकडू बैठाते हैं अर्थात् उसके दोनों हाथ दोनों पांवों के नीचे से निकाल कर जोड़ देते हैं और उसे 'शिव गोरक्ष' नाम का दो बार जप करने को कहते हैं। शिष्य से पूछा जाता है कि ऊपर के आसन बैठोगे या नीचे के। इसका तात्पर्य है, छुरी को कान में छेदकर उपर की ओर चलाना या नीचे की ओर चलाना। फिर इस जख्म में नीम की घिसी लकड़ी डाल देते हैं। ऐसे छिद्रित योगी को फिर बन्द कमरे में सीधा लिटाये रखते हैं, करवट नहीं बदलने देते। उसे निरंतर निगरानी में रखा जाता है। उसे नारी–दर्शन से भी दूर रखा जाता है।[८] स्त्रियों के दर्शन से घाव के पक जाने का भय रहता है ऐसा माना जाता है।[९]

इस प्रक्रिया में कान का फट जाना–'भावा–जोखों' का व्यापार माना जाता है। जिस योगी का कान इस तरह खराब हो गया, वह संप्रदाय से अलग माना जाता है और पुजारी होने का अधिकार खो देता है।[१०] इसी तरह कान चिराने के पश्चात् वह शिष्य न तो कभी पुनः गृहस्थ हो पाता है और न ही अपनी मूल जाति में लौट पाता है। यह ओखण इस विषय में प्रसिद्ध है–

राख लगाय नै धौ दे, कान फाड़ नै बो दे। राख लगाई हुई तो धोई जा सकती है, परन्तु कान छिदवाने के पश्चात् तो डूब गया काम से।[११]

किसी शुभ दिन या वंसत पंचमी (विशेषतः) पर शुभ क्षण में यह क्रिया की जाती है। चीरा लगाने वाला योगी शिष्य का

'चीरा गुरू' बन जाता है। इसके लिए उपयुक्त उम्र १२ वर्ष से लेकर १७–१८ वर्ष मानी जाती है। यह कार्य छुरी या क्षुरिका से सम्पन्न होता है, इसलिये इसका 'क्षुरिकोपनिषद्' माहात्म्य वर्णित है।

औरतों के कान अमूमन नहीं फाड़े जाते, परन्तु जब स्त्री दीक्षित होना चाहती है, तो यह क्रिया की जाती है। तत्पश्चात् नाथ–जप के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं करती। कान चिरा लेना उसके लिए सांसारिक व्यवहारों से पृथक् होने की प्रतिज्ञा है। ऐसी स्त्री पुरूषों की वेश–भूषा में रहती है।[12]

कान छिद्रित करवाने की प्रथा का प्रचलन इसलिए हुआ होगा कि इस क्रिया की पीड़ा के भय से अनधिकारी लोग इस संप्रदाय में प्रवेश न कर सकें। 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' में श्री चन्द्रनाथ योगी के अनुसार सुधारक मनोवृति के योगी ऐसा मानते हैं।

म. मानसिंह के समय जब मारवाड़ में नाथों का दौर–दौरा हो गया, तो नाथ योगियों से मारवाड़ भर गया था। उस समय यहां से ही नहीं दूर–दूर से लोग आकर नाथ–संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। जो कान चिरवाता था, उसे राज्य से सोने के कुण्डल और बहुत से रुपये दिये जाते थे। जब तब घाव नहीं भरता था, तब तक हलुआ खिलाया जाता था। स्वयं महाराजा आकर उसे दण्डवत् प्रणाम करते थे। एक वर्ष तो इतने लोग दीक्षित हुए कि उनके लिए 'दल बादल' डेरा खड़ा किया गया और नव–नव, दस–दस मण हलुआ उनको, उनके गुरु और गुरु–भाइयों को महिनों खिलाया गया। कहते हैं कि महाराजा विजय सिंह के आध्यात्मिक गुरु श्री आत्माराम ने पहिले ही मारवाड़ में नाथ–युग के प्रवेश की भविष्यवाणी कर दी थी–

गोपी चंद राजा आवेगा। जोधाणे नाथ पुजावेगा।[13]
नव मण पापड़ नव मण बडी। नाथ जिमावे एक घडी।।

मुद्रा पहिनाने के बाद गुरु द्वारा शिष्य के कान में गुरु–मंत्र फूंका जाता है। यह मंत्रोपदेश ही 'मंत्र फूकना' कहलाता है। ऐसा मंत्र देने वाला गुरु 'शब्द–गुरु' बन जाता है।

३ मालाः– नाथ योगी प्राय गले में रूद्राक्ष की माला धारण करते हैं और इसी से नाम जप करते है।

रूद्राक्ष का संधि–विच्छेद 'रूद्र+अक्ष'–शिव की आंख है। रुद्राक्षारण्य माहात्म्य के अनुसार रूद्र–अक्ष के अश्रु–बिंदु से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम रुद्राक्ष पड़ा।

यह बेर की गुठली जैसे आकार का फल होता है और इस पर खरबूजे की फांक जैसी रेखाएं होती हैं, जिन्हें मुख कहा जाता है। यह १ से २१ मुख तक का होता है।

मुख के अनुसार हर रुद्राक्ष का अलग–अलग महत्व है। जप में पंचमुखी रुद्राक्ष विशेषतः प्रयोग में लिया जाता है। मुख के आधार पर ही प्रत्येक रुद्राक्ष के अलग–अलग अनुष्ठान मंत्र होते है। रुद्राक्ष में रोग प्रतिरोधक क्षमता भी है। यह चिकित्सा विज्ञान का निष्कर्ष है। ह्रदय रोग में यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। एकमुखी रुद्राक्ष सर्वश्रेष्ठ होता है।

योगी गले में ३२, ६४, ८४ या १०८ मनकों की माला धारण करते हैं। १८ या २८ मनकों की छोटी माला कलाई पर लपेटी भी रखते हैं। यह 'सुमिरनी; कहलाती है।

गृहस्थ योगी दो–मुखी रुद्राक्ष माला से जप करना श्रेष्ठ मानते हैं। स्फटिक, लाल मूंगे की माला भी योगी पहनते हैं।

४ जनेऊः प्राय सभी योगी (औघड़ भी) काले भेडे की ऊन से बनी हुई यज्ञोपवीत गले में धारण करते हैं। कोई उसे पगडी में भी बंधी रखते हैं। ऊन की जनेऊ का मुख्य उद्देश्य शरीर शुद्धता के लिये है जिससे आछातना नहीं लगे व पवित्रता रहे। नित्यविधि समय इसको सुरक्षित व पवित्र जगह योगी जन रखते हैं। कुमायूं के योगी सूत की जनेऊ पहनते है।[१४]

इस जनेऊ को गूंथ कर बनाना हर कोई नहीं जानता। इस विद्या के जानकार योगी ही इसे बनाते हैं।

कुछ योगी इसे धारण ही नहीं करते। उनका कथन है कि उन्होंने इस चिह्न को अपने अंतर में धारण कर रखा है जिस प्रकार हनुमान ने अपने ह्रदय में राम और सीता के स्वरूप को

धारण किया था। मस्तनाथ नामक एक सिद्ध योगी ने किसी के टोकने पर अपनी छाती चीरकर चमड़ी के नीचे जनेऊ दिखा दिया था।[१४] तब से मस्तनाथ के अनुयायी योगी यज्ञोपवीत नहीं रखते।[१६] कबीर भी उसे सच्चा योगी समझता है जो इन चिह्नों को मन में धारण करता है।

५ शृंगीः इसे सींगी या नाद भी कहते है। एक मिश्रित नाम (सींगी नाद जनेऊ) भी इसे दिया गया है। योगी इस नादी जनेऊ को शिवलिंग मानते हैं।

हरिण के सींग की नोक से बना यह छोटा सा फूंक–वाद्य है। अब यह पीतल, तांबा आदि से भी निर्मित होता है।

इसे पवित्र भी कहा जाता है। इसे रुद्राक्ष के एक मनके के साथ जनेऊ से बांध दिया जाता है। प्रातः सायं पूजन एवं भोजन के समय इसे पहले बजाया जाता है। फूंक मारने पर इसमें से मधुर ध्वनि निकलती है।

६ मेखलाः– सभी योगी तो नहीं पर कुछ ऊन की रस्सी का कटिबंध (कर–धनी) बांधते हैं और लंगोट लगाने में इसका उपयोग करते हैं।

एक अन्य प्रकार की मेखला 'हाट मंटगा (हाल मतंगा) है, जिसे धारण करने के पश्चात् योगी को भिक्षा के लिए निकलना ही पडता है।[१७] इसे भैरू मतंगा भी कहते हैं। इसे पूरे सीने पर बांधा जाता है। ऊन की लम्बाई की दृष्टि से इसे नाग–नागिन मतंगा कहते हैं। नागिन मतंगा ६१ फीट एवं नाग मतंगा ६६ फीट लम्बाई लिए होता है।

७ सेलीः– काले भेडे की ऊन से इसे बनाया जाता है। और योगी इसे पगडी पर बांधते हैं।

८ कंथाः– यह गेरूए अथवा लाल रंग का लंबा–चोला सा होता है, जिसे पहन लेने समस्त अंग ढक जाते हैं।

यह लाल अथवा गेरुआ रंग ब्रह्मचर्य का साधक माना गया है। इसके रंगे वस्त्र धारण करने से स्तंभन–शक्ति में वृद्धि होती है।

गूदडी को ओढ़कर भी शरीर ढंका जाता है। कुछ योगी तहमद की भांति खुला भगवा कपडा लपेटे रखते हैं।

कंथा धारण करना योगी के लिए आवश्यक नहीं माना गया है। इतना अवश्य है कि योगी जो भी वस्त्र धारण करते हैं, वे होते भगवा रंग के हैं।

६ मृग–चर्म एवं बाघम्बरः– मृग–चर्म को (मृगछाला) भी कहते है। यह अनहद नाद का उपलक्षक मानी जाती है। योगी इसे लपेटकर साथ रखते हैं तथा जप–तप के समय प्रयोग में लेते हैं। कुछ इसे निरंतर बिछाई भी रखते हैं और इसी पर बैठते तथा सोते हैं।

कतिपय योगी मृगछाला के स्थान पर बाघचर्म का उपयोग करते हैं और यही बाघम्बर कहलाता है।

१० धंधारीः– इसका नाम धांधरी या गोरखधंधा भी है। लकडी अथवा लोहे की शलाकाओं से निर्मित यह एक प्रकार का चक्र है। शलाकाओं को हेर फेर कर इसके मध्य योगी एक छिद्र बना देते हैं और उसमें कौडी या मनके की माला या माला का धागा डालकर फिर मंत्र पढ़कर निकालते हैं।

यह कौडी या डोरा सहजता से नहीं निकलता, उलझ जाता है एवं इसको निकालने की क्रिया में पारंगत ही इसे सहज में निकाल सकता है।

यहीं धांधरी या गोरखधंधा, जो सांसारिक माया प्रपंच का प्रतीक है। गोरखपंथी योगियों का विश्वास है कि मंत्र पढ़–पढ कर इस गोरख धंधे से डोरा निकालने से गोरखनाथ की कृपा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं और संसार–चक्र में उलझे हुए प्राणियों को डोरे की भांति इस भव–जाल से मुक्त कर देते हैं।[१६]

११ अधारीः इसे आधारी, आधार या आसा भी कहते है। लकडी के छोटे से गोल डंडे पर एक मजबूत लकड़ी का गोल पट्टा लगा कर यह तैयार किया जाता है। योगी इसे भी अपने साथ रखते हैं।

ध्यान में बैठने के समय योगी सहारे के लिए इसे ठोडी के नीचे रखते हैं या बगल के नीचे। कभी दोनों हाथ और ठोडी एक साथ भी रख देते है। आवश्यकता पडने पर इसे योगी पृथ्वी पर जमाकर इसके पट्टे पर बैठते भी हैं। इस पर अभ्यास के बिना स्थिरता पूर्वक बैठा नहीं जा सकता।

१२ किंगरीः– यह एक प्रकार की चिकारी जैसा वाद्य है, जिसे पौरिये या भर्तृहरि के भजन सुनाने वाले योगी साथ रखते हैं। इसे 'सारंगी' भी कहते हैं और ध्यान एकाग्र करने हेतु भी यह काम में ली जाती है।

१३ सोटाः– यह हाथ–डेढ हाथ लंबाई का लकडी का गोल डंडा होता है। इसे भैरवनाथ का, गोरखनाथ का सोटा अथवा 'डंका' भी कहा जाता है। झाड–फूंक के समय योगी इसे काम में लेते हैं। मंत्र पढ कर फूंक मारने के पश्चात् इसे सामने बैठे दुःखी व्यक्ति के सामने ऊपर से नीचे की ओर उतारा(चलाया) जाता है।

कोई–कोई साधु सोटे के स्थान पर चिमटा रखते हैं और उससे झाड–फूंक करते हैं। चिमटे को कोतवाल कहते हैं।

इसी प्रकार कुछ योगी हाथ में त्रिशूल भी धारण करते हैं।

१४ खप्परः– भिक्षाटन पर जाते हुए नाथ योगी इसे श्रद्धालु के आगे कर देय वस्तु इसमें ग्रहण करते हैं।

मिट्टी के छोटे घडे का सावधानी पूर्वक दो भागों में विभाजित कर नीचे वाला अर्द्ध भाग खप्पर के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके टूट–फूट जाने के भय से अब काफी समय से बडे आकार के समुद्री नारियल का खप्पर बनने लगा है। कुछ योगी कांसे का खप्पर भी प्रयोग में लेते हैं। इसी कारण खप्पर का इतर नाम कांसा भी है।

योगी खप्पर को जलपात्र तथा भोजन पात्र के रूप में प्रयोग में लेते हैं। कुछ इसमें भस्म भर कर रखते हैं, जिसका वे भक्तों के ललाट पर तिलक करते हैं या प्रसाद–रूप में लेने के लिए वितरण करते हैं। भिक्षा को फिर वे झोली में ग्रहण करते हैं।

१५ त्रिपुण्डः– जो योगी अपने समस्त शरीर पर भस्म नहीं रमाते, वे स्नानोपरांत भस्म से ललाट, बाहु–मूल ओर हृदय देश पर त्रिपुण्ड (तीन रेखाएं जो तीन लोक का सूचक है) बनाते हैं। यह नाथ–पंथियों का विशेष चिह्न है।

१६ भस्मी–स्नानः– कुछ योगी अपने समस्त शरीर को ही भस्मी युक्त रखते हैं। जल–स्नानोपरांत योगियों का इस तरह अपने शरीर पर भस्म रमाना ही 'भस्मी–स्नान' है। ऐसी मान्यता है कि भगवान् शंकर ने सर्व प्रथम मत्स्येन्द्रनाथ के लिए सिर पर विभूति डाल कर उन्हें भस्मी–स्नान कराया था।[२०]

गोरखनाथ–स्तुति में योगी भंभूल नाथ जी ने दोहा कहा है–

अगम अगोचर नाथ तुम पारिब्रह्म अवतार।<br>
कानन–कुंडल सिर जटा, अंग विभूति अपार।।

इस भस्मी को बनाने की भी विशेष विधि है। गाय के सूखे गोबर (आरने छानो) को जला कर, राख बनाते हैं। इस राख को अनेक बार पानी में घोलकर साफ कपडे से छानते हैं। इस तरह निथारी हुए राख को सूख जाने पर दूध में गीला करके गोला (पिंडी) बनाकर पुनः आग में पकाते हैं। इस 'भभूत' का कुछ अंश लेकर फिर दैनिक प्रयोग में लेते हैं।

१७ पाँवरीः– योगीजन पैरों में पट्टीदार या अन्य प्रकार की खडाऊ पहिनते हैं। यहीं पाँवरी है। कई योगी बिना पट्टी की सादी चाकडी भी पहिनते हैं, जिससे ब्रह्मचर्य शक्ति बढती है।

१८ जल–पात्रः– योगी पवित्रता का ध्यान रखते हुए हर किसी बर्तन या स्थान से जल नहीं पीते। वे इसके लिए अपने साथ कमंडल, सीपी, तुम्बा आदि रखते हैं।

१६ झोली (बटुआ):– इनके पास एक झोली भी होती है, जिसमें ये पूजा–पाठ, योग क्रिया सामग्री तथा अन्य आवश्यकता की सामग्री सहेज कर रखते हैं। कुछ योगी इसमें भिक्षा ग्रहण करते हैं। कई साधु बटुआ (थैलेनुमा) भी रखते हैं।

२० शंखः— नाथ योगी अपनी झोली में शंख भी रखते हैं। इसमें प्रयुक्त शं (सुख का वाचक) और ख (अखण्ड ज्ञान स्वरूप परब्रह्म का वाचक) है। इसे धारण करने वाला अवधूत कहा जाता है।[२१]

इनके अतिरिक्त अन्य कुछ वस्तुएं भी इन योगियों की ओर दर्शक का ध्यान आकृष्ट करती हैं।

बडें—बडें रुद्राक्ष की मालाओं तथा बालों की रस्सियों को कमर, पीठ, कण्ड तथा भुजाओं में लपेटने एंव पैरों में पीतल के बडे—बडे घुंघरु पहनने और कमर से बांधकर लटकाने का भी इन योगियों में प्रचलन है।

नाथ योगी भिक्षा से अपने लिए भोजन जुटाते हैं। वे गृहस्थों के द्वार जाकर (अलख) शब्द का उच्चारण करते हैं, शृंगीनाद करते हैं और घुंघरुओं को बजाते हैं। कोई गृहस्थ आवाज सुनकर इनके खप्पर में भिक्षा डाल दे तो उसे स्वीकार करते हैं अन्यथा कुछ क्षणोपरांत आगे बढ जाते हैं।

कुछ योगी कंधे से लटकती अपनी छोटी झोली में भी भिक्षा एकत्र करते हैं। परन्तु हाथ में खप्पर अवश्य रखते हैं। इसमें भस्म भरी रहती है और उसमें से धूप, अगर—बत्ती आदि का धुआ भी उठता रहता है। इस भस्म से वे भक्त के मस्तक पर तिलक लगाते हैं, जिसे आशीर्वाद का तिलक समझा जाता है।

भिक्षाटन के समय नाथ योगी न बैठते हैं और न एक दम स्तब्ध रूप से खडे ही होते हैं। यदि किसी जगह खडे भी हों, तो अपने दोनों पांव को क्रम—क्रम से ऊंचा नीचा उठाते—गिराते रहते हैं। इससे उनके पांवों में बंधे घुंघरु बजते रहते हैं। कभी कभी विश्राम की आवश्यकता का अनुभव करने पर आधारी का आश्रय ले लेते हैं।

श्री चन्द्रनाथ योगी ने इस वेश और इन चिह्नों के धारण करने के सम्बन्ध में एक मनोरंजक कथा दी है।

इस कथानुसार मत्स्येन्द्र की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने उनसे वर मांगने को कहा। इस पर उन्होने शिव का

स्वरूप ही मांग लिया। अंततः शिव अपना वेश दान करने के लिए राजी हो गये।

फिर शिव ने सर्वप्रथम मत्स्येन्द्र को सिर पर विभूति डालने कर उन्हें भस्म–स्नान कराया और इसका यह अभिप्राय समझाया कि कि यह भस्म अर्थात् मृतिका (मिट्टी) है। तुम भी आज से पृथ्वी बन जाना अर्थात् मानापमान से परे, जड धरित्री–सा एक रस बने रहना। इसका यह भी तात्पर्य है कि अग्नि–संयोग से भस्म रूप में परिणत हुए काठ की तरह ज्ञानाग्निदग्ध होकर अपनी कठोरता आदि को छोड देना और ज्ञानाग्नि के संयोग से अपने कृत्यों को भस्मसात् कर देना।

1 इब्नबतूता की भारत यात्रा: पृ. 229–293 (नाथ संप्रदाय हजारी प्रसाद द्विवेदी: पृ 22 से उद्धृत)2 इब्नबतूता की भारत यात्रा: पृ 288 (नाथ संप्रदाय: हजारी प्रसाद द्विवेदी: पृ 22 से उद्धृत)

3 भर्तृहरि के शिष्य रतननाथ भी यह बाह्य–मुद्रा धारण नहीं करते थे। टोके जाने पर उन्होंने छाती खोल कर यह मुद्रा दिखा दी। दे. नाथ संप्रदाय – पृ 181।

4 प्राचीन बंगाल और बंगाली: सुकुमार सेन: पृ. 33

5 नाथ संप्रदाय: हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ 17

6 कर्ण–कुण्डल धारी शिव–मूर्तियों के बहुत प्राचीन प्रमाण मिलते है। सालसेटी, एलोरा, एलीफेंटा, परशुरामेश्वर मंदिर अरकाट जिला, तमिलनाडु एवं अन्य स्थानों पर प्राचीन मूर्तियां है, उसमें निर्विवाद रूप में इस प्रथा की प्राचीनता सिद्ध होती है।

7 नाथ संप्रदाय: हजारी प्रसाद द्विवेदी: पृ 16

8 रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ बाबत सन् 1891: तीसरा हिस्सा: पहला विभाग: पृ 244

9 सुधाकरचन्द्रिका पद्मावती की टीका: सुधाकर द्विवेदी: पृ 241

10 गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज: पृ 8–9

11 रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ बाबत् सन् 1811: तीसरा हिस्सा: पहला विभाग पृष्ठ 245

12 वही पृष्ठ 438

13 रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ बाबत् सन् 1891: तीसरा हिस्सा: पहला विभाग, पृष्ठ 243

14 गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज: ब्रिग्स: पृ 11

15 नाथ संप्रदाय: हजारी प्रसाद द्विवेदी: पृ 19

16 नवनाथचरित्र: राजेन्द्रप्रसाद दीक्षित: पृ 22

17 गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज: ब्रिग्स: पृ 11–12

18 व्याघ्राम्बर

19 सुधाकरचन्द्रिका पद्मावती की टीका: सुधाकर द्विवेदी पृ. 239

20 गोगिसंप्रदायाविष्कृति: चन्द्रनाथ पृ 20–21

21 सिद्धसिद्धांतपद्धति: अभ्यास 6

## भारतीय संस्कृति में नाथ चिन्तन :एक मूल्यांकन

प्रो० ब्रजबिहारी चौबे

भारतीय संस्कृति का प्रभात वेदमन्त्रों के दर्शन से होता है। वेद विश्व की प्राचीनतम रचना है इसलिए यह मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं कि भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। यह संस्कृति कब से प्रारम्भ हुई इसके विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जिस समय विश्व की अधिकांश जातियों की सत्ता नहीं थी और थी भी तो वे असभ्य जीवन व्यतीत कर रहीं थीं, उस समय यहां के ऋषि ब्रह्म, ऋत, सत्य, दीक्षा, तप, यज्ञ, दिति, अदिति आदि तत्वों का चिन्तन ही नहीं बल्कि अपने जीवन में इनका सम्यक् आचरण भी कर रहे थे। मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्–रूप में जिस विशाल साहित्य का सृजन हुआ उस साहित्य रूप दर्पण में तत्कालीन समाज का जो प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है वह अत्यंत भव्य और दिव्य है। यज्ञ उस संस्कृति का आधार स्तम्भ है। दिव्य गुणों के विकास से मानव जीवन को देवत्व तक पहुँचाना उस संस्कृति का मूल मन्त्र है। 'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि', 'यद्देवा अकुर्वन्स्तत् करवाणि', 'यद्देवानां चरणं तन्मनुष्याणाम्' आदि वचन उस संस्कृति की उदात्तता के ही द्योतक हैं। ज्ञान, कर्म और उपासना का अदभुत संगम उस संस्कृति में दिखायी

पड़ता है। ज्ञान के बिना कर्म अन्धा होता है, कर्म के बिना ज्ञान लंगड़ा होता है; उपासना के बिना ज्ञान और कर्म श्रद्धाहीन होते हैं। तीनों के समन्वय में ही स्वस्थ संस्कृति का विकास होता है। जब मनुष्य इनको खण्ड दृष्टि से देखना शुरू करता है स्वाभाविक रूप से उसका आचरण भी खण्डात्मक होता है। यही खण्डात्मक दृष्टि तथा खण्डात्मक आचरण उस संस्कृति के पतन का भी कारण बनता है। वैदिक कर्मकाण्ड जब तक ज्ञान, विज्ञान और उपासना से समन्वित रहा, स्वस्थ रहा। किन्तु ज्योंही वह मात्र कर्मकाण्ड रह गया और उसकी विधि इतनी जटिल हो गयी कि एक सामान्य जन के जीवन के साथ उसका सम्पर्क नहीं रहा तब यह स्वाभाविक था कि मनुष्य अपने कल्याण के लिए कोई अन्य मार्ग ढूंढ़े। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भारतीय संस्कृति के इतिहास में एक इसी प्रकार की हलचल दिखायी पड़ती है। शुष्क याज्ञिक कर्मकाण्ड और विशेषकर उसमें पशुओं की हिंसा के कारण वैदिक संस्कृति के प्रति विसंवादी स्वर उठने लगे। प्रारम्भिक रूप में तो वह वैदिक संस्कृति के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण के रूप में था, किन्तु धीरे धीरे उनकी अपनी एक पहचान हो गयी और श्रमण विचारधारा के रूप में समाज ने उनको मान्यता दे दी। भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध श्रमण संस्कृति के प्रवक्ता थे। उनका उद्देश्य जीवन में तप, त्याग, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि दिव्य गुणों के विकास पर बल देना था किन्तु भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद बौद्ध मत कई भागों में बंट गया। भगवान् बुद्ध ने स्वयं कहा था– परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद् वचो न तु गौरवात्' अर्थात् हे भिक्षुओं परीक्षा करके मेरे वचन को ग्रहण करो, केवल आदर भाव से नहीं। जिस धर्म में इतना विचार स्वातन्त्र्य हो उसमें विभिन्न सम्प्रदायों, साधनाओं तथा विचार पद्धति का विकसित होना स्वाभाविक था। ईसा की पहली शताब्दी के आस पास बौद्धधर्म के अन्तर्गत महायान का विकास हुआ। इसकी विचार तथा साधना पद्धति की मूल प्रेरणा यह थी कि बौद्ध धर्म की कठिन और दुस्साध्य जीवन पद्धति को लोकपरक और सहज बनाया जाय। इसका यह भी कारण था कि उनकी चिन्तना का केन्द्र केवल व्यक्ति तथा उसका निर्वाण नहीं था बल्कि लोकहित तथा समस्त लोक की मुक्ति भी उनको अभीष्ट थी। इस प्रकार वे लोग जो

पूर्ण विकसित नहीं थे उनके लिए भी निर्वाण का तथा क्लेशशमन का एक सरल मार्ग निर्दिष्ट कर दिया गया। यहाँ तक कहा जाने लगा कि यदि कोई बुद्ध का नाम मात्र ही स्मरण कर ले तो उसे सम्यक् सम्बोधि प्राप्त हो जाती। इस महायान विचारधारा के विकसित होते ही बुद्ध द्वारा प्रवर्तित कठोर श्रमण आचारों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो गया। जो भिक्षु बुद्ध को आदर्श मान कर वैयक्तिक पूर्णत्व या वैयक्तिक साधना पर बल देते थे उनको हीन समझा जाने लगा। इनको हीनयानी कहा जाता था। डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा है कि बौद्धधर्म के इस नये लोक परक स्वरूप के लिए इसके आचार्यों के मन में बड़ा उत्साह था और वे इसको पुराने स्थिरवादी बौद्धधर्म की तुलना में महायान या बड़ी नौका कहा करते थे। उनका कहना था कि भवसागर पार जाने के लिए पुराना बौद्ध मत हीन प्रकार की नौका है, जर्जर है, किन्तु महायान श्रेष्ठ है।[1] कालान्तर में साधकों की सुविधा के लिए तथा जनसाधारण को महायान में समाविष्ट करने के लिए इस सम्प्रदाय में कई बातें जुड़तीं गयीं। धीरे धीरे इनमें तान्त्रिक साधनाओं का विकास हुआ और महायान का रूप तान्त्रिक हो गया। यही वज्रयान के रूप में परिणत हो गया। मध्यकालीन भारतीय धर्मसाधना का विकृत रूप यहीं से प्रारम्भ होता है। यह वह युग है जिसमें वैदिक आचार पद्धति, वैदिक दर्शन, वैदिक धर्म तथा वैदिक देववाद के प्रति विद्रोह का स्वर सर्वत्र मुखरित है। बौद्धधर्म के अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदाय वाले तो वैदिक पद्धति के विरोधी थे ही किन्तु शैव और वैष्णव सम्प्रदायों की भी साधना पद्धतियां वैदिक पद्धतियों से भिन्न थी। इस युग में तन्त्रवाद इतना प्रभावशाली था कि कोई भी सम्प्रदाय उससे मुक्त नहीं था। एक प्रकार से धार्मिक खिचड़ी की स्थिति थी। न तो कोई शुद्ध बौद्ध था न कोई शुद्ध शैव था और ना ही कोई शुद्ध वैष्णव। सब एक दूसरे से प्रभावित थे। एक ही सम्प्रदाय के विभिन्न साधकों की भी साधना पद्धतियां भिन्न भिन्न थीं। ऐसी ही परिस्थिति में नाथ सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ था।

भारतीय धर्म साधना में नाथ सम्प्रदाय से पूर्व बौद्धों के वज्रयान के अतिरिक्त और भी कई सम्प्रदाय थे जिनमें यक्ष और कापालिक प्रमुख थे। यक्षों की पूजा इस देश के उत्तरी भाग में

बहुत पूर्व से ही प्रचलित थी। कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि भारतवर्ष में आर्यों के आगमन से पूर्व यक्ष जाति के लोगों का एक वर्ग था। किन्तु यह मत ठीक नहीं। वस्तुतः यक्ष आर्यों के अन्तर्गत थे, उनसे अलग नहीं। यक्ष, अप्सरा, गन्धर्व आदि एक ही श्रेणी के देवयोनि माने गये हैं। कालीदास ने अपने 'मेघदूत' में ऐसे ही किसी यक्ष को नायक बनाया है। उसके लिए 'गुह्यक' शब्द का भी प्रयोग किया है। पुराने यक्ष सम्प्रदाय का क्या स्वरूप था यह बहुत स्पष्ट नहीं पर इतना निश्चित है कि यक्ष लोग विलासी हुआ करते थे। कालीदास के मेघदूत का यक्ष भी एक विलासी प्रकृति का व्यक्ति है जो विलासिता के कारण अपने कर्तव्यपालन में प्रमाद कर जाता है। वरुण, कुबेर और कामदेव इनके देवता हैं। इनमें सुरापान भी प्रचलित था। वरुण तो वारुणि या मदिरा के देवता ही हैं। नाना मूर्तियों और उत्कीर्ण चित्रों के आधार पर विद्वानों ने सिद्ध किया है कि धीरे धीरे कुछ यक्ष देवता बौद्ध सम्प्रदाय के मान्य हो गये।[२] उपासक रक्षसूत्र में मणिभद्र चैत्य की चर्चा है और संयुक्त निकाय में मणिभद्र यक्ष का उल्लेख है। आगे चलकर मणिभद्र को बुद्ध का शिष्य बताया गया है जो बाद में बोधिसत्व का महत्वपूर्ण पद पा जाता है। बोधिचर्यावतार की टीका में उसे ही वज्री अर्थात् वज्रपाणि बोधिसत्व कहा गया है।[३] अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता में इसे महायक्ष कहा गया है।[४] ललितविस्तर में स्पष्टरूप से वज्रपाणि की उत्पत्ति यक्षकुल में बतायी गयी है।[५] इन सब बातों से यह प्रमाणित होता है कि पूर्वबुद्ध युग में यक्षों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। महाभारत में भी किसी यक्ष का वर्णन है जिसने युधिष्ठिर से प्रश्न किये थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह मत व्यक्त किया है कि बौद्ध धर्म में इस सम्प्रदाय के प्रवेश करने के बाद तान्त्रिक रहस्यमयी साधना प्रचलित हुई जिसमें स्त्रीसंग और मदिरा की पूरी छूट थी।[६] इस यक्ष साधना ने न केवल बौद्धसाधना को प्रभावित किया बल्कि शैवमत को भी प्रभावित किया और आगे चलकर नाथ सम्प्रदाय भी इससे अछूता नहीं रहा।

नाथ सम्प्रदाय से पूर्व एक महत्वपूर्ण मत कापालिकों का था। यह मत वाममार्ग से सम्बन्धित था। इस मत के अनुसार साधक का शरीर वज्रधर है; जगत् की जो कोई भी स्त्री है वह कपालवनिता है और प्राणी के भीतर सोऽहं रूप आत्मा ही हरेक

भगवान् की मूर्ति है। श्री पदम और इन्द्रिय आदि सूक्ष्म बाह्यतत्व तथा पृथ्वी–प्रकृति स्थूल बाह्य तत्व को दहन करने वाला मदन ये ही तीन रत्न हैं। इन तीनों का यथा गौरव ध्यानकर्ता योगीश्वर परम सिद्धि को प्राप्त करता है। कापालिक नाड़ियों और चक्रों में विश्वास रखते थे। शिव और जीव की अभिन्नता को मानते थे। भोग द्वारा चित्त के चांचल्य को रोकने को ही कैवल्यरूप में अवस्थित शिवरूप आत्मा का साक्षात्कार मानते थे। शरीर स्थित पाँच द्रव रस– शुक्र, शोणित, मेद, मज्जा और मूत्र– को पंचामृत मानते थे। आकर्षण क्रिया द्वारा इनको ऊपर उठाने की क्रिया से ही शरीर को वज्रवत् बनाया जा सकता है तथा अणिमादि सिद्धियां पायी जा सकती हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि कापालिक मत भी मूलतः शैव मत था। कापालिक मत ने नाथ मत को अत्यधिक प्रभावित किया। वस्तुतः नाथ मत की विकासयात्रा में कापालिक मत उसका अन्तरंग सहचर बन गया। इसीलिए कापालिकों को नाथ भी कहा जाता था। जालन्धरनाथ के समय कापालिक मत नाथ मत पर इतना प्रभावी हो गया था कि जालन्धरपाद तथा कृष्णपाद को कापालिक मत का प्रवर्तक माना जाने लगा। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में कापालिक मत को प्रकट करने की एक अद्भुत कथा दी गयी है। जब विष्णु ने २४ अवतार धारण किये और मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि के रूप में तिर्यग् योनि के जीवों की सी क्रीड़ा करने लगे, कृष्ण के रूप में व्याभिचारी भाव ग्रहण किया, परशुराम के रूप में निरपराध क्षत्रियों का संहार किया तो इन अनर्थों से कुपित होकर श्रीनाथ ने २४ कापालिकों को भेजा। उन्होंने २४ अवतारों से युद्ध करके उनका सिर या कपाल काटकर धारण किया। इसलिए ये लोक कापालिक कहलाये। इस कथा के मूल में सच्चाई केवल इतनी ही है कि ये पौराणिक वैष्णव अवतारवाद में विश्वास नहीं करते। चूंकि कापालिक मत भी शैव मत था इसलिए वैष्णवमत से इनका विरोध स्वाभाविक था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन भारतीय धर्मसाधना में नाथ मत का आविर्भाव उस समय हुआ जिस समय महायान वज्रयान में परिणत हो चुका था; यक्षवाद की भोगवृत्ति ने धार्मिक आचार पद्धति में अपना एक अनिवार्य स्थान बना लिया था; कापालिक मत व्यक्ति के शरीर में ही सम्पूर्ण सिद्धि तथा भोग

द्वारा मुक्ति की प्राप्ति का प्रचार कर रहा था तथा शैव एवं शाक्त मत वैष्णव मत पर हावी हो रहा था। नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में यद्यपि नाथ मत के लिये प्रायः सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, योगिसम्प्रदाय, अवधूतमत, अवधूत सम्प्रदाय आदि अभिधानों का प्रयोग मिलता है।[७] किन्तु तत्कालीन अन्यमतों से पार्थक्यबोध के लिए 'नाथमत' का प्रयोग अधिक समीचीन है। हठयोग प्रदीपिका की टीका में ब्रह्मानन्द ने इस सम्प्रदाय को नाथ सम्प्रदाय के नाम से ही अभिहित किया है। विभिन्न ग्रन्थों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि इस मत का उपदेश श्रीनाथ द्वारा किया गया। नाथ–परम्परा में 'ना' का अर्थ है अनादि और 'थ' का अर्थ है भुवनत्रय की स्थिति। इस प्रकार नाथ शब्द का अर्थ हुआ 'भुवनत्रय की स्थिति का अनादि कारण'।[८] यह बात उल्लेखनीय है कि नाथ शब्द शिव का वाचक है जो त्रिभुवन के अनादि का कारण है। नाथ' शब्द की एक दूसरी व्युत्पत्ति भी मिलती है। शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार 'ना' का अर्थ है मोक्षदान में दक्ष तथा ब्रह्मज्ञान प्रदान करने वाला और 'थ' का अर्थ है अज्ञान के सामर्थ्य को स्थगित करने वाला। इस प्रकार इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'नाथ' शब्द का अर्थ हुआ वह अनादि तत्व जो ब्रह्मज्ञान का बोध कराकर, अज्ञान के सामर्थ्य को समाप्त कर मोक्ष प्रदान करने में दक्ष है।[९] नाथ परम्परा के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव हैं। जैसा कि हमने ऊपर बताया है नाथमत सिद्धमत के नाम से अधिक ख्यात था। डा. धर्मवीर भारती, सिद्धसाहित्य से अभिप्राय महायान बौद्धों के साहित्य से समझते हैं। किन्तु इस बात के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं कि सिद्धमत नाथमत का ही वाचक था अन्य का नहीं। सिद्धसिद्धान्त पद्धति में इस सिद्ध मत को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है और यह कहा गया है कि वह वेदान्त मीमांसा, वैशेषिक, सांख्य, वैष्णव, वैदिक, वीर, बौद्ध, जैन, याज्ञिक, नग्नव्रतीतापस, मौनी आदि से भिन्न है।

नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति किस प्रकार हुई और कितने आचार्य हुए इस विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हठयोग प्रदीपिका में नाथपंथ के अनेक सिद्ध योगियों के नाम दिये गये हैं और यह मान्यता है कि ये सिद्ध योगी अभी भी ब्रह्माण्ड में विचरण कर रहे हैं। सूची में जो नाम दिये गये हैं उनमें भ्रष्ट पाठ है। आचार्य द्विवेदी ने इन नामों के जो शुद्ध पाठ दिये हैं

वे इस प्रकार है[10]– आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, शारदानन्द, भैरव, चौरंगी, मीननाथ, गोरक्षनाथ, विलेशय, मथान भैरव, सिद्धबोध, कन्हड़ीनाथ, कोरंटकनाथ, सुरानन्द, सिद्धपाद, चर्पटीनाथ, काणेरीनाथ, पूज्यपाद, नित्यनाथ, निरंजननाथ, कापालिनाथ, बिन्दुनाथ, काकचण्डीश्वर, भयनाथ, अक्षयनाथ, प्रभुदेव, घोड़ाचूलीनाथ, टिण्टिणीनाथ, भल्लरीनाथ, नागबोध और खण्डकापालिक। नाथ सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि सबसे पहले नव मूलनाथ हुये जिन्होंने सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। किन्तु वे नवनाथ कौन हैं इनकी सर्वसम्मत परम्परा नहीं मिलती। महार्णवतन्त्र में नवनाथों को भिन्न भिन्न दिशाओं में न्यास करने की विधि बतायी गयी है जिसके आधार पर आचार्य द्विवेदी ने नवनाथों की सूची इस प्रकार दी है[11]– गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ, नागार्जुन, सहस्रार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत, आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ। यह बात उल्लेखनीय है कि इन नामों में ऐतिहासिक क्रमबद्धता का अभाव है। योगिसम्प्रदायाविष्कृति के अनुसार नव नाथ हैं[12]– मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, करणिपानाथ, गहनिनाथ, नागनाथ, चर्पटनाथ, रेवानाथ, भर्तृनाथ, भागनाथ तथा गोपीचन्द्रनाथ।

योगिसम्प्रदायाविष्कृति में नव नारायणों के नव नाथों के रूप में अवतरित होने की कथा दी गयी है। वहाँ बताया गया है कि द्वापर के अन्त में ईश्वर वियोग हो गया। समय को नाश की ओर जाते देख धार्मिक जनों ने प्रार्थना की। महादेव ने नारद को वदरीकाश्रम जाकर नवनारायण को योगमार्ग का उपदेश करने को कहा। नव नारायणों के नाम इस प्रकार हैं– कवि नारायण, करभाजनारायण, अन्तरिक्षनारायण, प्रबुद्धनारायण, आविर्होत्रनारायण, पिप्पलायन नारायण, चमसनारायण, हरिनारायण तथा द्रुमिलनारायण। ये नव नारायण विरक्त ब्रह्मनिष्ठ पुरुष थे। ये सब जाकर विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु को साथ लेकर ये नव नारायण शिव के पास पहुँचे। शिव ने कहा कि हम लोग भारत में अवतार लेकर संसारानलतप्त मुमुक्षुजनों का उद्धार करें। शिव की बात मानकर नव नारायणों ने नव नाथों के रूप में अवतार लिया; कविनारायण मत्स्येन्द्रनाथ हुए और इन्होंने स्वयं शिव से दीक्षा ली; स्वयं शिव गोरक्षनाथ हुए और मत्स्येन्द्रनाथ से दीक्षा ली; करभाजननारायण गाहनिनाथ हुए; अन्तरिक्षनारायण जालन्धरनाथ हुए और शिव से दीक्षा ली; प्रबुद्ध नारायण करणिपानाथ हुए और ज्वालेन्द्रनाथ (जालन्धरनाथ) से दीक्षा ली; पिप्पलायननारायण

चर्पटनाथ हुए और उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ से दीक्षा ली; चमसनारायण रेवानाथ (रेवननाथ) हुए और उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ से दीक्षा ली; हरिनारायण भर्तृनाथ हुए और गोरक्षनाथ से उन्होंने दीक्षा ली; दुर्मिलनारायण गोपीचन्द्रनाथ हुये और उन्होंने ज्वालेन्द्रनाथ से दीक्षा ली; आविर्होत्र नारायण नागनाथ हुये और उन्होंने गोरक्षनाथ से दीक्षा ली।

योगिसम्प्रदायाविष्कृति में नव नारायणों के नव नाथ के रूप में अवतरित होने की जो कथा दी गयी है उसका मूल उद्देश्य वैष्णव मत से शैव मत की श्रेष्ठता दिखानी है। नाथ सम्प्रदाय भी वस्तुतः शैव मत का ही अंग था इसलिए नवनारायण जो मूलतः वैष्णव थे उनका नाथ रूप में अवतरित होना उनका वैष्णव मत से शैव मत में धर्मान्तरण था। यह प्रवृत्ति उस काल की धर्म साधना में सर्वत्र दिखायी पड़ती है।

सुधाकर चन्द्रिका[१३] में नवनाथों की सूची इस प्रकार दी गयी है– एकनाथ, आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, उदयनाथ, दण्डनाथ, सत्यनाथ, संतोषनाथ, कूर्मनाथ तथा जालन्धरनाथ। इन सूचियों में गोरक्षनाथ का नाम नहीं है। गोरखपंथियों का विश्वास है कि इन नौ नाथों की उत्पत्ति श्री गोरक्षनाथ से हुई है। वे यह मानते हैं कि गोरक्षनाथ ही भिन्न–भिन्न समय में अवतार लेकर भिन्न भिन्न नाथान्त नाम से अवतरित हुये। वे अनादि और अनन्त पुरुष हैं। वर्णरत्नाकर नामक एक ग्रन्थ में चौरासी नाथ सिद्धों की तालिका दी गयी है। यद्यपि ग्रन्थकार ने चौरासी संख्या का उल्लेख किया है, किन्तु तालिका में ७६ नाम ही हैं।[१४] संभवतः आठ नाम छूट गये हैं।

इन नाथों में बहुचर्चित और सर्वसाधारण नाम चार ही हैं– आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ तथा गोरक्षनाथ। इनके विषय में अनेक कथाएं मिलती हैं। इन कथाओं में उनकी आश्चर्यजनक सिद्धियों का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पौराणिकों के साथ इनकी समकक्षता लाने के लिये इस प्रकार की अनेक किंवदन्तियां अथवा कहानियाँ प्रचलित हुईं। इन्होंने नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत कई पंथ चलाये।[१५]

नाथों में मत्स्येन्द्रनाथ जो मच्छन्दरनाथ के नाम से भी जाने जाते हैं, कौलमार्ग के प्रवर्तक हैं। तन्त्रालोक की टीका में उन्हें सकल कुलशास्त्र का अवतारक कहा गया है।[१६] किन्तु कौलज्ञान

निर्णय में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे मालूम होता है कि यह मत दीर्घकाल से परम्पराक्रम से चला आ रहा था।[१७] इस सिद्धान्त के प्रथम प्रवक्ता भगवान् शिव हैं। भैरव रूप में भगवान् शिव ने पार्वती को कृतयुग में इसका प्रवचन किया। त्रेता में वही कौलज्ञान 'महत्कौल' नाम से प्रसिद्ध हुआ। द्वापर में वही 'सिद्धामृत' नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा कलिकाल में 'मत्स्योदर कौल' नाम से ख्यात हुआ।[१८] वस्तुतः यह एक प्रकार से शैवमत का ही नाथों में विकसित रूप था। मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस कौल सिद्धान्त का प्रवर्तन किया वह वास्तव में 'योगिनी कौल' नाम से प्रसिद्ध है।[१९] वे पहले सिद्धामृत मार्ग के अनुयायी थे। यह मार्ग पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आश्रित था। देवी अर्थात् शक्ति उसकी प्रतिद्वन्द्विनी थी और उसमें स्त्री प्रसंग पूर्ण रूप से वर्जित था। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ कामरूप में जाकर वाममार्गी बन गये। वहाँ वे योगिनियों के चक्र में फंस गये। वहीं पर उन्होंने 'योगिनी कौल' मार्ग का प्रवर्तन किया। किन्तु उनके प्रवीण शिष्य गोरक्षनाथ ने कामरूप में उनका उद्धार किया और वे पुनः उसी मार्ग में प्रवृत हुए जिसमें पहले थे। 'कौलज्ञाननिर्णय' और 'अकुलवीरतन्त्र' मत्स्येन्द्रनाथ की इन्हीं दो अवस्थाओं की रचनाएं हैं। प्रथम रचना कामरूप में उनके द्वारा प्रवर्तित योगिनी कौल सिद्धान्त से सम्बन्धित है और दूसरी रचना अकुलवीरतन्त्र उनके पूर्व परित्यक्त और बाद में गोरक्षनाथ के प्रयास से पुनः स्वीकृत सिद्धमत की प्रतिपादक है। कुण्डलिनी योग जो पूर्ववर्ती नाथपंथियों की सर्वमान्य साधना है कौलज्ञान निर्णय में स्थान न पाकर अकुलवीरतन्त्र में वर्णित है। कुण्डलीयोग वह योग है जो अत्यन्त कठिन साधना से प्राप्त होता है। यह सहज समरस में स्थितिवश प्राप्य योग है। नाथ परम्परा के ग्रन्थों के अध्ययन से यह बात मालूम होती है कि पुराना सिद्धमार्ग मुख्यरूप से योगपरक था और पञ्च मकारों या पञ्चपवित्रों की व्याख्या उसमें रूपक के रूप में ही हुआ करती थी। मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस प्राचीन कौलमार्ग की चर्चा की है वह निश्चित ही शाक्त मत था, उस पर बौद्ध मत का प्रभाव नहीं था। अकुलवीरतन्त्र में बौद्धों को स्पष्टरूप से मिथ्यावादी मुक्ति का उपाय बताया गया है।

कौल–परम्परा में 'कुल' का अर्थ 'शक्ति' और 'अकुल' का अर्थ 'शिव' है। कुल से अकुल का सम्बन्ध ही कौल मार्ग है।

कुल और अकुल को मिलाकर समरस बनाना ही कौलसाधना का लक्ष्य है।[२०] शिव की सिसृक्षा अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा ही शक्ति है। शक्ति से ही सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, परन्तु शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो सम्बन्ध है वही शिव और शक्ति का सम्बन्ध है।[२१] शिव अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, धर्महीन और निरंग है इसलिय उन्हें 'अकुल' कहा जाता है। चूंकि शक्ति ही सृष्टि का हेतु है और समस्त जगत् रूप प्रपञ्च की प्रवर्तिका है इसलिये उसे कुल (=वंश) कहते हैं। शक्ति के बिना शिव कुछ भी करने में समर्थ नहीं। इसलिये शक्ति ही उपास्य है। इस शक्ति की उपासना करने वाले शाक्त लोग ही कौल हैं। नाथ-परम्परा में 'कुल' शब्द की एकाक्षरात्मक व्याख्या भी की जाती है। इस व्याख्या के अनुसार 'कु' का अर्थ हैं पृथिवी और 'ल' का अर्थ है लीन होना। पृथिवी तत्व मूलाधार चक्र में रहता है, इसलिये मूलाधार चक्र को 'कुल' कहते हैं। इसी मूलाधार से सुषुम्ना नाड़ी मिली हुई है जिसके भीतर से उठकर कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में परम शिव से सामरस्य प्राप्त करती है। इसलिए लक्षणावृत्ति से सुषुम्ना को भी 'कुल' कहते हैं। कौलसाधना का प्रधान कर्तव्य जीवशक्ति कुण्डलिनी को उदबुद्ध करना है। शक्ति ही महाकुण्डलिनी रूप से जगत् में व्याप्त है। मनुष्य के शरीर में वही कुण्डलिनी रूप से अवस्थित है। कुण्डलिनी और प्राणशक्ति को लेकर ही जीव मातृकुक्षि में प्रवेश करता है। सभी जीव साधारणतः तीन अवस्थाओं में रहते हैं- जाग्रत्, सुषुप्ति और स्वप्न। इन तीनों अवस्थाओं में कुण्डलिनी शक्ति निश्चेष्ट रहती है; वह मात्र शरीर धारण का कार्य करती है। पृष्ठभाग में स्थित मेरूदण्ड पायु और उपस्थ के मध्य भाग में जहां लगता है वहाँ एक स्वयंभू लिंग है जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है। इसे 'अग्निचक्र' कहते हैं। इसी अग्निचक्र में स्थित स्वयंभूलिंग को साढ़े तीन वलयों में लपेटकर सर्पिणी की भांति कुण्डलिनी अवस्थित है। इसके ऊपर चार दलोंका कमल है जिसे 'मूलाधार चक्र' कहते हैं। इसके ऊपर नाभि के पास 'स्वाधिष्ठान चक्र' है जो ६ दलों के कमल के आकार का है। इसके भी ऊपर 'मणिपूर चक्र' है और उसके ऊपर हृदय के पास 'अनाहत चक्र' है। ये दोनों क्रमशः १० और १२ दलों के कमल के आकार के हैं। 'अनाहत

चक्र' से भी ऊपर कण्ठ के पास 'विशुद्ध चक्र' है जो १६ दलों के कमल के आकार का है। इसके ऊपर भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र है जिसमें दो दल हैं। ये ही षट्चक्र हैं। इन चक्रों को पार करती हुई उद्बुद्ध कुण्डलिनी शक्ति सबसे ऊपर वाले सातवें चक्र सहस्रार में परम शिव से मिलती है। यही सहस्रार चक्र परम शिव का निवास होने से कैलाश कहलाता है।[२२] इस प्रकार सहस्रार में परम शिव हृत्पद्म में जीवात्मा और मूलाधार में कुण्डलिनी विराजमान है। जीवात्मा परम शिव से चैतन्य और कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है, इसलिये कुण्डलिनी जीवशक्ति है। साधना के द्वारा निद्रिता कुण्डलिनी को जगाकर मेरुदण्ड की मध्यस्थिता नाड़ी सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार में स्थित परम शिव तक उत्थापन करना ही कौल साधक का कर्तव्य है।

मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य जालन्धरनाथ तथा उनके शिष्य करणिपा या कानिपा जिनको कृष्णपाद कहा जाता है, ने नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत कापालिक मत प्रवर्तित किया। नाथपंथ की पृष्ठभूमि के रूप में कापालिक मत की चर्चा हम पीछे कर चुके हैं। यहाँ मात्र इतना ही कहना है कि कापालिक मत भी नाथ मत पर हावी हो गया था और नाथ सिद्धों में से कई ने कापालिक आचार पद्धति स्वीकार कर ली थी। कापालिकों की आचार पद्धति क्या थी इसका संकेत तत्कालीन संस्कृत तथा प्राकृत ग्रन्थों में भी मिलता है। मालती माधव के पञ्चम अंक के प्रारम्भिक श्लोकों में कपालकुण्डला जो अघोरघंट की शिष्या थी और जिसके साथ वह योग–साधना करता था, शिव की स्तुति करती हुई पायी जाती है। इन श्लोकों में कापालिक मत के विषय में और तत्कालीन समाज में उनकी स्थिति क्या थी, पता चलता है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक (१०वीं सदी) में सोमसिद्धान्त नामक कापालिक का वर्णन है जो मनुष्य की अस्थियों की माला धारण किये रहता था, श्मशान में वास करता था और नरकपाल में भोजन किया करता था।[२३] योगांजन से शुद्ध दृष्टि से वह कापालिक जगत् को परस्पर भिन्न देखते हुये भी ईश्वर से अभिन्न देखा करता था। प्रबोधचन्द्रोदय की चन्द्रिका नामक व्याख्या में सोमसिद्धान्त का अर्थ समझाया गया है। सोम का अर्थ है उमा सहित (स उमा) अर्थात् शिव! जो व्यक्ति विश्वास करता है कि शिव जिस प्रकार नित्य उमासहित कैलाश में विहार करते हैं उसी

प्रकार कान्ता के साथ नित्य विहार करना ही परम मुक्ति है, वह सोमसिद्धान्ती है। राजशेखर की कपूर्रमञ्जरी[13] में भैरवानन्द कापालिक का वर्णन मिलता है जो अपने को कौल सिद्ध कहता था।

नाथ सम्प्रदाय का जो शुद्ध स्वरूप है वह गोरक्षनाथ के द्वारा प्रतिपादित हुआ है। उन्होंने हठयोग का प्रचार किया। सिद्धसिद्धान्त पद्धति के अनुसार ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ है चन्द्रमा। सूर्य और चन्द्रमा के योग को ही हठयोग कहते हैं। हठयोग के दो भेद बताये गये हैं– आसन, प्राणायाम तथा धौति आदि षट्कर्म और नासिका के अग्रभाग में दृष्टि निबद्ध करके आकाश में कोटि सूर्य के प्रकाश को स्मरण करना। ऐसा करने से साधक चिरायु होता है और हठात् ज्योतिर्मय होकर शिवरूप हो जाता है। शरीर में तीन तत्व अत्यधिक शक्तिशाली हैं– बिन्दु {शुक्र}, वायु और मन। हठयोगी के अनुसार इनमें से किसी एक को भी साधक वश में कर ले तो दूसरे स्वयमेव वश में हो जाते हैं। गोरक्षनाथ का यह सिद्धान्त है कि छः चक्र, सोलह आधार, दो लक्ष्य तथा व्योम पञ्चक को जानकर साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है। सोलह आधार हैं– पादांगुष्ठ, मूलाधार, गुह्याधार, बिन्दुचक्र, नाड्याधार, नाभिमण्डलाधार, हृदयाधार, कण्ठाधार, क्षुद्रघण्टिकाधार, ताल्वन्ताधार, रसाधार, ऊर्ध्वदन्तमूल, नासिकाग्र, नासामूल, भ्रूमध्याधार, नेत्राधार। पञ्चाकाश हैं– श्वेतवर्ण, रक्तवर्ण, धूम्रवर्ण, नीलवर्ण व सूर्याकाश। ये पञ्च आकाश उत्तर–उत्तर पूर्व–पूर्व के अन्दर अवस्थित हैं। गोरक्ष के कई ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें उनके सिद्धान्त का सम्यक् प्रकार से विवेचन मिलता है।

नाथमत का भारतीय संस्कृति में जब हम मूल्यांकन करते हैं तो मालूम होता है भारतीय समाज में पूर्व प्रचलित वैदिक धर्म में जहाँ कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा मर्यादित पारिवारिक एवं सामाजिक आचार पक्ष की प्रधानता थी वहाँ नाथचिन्तन में यौगिक साधना पर विशेष बल दिया गया। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योग दर्शन को एक व्यावहारिक रूप दिया गया। नाथ सिद्ध शैव मत के ही उपासक थे, इसलिये दर्शन पक्ष तो उनका सामान्य रूपरेखा में शैव ही रहा, किन्तु उन्होंने शक्ति और शिवतत्व के मेल में ही सम्पूर्ण यौगिक साधना का लक्ष्य माना। शिव और शक्ति के सामरस्य वाममार्ग की आचारपद्धति भी इनमें प्रविष्ट हुई,

किन्तु वह आयातित रूप था, उनका अपना नहीं था। नाथों में वज्रोली मुद्रा भी प्रचलित थी, किन्तु वह भी उनकी अपनी नहीं, वज्रयानियों से उन्हें प्राप्त हुई थी। पञ्च मकार का आचरण उन्हें कापालिकों से प्राप्त हुआ तो था, किन्तु वह उनको अभीष्ट नहीं था। गोरक्षनाथ ने स्पष्ट शब्दों में उसका विरोध किया और योग के सही रूप पर ही बल दिया। वैयक्तिक साधना पर नाथ सिद्धों का विशेष आग्रह था। किन्तु सामाजिक दृष्टि से विचार करते हैं तो नाथ मत की कुछ कमियां भी दिखायी पड़ती हैं। कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करना और परम शिव के साथ उसका सामरस्य स्थापित करना यह किसी को बताकर समझाया नहीं जा सकता था। केवल साधक ही उसकी अनुभूति कर सकता था। दूसरी बात साधना का मार्ग इतना कठिन था कि सभी उसमें प्रवृत्त नहीं हो सकते थे। इस प्रकार नाथों की यह साधना पद्धति समाज धर्म नहीं बन सकती थी। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि नाथ सिद्धों के चमत्कारों को देख कर जनता उनके प्रति आकृष्ट हुईः कोई पुत्र के लिये, कोई धन के लिये, कोई किसी अन्य कामनाओं की पूर्ति के लिये।

मध्यकालीन धर्मसाधना में तत्कालीन अन्य सिद्धों की तरह नाथ सम्प्रदाय के सिद्धों ने भी वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। इसके कई कारण थे। एक कारण तो यह था कि इस सम्प्रदाय के अधिकांश साधक नीच जाति के थे जिनका पठन–पाठन से कोई सम्बन्ध नहीं था। दूसरा कारण यह था कि कुछ सिद्ध ब्राह्मण होते हुये भी ब्राह्मणवृत्ति को छोड़कर अन्य वयन आदि वृत्तियां स्वीकार कर चुके थे। ऐसे ब्राह्मणों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। वैदिक परम्परा वाले जो ब्राह्मण थे वे वाममार्गी सिद्धों के स्त्रीसंग, मदिरापान, मांस–भक्षण, वज्रोली आदि साधनाओं से घृणा करते थे। विशेषकर कापालिकों को तो वे दूर से भी नहीं देखना चाहते थे। इसी परिस्थिति में तत्कालीन वैदिक परम्परा के अनुयायी ब्राह्मणों में छूआछूत की प्रवृत्ति जागृत हुई। आचार्य शंकर के सामने कापालिक के रूप में शिव का उपस्थित होकर एक ज्ञानी व्यक्ति के लिये अस्पृश्यता की निन्दा करना, इसी की ओर संकेत करता है। शंकर ने भले ही ज्ञान की दृष्टि से कापालिक के सामने झुककर अपने ज्ञान की पराजय स्वीकार कर ली हो, किन्तु हिन्दु समाज ने उस अघोर कापालिक मत को मान्यता नहीं दी। वैदिक

आचार पद्धति का पालन करने वाले ब्राह्मण ही नहीं अपितु सिद्धनाथ सन्तों ने भी वामाचार की निन्दा की। स्वयं गोरक्षनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को वामाचारी योगिनी कौलमार्ग से मुक्त करके उनको सही मार्ग में प्रवेश कराया।

इसका मतलब यह नहीं कि सम्पूर्ण नाथ सम्प्रदाय सामाजिक मूल्यों से रहित था। भारतीय संस्कृति के ऊपर इसने एक अमिट छाप योग साधना के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत कर छोड़ी है। इस योग साधना का इतना प्रभाव समाज में पड़ा कि तत्कालीन साहित्य भी उससे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सका। योग के कई तकनीकी पारिभाषिक शब्द परवर्ती साहित्यिक रचनाओं में मिलते हैं। उनके सम्यक् ज्ञान के लिये नाथ सम्प्रदाय की यौगिक साधना पद्धति का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। नाथ सम्प्रदाय की भारतीय संस्कृति को अगर कोई महत्वपूर्ण देन है तो वह उसकी यौगिक साधना पद्धति ही है।

१ *सिद्ध साहित्य, पृ. १०५*

२ *एन. जी. मजूमदार, जर्नल आव् द डिपार्टमेण्ट आफ लेटर्स, जिल्द ४*

३ *बिब्लिोथिका इण्डिका में प्रकाशित, पृ. ६*

४ *अध्याय १७, पृ. ३३३*

५ *यक्षकुलं यत्र वज्रपाणेरुत्पतिः।*

६ *नाथ सम्प्रदाय, पृ. ८३*

७ *द्र प. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ. ९*

८ *तु. नाकारोऽनादिरूपं थकारः स्थाप्यते सदा।*
*भुवनत्रयमेवैकः श्रीगोरक्ष नमोऽस्तु ते। राजगुह्य*

९ *श्रीमोक्षदानदक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात्*
*स्थगिता ज्ञानविभवात् श्रीनाथ इति गीयते। शक्तिसंगमतन्त्र*

१० *हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ. २४*

११ *वही*

१२ *योगिसम्प्रदायाविष्कृति, पृ. ११–१४*

१३ *सुधाकर चन्द्रिका, पृ. २४१*

१४ *द्र. प. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ. २७–३२*

१५ *वही, पृ. १३–१४*

१६ *तन्त्रालोक, पृ. २४*

१७ *द्र. कौलज्ञान निर्णय, ६.९; १४.९*

१८ *कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते*
*कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते।। सौभाग्यभास्कर, पृ ५३*

१९ शिवस्याभ्यन्तरे शक्ति शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह, पृ. ६७
न शिवेन बिना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
अन्योऽन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निधूमौ यथा प्रिये।। कौलज्ञाननिर्णय, १७.८

२० अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम्
ब्रह्माण्डव्यस्तदेहस्थं बाह्ये तिष्ठति सर्वदा।
कैलाशो नाम तस्यैष महेशो यत्र तिष्ठति।। शिवसंहिता, ५.१५१–५२

२१ प्रबोध चन्द्रोदय, ३.१२

२२ कर्पूरमंजरी, १.२२–२४

# नाथ और सिद्ध

प्रो. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय

सिद्धों और नाथों के सम्बन्ध के विषय में अनेक मतवाद हैं, जैसे मत्स्येन्द्र, गोरखनाथ आदि बौद्ध ही थे, अथवा इन लोगों ने बाद में बौद्ध धर्म छोडकर शैव धर्म अपनाया, अथवा ये मूलतः पाशुपतों की परम्परा में शैव थे, अथवा इनका सीधा सम्बन्ध काश्मीर शैव तांत्रिक मत से था, अथवा इनका सम्प्रदाय अन्तिम तान्त्रिक बौद्ध सहजयान का एक उपयान था, अथवा इन लोगों ने बौद्ध धर्म छोड़कर पतंजलि के ईश्वरवाद और योग को लेकर अपना पंथ चलाया, अथवा नवनाथों में से अनेक मूलतः बौद्ध थे और बाद में सम्प्रदाय संगठन के क्रम में उनके सम्प्रदाय का एक पंथ के रूप में बृहत्तर नाथ सम्प्रदाय में अन्तर्भाव हो गया। इन स्थापनाओं में अनेक सूक्ष्म अन्तर अथवा भेदात्मक तत्व मिलते हैं। वस्तुतः यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाए तो इस विषय पर एक महाग्रन्थ तैयार हो सकता है। इस सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध है और जो साहित्य प्रकाशित है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बौद्ध साहित्य एवं धर्म सम्प्रदाय एवं साधना पर विचार करने वाले लेखक अति उत्साह में बौद्ध धर्मसाधना का प्रभाव नाथ सम्प्रदाय पर ही नहीं, वैष्णव सम्प्रदाय तक पर मानते हैं। इतना ही नहीं, पुरी के जगन्नाथ मन्दिर की मूर्तियों और महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय पर भी बौद्ध प्रभाव को स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनकी समस्या थी कि यदि १२वीं सदी में भारत में मुसलमानों

द्वारा तांत्रिक बौद्ध धर्म का मूलोच्छेद हो गया तो उसके बाद तत्कालीन बौद्ध धर्म का क्या हुआ? निश्चय ही वह शैव, वैष्णव आदि धर्म–सम्प्रदायों एवं पंथों में रूपान्तरित हो गया अथवा विलीन हो गया जिसके अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। इन लेखकों ने उन अवशेषों को खोजकर उन्हें येन केन प्रकारेण बौद्ध सिद्ध कर दिया। इन लेखकों की अपनी विवशताएँ थीं, लोभ था, उत्साह था। अब धीरे धीरे इसमें कमी आ रही है।

तांत्रिक बौद्ध मत के विविध यानों और विकासों {पारमितानय, मंत्रनय, वज्रयान, सहजयान, कालचक्रयान आदि} का हम यहाँ विचार नहीं कर रहे हैं, किन्तु नाथों और सिद्धों के सम्बन्धों पर विचार करने के लिए साम्प्रदायिक, दार्शनिक, साहित्यिक और साधनात्मक दृष्टियों का प्रस्ताव करते हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से विचार करने के लिए आधारभूत सामग्री के रूप में विहारसूची और चित्रावली, वर्णरत्नाकर की सूची और हठयोगप्रदीपिका की सूची को ले सकते हैं। इनमें से प्रथम सूची तिब्बती बौद्ध स्रोत से प्राप्त है और शेष दो भारतीय स्रोत से। मैंने अपने ग्रन्थ ''तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य' में इन सूचियों पर विस्तार से विचार किया है और निष्कर्ष निकाला है कि मीननाथ, गोरखनाथ, कपाली, कान्ह, चर्पटि और सबर के नाम तीनों सूचियों में मिलते हैं। तिब्बती सूची के आधार पर राहुल जी ने सिद्धों की शिष्य परम्परा का भी उद्‌घाटन किया है–

| | | |
|---|---|---|
| जालंधरपाद | – | मीनपा {मत्स्येन्द्र के पिता} {पृ. १४८} |
| मत्स्येन्द्र | – | गोरक्ष {पृ. १४८} |
| कुकुरीपा | – | मीनपा {पृ. १५०} |
| जालंधरपा | – | कण्हपा, मत्स्येन्द्र {पृ. १५१} |
| मत्स्येन्द्र | – | गोरक्षपा, चौरंगीपा {पृ. १४८}[1] |

राहुलजी के द्वारा दिए गए उल्लेखों में स्वयं कितना अन्तर्विरोध है, यह ध्यान देने योग्य है। उनकी सिद्धों की सूची में, एक सिद्ध के रूप में मत्स्येन्द्र का नाम नहीं है। उनकी सूची के आधार पर यदि सिद्धों की परम्परा की रूपरेखा बनायी जाय तो वह इस रूप में प्रस्तुत होगी–

*समित्पाणि पद का स्पष्टीकरण*

गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्य को गुरु के सान्निध्य में जाने के लिए श्रुतिवाक्य उपलब्ध है– 'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुमभिगच्छेत्'। प्रायः सभी टीकाकार 'समित्प्रभृत्युपाण्यनहस्तः' अर्थात् हाथ में समिधादि लेकर रिक्तहस्त होकर नहीं, गुरु के पास जाना चाहिए यह अर्थ करते हैं, किन्तु विद्वज्जनमनोरञ्जिनीकार ने यहां भी नाथ सम्प्रदाय परक विलक्षण अर्थ ही प्रस्तुत किया है– सम्यक् इन्धनं नाथपदलक्ष्यस्वरूप प्रकाश, समित् तादृश समित्पपणौं यस्य सः समित्पाणिः इति व्युत्पत्यां करतलागलीकृतनाथपद लक्ष्य स्वरूप प्रकाशवान्[11] अर्थात् नाथ पद के लक्ष्यस्वरूप प्रकाश को जिसने हस्तामलक की तरह कर लिया है वह समित्यापाणि कहलाता है।

इस प्रकार अवधूत पद वाच्य गुरू तथा समित्पाणि पद वाच्य शिष्य का योगविद्या में महत्वपूर्ण स्थान है।

*योग विद्या का परावरत्व*

इस योगविद्या का सर्वप्रथम उपदेश शुक्रशोणित के संयोग के बिना ही स्वयं प्रकट करते हुए ब्रह्मपदवाच्य श्री सत्यनाथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया। इसके पश्चात् अथर्व ने अंगिर् को, अंगिर् ने भरद्वाजगोत्रोत्पन्न सत्यवाह को, भारद्वाज ने अंगिरस् को तथा अंगिरस् ने शौनक को 'परावर' रूप में उपदेश दिया। परावर शब्द का आशय स्पष्ट करते हुए टीकाकार लिखते हैं– परस्मात् परस्मात् अवरेण प्राप्ताम् ज्येष्ठात् कनिष्ठेन प्राप्ताम्, उत्कृष्टात् अपकृष्टेन प्राप्ताम्[12] अर्थात् ज्येष्ठ से कनिष्ठ गुणगत उत्कृष्ट से अपकृष्ट को क्रमशः प्राप्त होती हुई यह योगविद्या शौनक ऋषि तक पहुंच गई।

*परा और अपरा विद्या*

ब्रह्म किंवा सत्यनाथस्थानीय अंगिरस् से जब अथर्वस्थानीय शौनक ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका विज्ञान हो जाने पर ज्ञातव्य सभी का विज्ञान हो जाता है'– कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिद विज्ञातं भवति।[13]

इसके उत्तर में अंगिरस् ने कहा– तस्मै होवाच स द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म।

यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चापरा च।।[13]

अर्थात् वेदार्थ के ज्ञाताओं ने परा और अपरा नाम से दो प्रकार की विद्याओं का कथन किया है। इनका विवरण इस प्रकार है–

अपरा विद्या– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद– यह वेदचतुष्टयी तथा छः वेदांग १. शिक्षा, २. कल्प, ३. निरुक्त, ४. छन्द ५. व्याकरण तथा ६. ज्योतिष– ये सभी अपरा विद्या के अन्तर्गत जाते हैं।

यह अपरा विद्या कर्मानुष्ठान द्वारा चित्त की शुद्धि का हेतु होने के कारण परा विद्या की उपकारिका है, अतः पूर्व में परा चापरा च इस प्रकार मंत्र में परा का उल्लेख होने पर भी निरूपण क्रम में अपरा का ही निरूपण पहले किया गया हैं।

टीकाकार का इस प्रसंग में अपना मौलिक विवरण है कि अपरा ऋग्वेदादिरूपा है। वेद का लक्षण है मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। मंत्र दो प्रकार का है – ऋक्, यजुष्। नियत वर्ण और पदों वाली ऋक है तथा अनियतवर्ण तथा पदों वाला युजुष् है। ऋक् और युजुष् की ही अविवक्षा से मात्र ज्ञान की प्रधानता तथा शान्तिक पौष्टिक अर्थ की प्रधानता के कारण क्रमशः साम और अथर्ववेद कहलाते हैं।

***परा विद्या***

उपरि वर्णित अपरा विद्या वेद–वेदांगभूत शब्दराशि स्वरूप है जबकि परा विद्या तत्त्वस्वरूप है जो कि जीव और परमात्मा के ऐक्यस्वरूप योग विषयक ज्ञान ही है[15] अतः जिसके द्वारा अक्षरब्रह्म की प्राप्ति की जा सकती है वही परा विद्या कहलाती है। इस परा विद्या की प्राप्ति के लिए पूर्व में वर्णित अवधूत स्वरूप गुरु ही एकमात्र शरण है। इसीलिए कहा गया है–

वेदान्तानामनेकत्वात् संशयानां बहुत्वातः।

वेद्यस्याप्यतिसूक्ष्मत्वात् न जानाति गुरुं बिना।।[16]

यह परा विद्या परमात्माविषयिणी फलस्वरूपा है।

जो सभी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों से अग्राह्य है, मूल कारण से रहित है, इस द्रव्यधर्म शुक्लादिवर्णों से रहित है, जो स्वयं ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से रहित है, नाम स्वरूप से परे है, अविनाशी है, विविध प्राणियों में विद्यमान है अतः विभु है,स्थूलकारणों से रहित होने के कारण अतिसूक्ष्म, अतः दुर्लक्ष्य है, शरीरापचय कोषापचय तथा गुणापचय से रहित है। अतः अव्यय है। इन विशेषणों से विशिष्ट समस्त स्थावरजंगम सृष्टि के कारण भूत परमात्मतत्त्व का सदसद्विवेकशाली धीर, योगी जिस दिशा के द्वारा साक्षात्कार करते हैं वही परा विद्या है।

टीकाकार ने ब्रह्मपद को लक्षित करते हुए लिखा है 'स्वेतरव्यावृत्त–धर्मज्ञानैश्वर्यवैराग्येति **चतुष्टयवान्**।'[17] अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त सांसारिक प्राणी में नहीं रहने वाले; अतएव विलक्षण धर्मज्ञान वैराग्य तथा ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्म है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि सदानन्द स्वरूप सत्यनाथ ही प्राप्त करने योग्य हैं वही समस्त गुरुओं का भी गुरु है, जिसे द्वैताद्वैतविलक्षण द्वन्द्वातीत अवधूत ही प्राप्त कर सकता है तथा वही उपदेश देने का अधिकारी है। अन्य दर्शनों में माना है कि संचित एवं क्रियमाण कर्म का क्षय सुकृत कर्मों द्वारा हो सकता है किन्तु प्रारब्ध कर्म का तो भोग भोगने से ही क्षय होता है किन्तु नाथ सम्प्रदाय के अनुसार श्रीनाथ से तादात्म्य हो जाने पर वह विनष्ट हो जाता है। नाथस्वरूप में अवस्थित होना ही मोक्ष है।

इस सम्प्रदाय के अनुसार अद्वैतभाव से भी परे सदानन्द स्वरूप सत्यनाथ पद की स्थिति है। इनके अनुसार सृष्टिकर्त्री शक्ति है, पालनकर्ता शिव हैं तथा संहर्त्ता स्वयं काल है तथा मुक्तिदाता नाथतत्व है। वही एकमात्र शुद्ध आत्मा है, वही परमात्मा है जो एकमात्र योगमार्ग द्वारा अधिगत हो सकता है।

इस प्रकार यह टीका अपूर्ण होते हुए भी वस्तुतः विद्वज्जमनोरञ्जिनी सिद्ध होती है, जो नाथ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराते हुए छोटे से कलेवर में भी बहुल तत्त्वों का समावेश किए हुए

है। टीका के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि टीकाकार गोरक्षनाथ सम्प्रदायानुयायी है।

यद्यपि टीका वैदुष्यपूर्ण है तथापि लिपिकर्त्ता की अनवधानता से यत्र तत्र व्याकरणगत त्रुटियों का बाहुल्य है। सम्पूर्ण कृति के उपलब्ध नहीं होने के कारण लिपिकर्ता तथा काल इत्यादि का निश्चयप्रच रूपेण उल्लेख नहीं किया जा सकता है। अतः सम्पूर्ण कृति अन्वेषणीय है।

सह–आचार्य एवं
अध्यक्ष
संस्कृत–विभाग
ज.ना.व्या. विश्वविद्यालय,
जोधपुर

## सदंर्भ

*1 आदिनाथः सर्वेषां नाथानां प्रथम स्ततो नाथसम्प्रदायः प्रवृत्तः इति नाथसम्प्रदायिनो वदन्ति हठयोगप्रदीपिका की टीका (हजारी प्रसाद द्विवेदी की नाथ सम्प्रदाय पुस्तक से उद्धृत*

*2 वेदान्ती बहुतर्ककर्कशमतिर्ग्रस्तः परं मायया*
*भाट्टाः कर्मफलाकुला हतधियो द्वैतेन वैशेषिकाः।*
*अन्ये भेदरताः विषादविकलास्ते तत्वतो वञ्चिताः*
*तस्मात् सिद्धमतं स्वभावसमयं धीरः परं संश्रयेत्।।*
*–सिद्धसिद्धान्तपद्धति, नाथसम्प्रदाय, पृ, 3*

*3. नाथ सम्प्रदाय में राजगुह्य से उद्धृत, पृ. 3*

*4. शक्तिसंगमतन्त्र से उद्धृत, नाथ सम्प्रदाय, पृ. 3*

*5 विद्वज्जनमनोरञ्जिनीटीका*

*6. यः श्रीविश्वगुरुः समस्तजगतां कर्त्ता कृपासागरः*
*श्रीमत्सिद्धविकाशरम्यविलसत् सिद्धान्तिना तत्वतः।*
*ज्ञातुं शापयि तुँचयोग्यमनिशं वेदान्तिनाप्यद्भुतम्।*
*तं श्रीनाथमयं मुदास्तु परमादेशः सदा नामकः।।*
*वही, पृ. 1*

*7. यदीयानां वाचां तरलमतिरस्मादृशजनः*
*कथंकारं पारं विजितमनसारं जिगमिषुः*
*तथापि स्वां वाणी सुरसरिति रथ्योदकमिव*
*प्रशुद्धकर्त्तुत् प्रभवति ममायं पदिरकरः।।*
*वहीं, पृ. 1*

*8. विद्वज्जनमनोरंञ्जिनीटीका, पृ. 2–3*

*9. वही, पृ. 30*

*10. वही, पृ. 31*

*11. वही, पृ. 28*

*12. वही, पृ. 6*

*13. मुण्डकोपनिषद 1.1.3.*

*14. वही, पृ., 1.1.4.*

*15. तथा च वक्ष्यमाणस्वरूप सदानन्दस्वरूप नाथवस्तुप्राप्त्युपादभुता विद्या परा–इति पर्यवसितोऽर्थः। टीका–पृ.11*

*16. मुण्डकोपनिषद मणिप्रभाटीका– 1.1.12.*

*17. टीका, पृ. 3*

## हठप्रदीपिका पर कौल सम्प्रदाय का प्रभाव

गोविंदलाल श्रीमाली

हठयोगप्रदीपिका नाथ सम्प्रदाय का परवर्ती मूल प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें हठयोग के साधनों आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के उपयोग द्वारा यम और नियमों का पालन करते हुए धौति, वस्ति, नेति आदि षट्क्रमों द्वारा नाड़ी शोधन करके प्राणायाम के माध्यम से कुंडली जागृत करके षट्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्त्रारचक्रस्थ परमशिव के साथ में ऐकात्म्य या सामरस्य स्थापित करना है।

नाथपन्थ के योगमार्ग को हठयोग इसलिए कहते हैं कि इसमें बलपूर्वक शारीरिक साधना करते हुए कुंडिलिनी के अभ्युत्थान के माध्यम से ब्रह्मरन्ध्र में जीभद्वारा पीयुष पान करते हुए परब्रह्म या परमशिव से बलपूर्वक साक्षात्कार किया जाता है। इस सम्बन्ध में कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के सम्बन्ध में हठयोग प्रदीपिका का कथन हैः–

"गंगा–यमुनयोर्मध्ये बालरंडा तपस्विनी।
बलात्कारेण गृह्णीयात् तद्विष्णोः परमं पदं।। {५/६८ हठ.}
कुंडलिन्यां तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् {५/१६४ हठ.}

ऐतिहासिक विकासक्रम की दृष्टि से कौलसम्प्रदाय की साधना हठयोग की साधना से पूर्ववर्ती है। इसमें शक्ति (साधिका नारी) के माध्यम से साधक (नर) त्रिपुर सुन्दरी से तादात्म्य प्राप्त करता है। यह गोपनीय भैरवीचक्र (श्रीचक्र) की साधना है, जिसमें ऊर्ध्वमुख त्रिकोण (शक्तितत्व) अधोमुख त्रिकोण (शक्ति तत्व) बनाकर उस पर कलश स्थापित करते हुए और साधक पान, मुद्रा और जप तथा होम के द्वारा पंचमकारों का प्रत्यक्ष या परोक्ष उपयोग करते हुए कामेश्वर (त्रिपुरान्तकशिव) और कामेश्वरी (त्रिपुर सुन्दरी) से अभेदानुभव करता है।

***कौल शब्द का सम्प्रदायगत अर्थ***

'स्वच्छंदतन्त्र और सौभाग्यभास्कर के अनुसार 'कुल' शक्ति और अकुल को शिव कहते हैं। कुल में (शक्तियों) अकुल (शिव) के सम्बन्ध को ही कौलपदवाच्य माना जाता है। गोरक्षसिद्धान्त संग्रह के अनुसार शिव के बिना शक्ति नहीं है और शक्ति के बिना शिव अस्तित्व शून्य है। इनमें किसी भी प्रकार का पार्थक्य नहीं है, जैसे चन्द्र और चन्द्रिका में कोई अन्तर नहीं होता है। वस्तुतः शक्ति के बिना शिव शव है।[1] कुल शब्द के अन्य पर्यायों में त्रिकोण, योनि, मूलाधारचक्र और सजातीय समूह भी बतलाया गया है।

कौलसाधना त्रिपुर सुन्दरी की शाक्त साधना है, जिसका उद्देश्य भी शिव शक्ति का समन्वित सामरस्य है। कौल साधक कर्दम–चन्दन, पुत्र–शत्रु, श्मशान और भुवन तथा कांचन और तृण में भेद नहीं मानता है। इस सम्बन्ध में भाव चूड़ामणि, ग्रन्थ का यह कथन स्वयं शिवजी का कथन बतलाया गया है। कर्दमे चन्दने ..... इत्यादि। विद्वानों के अनुसार कौलमार्ग की साधना के प्रति जन–सामान्य में बड़े भ्रम और आशंकाएं उसकी साधना पद्धति के अज्ञान के कारण उत्पन्न हो गयी हैं पर जनमन की आशंका का तब निराकरण हो जाता है, जब हम उसकी प्राणिमात्र के प्रति मंगलकामना शान्तिपाठ के रूप में पढ़ते हैः

"शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु सर्वे सर्वो लोकः सुखी भवतु।।"

कौल सम्प्रदाय का नैतिक पक्ष भी बड़ा उज्ज्वल बतलाया जाता है। कौल वह है, जो परद्रव्य के प्रति अन्धा है, पर स्त्री के विषय में नपुंसक है और परनिन्दा के कर्म में मूक बनकर रहता है। जिसमें ये लक्षण या गुण पाये जाते है, वहीं कौलाचार या कौलमार्ग का यथार्थ अधिकारी है।

इस तरह यहाँ कौलसम्प्रदाय और नाथपंथ की साधनाओं का संक्षिप्त परिचय देने के पश्चात् अब हम उनकी पौर्वापर्य–प्रभावान्विति का अनुशीलन करेंगे। हम देखेंगे कि कौल साम्प्रदायिक साधना का नाथपंथ की साधना पर क्या प्रभाव पड़ा। यहाँ यह ध्यान में रहें कि नाथपंथ के आद्य आचार्य और सिद्धयोगी मत्स्येन्द्रनाथ योगिनी कौलमार्ग के प्रवर्तक थे। उन्होंने कामरूप (आसाम) में योगिनियों के प्रत्येक घर में इस योगिनी–कौलशास्त्र का अस्तित्व स्वीकार किया है। (कौलज्ञाननिर्णय की पुष्पिका)

१. कौल के मौलिक ग्रन्थ– कुलार्णवतन्त्र में कुल द्रव्य (मद्य) सेवन के पश्चात् उत्पन्न सात उल्लासों का वर्णन है जिसमें छठी अवस्था उन्मनी उल्लास की बतलायी गयी है। इस अवस्था में कारणद्रव्य या कुलद्रव्य का अभिमंत्रित पान पात्र पीने के पश्चात् ऐसी अवस्था आती है, जिसमें मनोविकार दूर हो जाते हैं और मन अन्त में निरुद्ध हो जाता है। यही उन्मनी अवस्था हठयोग प्रदीपिका के उपदेशों में 'सैषावस्था मनोन्मनी' और 'कथं स्यादुन्मनी भावः' कहकर बार–बार याद की गयी है। कौल सम्प्रदाय में यह अवस्था अभिमन्त्रित और परिष्कृत कारणद्रव्य के सेवन से उत्पन्न होती है। जब कि हठयोग में कहा गया है कि प्राणायाम द्वारा मन का जो स्थिरीभाव है वही उन्मनी अवस्था का प्रेरक है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि केवल कुम्भक प्राणायाम में प्राणवायु के सावधानीपूर्वक आबद्ध होने पर स्वयं उन्मनी अवस्था अनायास ही उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार प्राणवायु सुषुम्ना के मार्ग से जब मध्य में संचरित होती है, तब मन स्थिति या स्थिरता प्राप्त कर लेता है और मन का जो यह स्थिरीकरण भाव है, वही उन्मनी अवस्था है। हठयोग या नाथपन्थ की साधना का लक्ष्य राजयोग की उपलब्धि है। इस राजयोग की प्राप्ति की प्रतिज्ञा के साथ में हठयोग प्रदीपिका का प्रारम्भ होता है। केवलं राजयोगाय

हठयोगोपदिश्यते।' यहां यह ध्यान में रहें कि राजयोग की प्राप्ति में उन्मनी अवस्था अनिवार्य है। तान्त्रिक कौलमार्गी कारणद्रव्य के सेवन से इस अवस्था को प्राप्त करता है, पर हठयोगी कुम्भक प्राणायाम के अभ्यास से इस उन्मनी अवस्था (मनः स्थैर्य) को प्राप्त करता है।

२. कौल सम्प्रदाय के ग्रन्थों में साधना को दृष्टि से साधकों को[3] पशु, वीर, और दिव्य इन तीन भावों में विभक्त किया गया है और इसी प्रकार प्रत्येक भाव के आचार (आचरण) अलग अलग हैं। वेद, वैष्णव, शैव और दक्षिण ये पशु भाव के आचार हैं। वामाचार और सिद्धान्ताचार वीर भाव के तथा केवल कौलाचार दिव्य भाव का आचार माना गया है। अद्वैतज्ञान के आंशिक न्यूनाधिक्य की दृष्टि से ही इन भावों की मान्यता है। कौलसम्प्रदाय के ग्रन्थों में वेदाचार सबसे निकृष्ट और कौलाचार सबसे श्रेष्ठ आचार माना गया है। इस सम्प्रदाय में वैदिक मार्ग के प्रति प्रायः अवज्ञा और विरोध के भाव पाये जाते हैं, उसे पशुभाव में परिगणित माना जाता है।

इस सम्बन्ध में हठयोग प्रदीपिका के लेखक आत्माराम योगी अपने ग्रन्थ को 'द्विज से सेवित शाखावाला श्रुति के कल्पतरु का फल कहते हैं। इस तरह यह ग्रन्थ वेदबाह्य या वेद विरोधी तो नहीं है पर वह वेदशास्त्र के प्रति उपहास का भाव अवश्य रखता है। हठयोग प्रदीपिका के सप्तम उपदेश में वेदशास्त्र के साथ में शाम्भकी मुद्रा खेचरी और (कुंडलिनी) तुलना करते हुए वेदशास्त्र को सामान्य गणिका से उपमित किया गया है और शाम्भवी मुद्रा को गुप्ताकुलवधु कहा गया है।

वेदमार्ग की सरसी से अनेक साधनाओं की कुल्याएं (नहरें) निकलती हैं। अतः वेदमार्ग अनेक ज्ञान साधना–सरणियों की उत्सभूमि है पर उसकी सामान्य गणिका से तुलना हठयोगप्रदीपिका की अवांछा और उपहास की प्रतीक है। यह सच है कि हठयोग के ग्रन्थ वेदों की अधिक प्रवृद्धि नहीं करते। इसीलिए यहां अवधूत का स्थान वेदवाक्यों से ऊंचा है।

३. साधना की गोपनीयता– कौलसम्प्रदाय की ग्रन्थराशि के अनुसार वेदशास्त्र और पुराण सुप्रकाश्य है पर कुलशास्त्र रहस्याति–रहस्य हैं और अप्रकाश्य हैं। वे अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक गोपनीय हैं। वहां 'गोपयेत् मातृजारवत्' का कठोर शास्त्रीय आदेश है। हठयोग प्रदीपिका में भी योगविद्या अर्थात् हठविद्या को सिद्धि की आकांक्षा रखने वाले योगी के द्वारा परमगोपनीय कहा गया है। वह हठयोग विद्या गुप्त रखने पर वीर्यवती होती है और प्रकाशित करने पर निवीर्य हो जाती है। उसे अन्यत्र हठयोग प्रदीपिका में रत्नकरण्डक की तरह प्रयत्नपूर्वक गोपनीय कहा गया है। उसे स्त्री सूरत की तरह अनिर्वचनीय कहा गया है।

इस तरह कौल सम्प्रदाय के गन्थों और हठयोगप्रदीपिका में इन सम्प्रदायों की धर्मसाधनाएं समान रूप से गोपनीय कही गयी हैं।

४. इसी प्रकार कौलसम्प्रदाय शास्त्रीय ग्रन्थों के बोझिल ज्ञान गौरव का मुखापेक्षी या तदाश्रित नहीं है। हठयोग के आचार्य का भी यही मत है:–तर्क व्याकरणादि अनेक शास्त्रों के जालों में बुद्धि से विमोहित मूर्ख पंडित लोग स्वात्मप्रकाश रूपी स्वानुभूत ज्ञान को कैसे प्रकट कर सकते हैं।'' गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह पृ ३०

हठयोग प्रदीपिका में भी कहा गया है कि केवल वेशभूषा आडम्बर से या केवल शास्त्रों के पाठमात्र से योग साध्य नहीं है।

५. गुरु के प्रति गौरव और श्रद्धा का भाव कौलमार्ग और हठयोग में समान रूप से मान्य है। वहां सिद्धअवधूत ही गुरुपद का सच्चा अधिकारी है। वह सिद्ध अवधूत जिसके हर वचन में वेद निवास करते हैं जिसका हर कदम तीर्थ है और जिसकी हर दृष्टि में कैवल्य निर्वाण या मोक्ष का अस्तित्व है। वह वर्ण और आश्रमधर्म से ऊपर अतिवर्णाश्रमी हैं। वही गुरुओं का गुरु है।

हठयोग प्रदीपिका भी गुरुप्रतीति में विश्वास करती है। वहां सुप्त कुंडिलिनी गुरुप्रसाद से जागृत होती है और तभी सारे योग मार्ग खुल जाते हैं और ग्रन्थियों का भेदन होता है। ह. प्र. १/४८

५/२ के अनुसार प्राणवायु या बिन्दुरूप के मुख का निरोध गुरु के उपदेश से ही होता है वह कोटि कोटि शास्त्रार्थ से भी ज्ञेय नहीं हैं। (५/१०६) हठयोग प्रदीपिका सच्चा गुरु आदिनाथ शिव को मानती है। वह उस गुरु की प्रार्थना करती हुई कहती है–

नमः शिवाय गुरवे नादबिन्दुकलात्मने।
निरंजनपदं याति यतो सिद्धपरायणाः।।

वह प्रारम्भिक मंगलाचरण में श्री नाथगुरु की वन्दना करती हुई राजयोग की सिद्धि के लिये हठयोग के उपदेश की कामना करती है। यही नहीं वही गुरु राजयोग के माहात्म्य को तत्वतः जानता है और उसी के कृपापूर्ण वचनों से ज्ञान, मुक्ति, स्थिरता और सिद्धि प्राप्त होती हैं। सद्‌गुरू की करुणा अनुकम्पा) के बिना विषयवासनाओं का त्याग, तत्वदर्शन और सहजावस्था इनमें से प्रत्येक दुर्लभ्य है। इस तरह इन दोनों सम्प्रदायों में गुरु का महत्व अक्षुण्ण रूप से मान्य है।

**६. विलोम, विपरीतार्थक (विप्रतिपतियुक्त) उक्तियां–** किसी भी सम्प्रदाय का प्रभाव अन्य साम्प्रदायिक साहित्य पर अनुकूल और प्रतिकूल दो रूपों में दृष्टिगत होता है। अनुकूल प्रभाव यथावत् सीधे या साक्षात रूप में पड़ता है, पर प्रतिकूल प्रभाव प्रतिक्रिया के रूप में भी व्यक्त होता है। 'हठयोग–प्रदीपिका उसे कुलीन (सच्चा कौलमार्गी) कहती है जो 'गोमांस' भक्षण करता है और 'अमरवारुणी' पीता है। यहाँ 'गो' का अर्थ जीभ और उसका तालु स्थान में प्रवेश ही गोमांस भक्षण है, और तालुस्थान में स्थित चन्द्र (ब्रह्मरन्ध्र) से प्रच्यवित अमृत ही 'अमरवारूणी' (अमरसुरा) है। ब्रह्मरन्ध्र से जिस अमृत का प्रस्रवण होता है, उसका पालनकर्त्ता ही कुलीन कहा है। उससे भिन्न व्यक्ति कुलघातक कहे गये हैं।[11]

### *7. योग और भोग का ऐक्य*

योग और भोग की एकता कौलसम्प्रदाय और नाथों के योग पंथ में समभाव से दृष्टिगत होती है। 'कुलार्णवतन्त्र' का स्पष्ट कथन है कि 'कुलधर्म में योग भोग के रूप में और भोग योग के रूप में आचरित होता, पातक (पाप) सुकृत की तरह और यह संसार मोक्ष की तरह आचरित होता है।[12] 'रुद्रयामल' तन्त्र के अनुसार

योग और भोग का मेल नहीं है, पर श्रीसुन्दरी के साधकों के लिये योग और भोग या भोग और मोक्ष करस्थ ही है।[13] गोरक्षसिद्धात संग्रह के अनुसार योगी अवधूत के लिये कहा गया है कि उसके एक हाथ में त्याग और दूसरे में भोग का निवास है, पर वह अवधूत त्याग और भोग से अलिप्त (अनासक्त) ही रहता है। उसी अवधूत से योगी कल्याण की कामना करता है– 'सोवधूतोश्रियेस्तु नः'

'हठयोग प्रदीपिका' योग और भोग के परिप्रेक्ष्य में 'ब्रजोली' का वर्णन करती हुई 'बिन्दु' को शिव और 'रज' को शक्ति कहती है। इन दोनों का समरसैकत्व (समरसता का ऐक्य) ही योगी का प्राप्य है। जो योगी इन दोनों (रज–रेतस्) की रक्षा करता है और इनको ऊर्ध्व (ऊपर आज्ञाचक्र और ब्रह्मरन्ध्र की ओर) आकर्षित करता है, वह निर्मत्सर (ऊर्ध्वरेतस्' . पुण्यशाली योगी होता है। इस योग को भोग और मुक्ति में भी दक्षिण (अनुकूल) कहा है।(५/१३४) इसी प्रकार यदि पुरुष के बिन्दु को आकुंचित करके अभ्यास पाटव से यदि साधिका योगिनी अपने 'रज' की रक्षा करती है, तो संयोग में भी वह योगिनी ही कही गयी है।[14]

इस तरह यह योग और भोग की समरसता की ही बात है। कौल सम्प्रदाय में तो शक्ति (साधिका नारी) के बिना साधना अग्रसर नहीं हो सकती – यह निश्चित है, पर क्या हठयोग की साधना में भी साधिका नारी (या शक्ति) का साहचर्य अपेक्षणीय था ? क्या यह वज्रयान और सहजयान के माध्यम से कौलमार्ग का हठयोग पर पड़ा प्रभाव है ? या कुंडलिनी के साहचर्य और उसके संचालन से रज–बिन्दु (रेतस्) के उन्नयन की कोई मनौवैज्ञानिक उदात्तीकरण (Sublimition) की प्रक्रिया है। ये प्रश्न विज्ञों के लिये विवेच्य और विचारणीय है। इस सम्बन्ध में 'हठयोग प्रदीपिका' का वह वचन भी स्मरणीय है, जिसमें बिन्दुपात को मरण और बिन्दु को धारण करने को जीवन कहा गया है और यह भी कहा गया है कि ऐसा करने से (बिन्दुरक्षण से) योगियों के देह (पद्मगन्ध से) सुंगन्धित हो जाते है।[15]

८. कौल सम्प्रदाय भैरवीचक्र की साधना के समय वर्णाश्रम की मान्यता को अस्वीकार करता है। भैरवी चक्र के समय सभी वर्ण द्विज हैं और उसके निवृत्त होने पर सभी वर्ण पृथक् पृथक् हैं। हठयोग या नाथपंथ में भी गुरु (अवधूत) को 'अतिवर्णाश्रमी' अर्थात् वर्णाश्रम व्यवस्था का अतिक्रमण करने वाला कहा गया है और 'हठयोग प्रदीपिका' ने 'नाथ' शब्द की परिभाषा देते हुए उसे पक्षपात विनिर्मुक्त कहा है, जिसका अर्थ टीकाकार के अनुसार 'ब्राह्मणत्वादि वर्णाश्रमादि के अभिमान से मुक्त' बतलाया गया है। इस तरह साधना के उच्चस्तर पर वर्णाश्रम की मान्यता को दोनों ही अस्वीकार करते हैं– कौलसाधक भी और नाथपंथी योगी भी।

९. कौल सम्प्रदाय का अनुयायी साधक ध्यान, मुद्रा और जप के द्वारा शक्ति (कौलमार्ग में– नारी और हठयोग में कुलकुंडलिनी) की सहायता से परमशिव या पराशक्ति से सशरीर साक्षात्कार करता है। तान्त्रिक आगमों के अनुसार पंचमकारों और पंचपवित्रों की तान्त्रिक साधना शरीर के माध्यम से ही अनुष्ठित होती है। यह कौल साधना केरल में दुग्धादिप्रदान के द्वारा, कश्मीर में केवल भावना के द्वारा और कामाख्या आसाम, बंगाल में पंचमकारों के प्रत्यक्ष प्रयोग पर निर्भर थी। कौलसाधक कहीं 'अनुकल्प' वस्तु से, कहीं भावना से और मद्य मांसादि के प्रत्यक्ष प्रयोग से यह साधना करता था। उसकी यह साधना चाहे आध्यात्मिक अर्थ रखती हो, पर उसमें सर्वत्र शरीर के माध्यम का बहिष्कार नहीं है।

नाथपंथ के हठयोगी का भी विश्वास है कि वपु (शरीर) ही उत्पन्न होता है और वहीं प्रलुप्त या विलीन होता है। अजर और शाश्वत आत्मा किसी के द्वारा नहीं जानी जाती है। 'हठयोग प्रदीपिका' शरीर के महत्त्व को प्राथमिक रूप में स्वीकार करती है। यह घट (शरीर) में ही ब्रह्म (परमार्थ) को देखती है। (यद घटे तद ब्रह्माण्डे इदम्)। ससार के ताप से तप्त के लिए यह घटमत की साधना एक आश्रय है और यह योग का कमठ (कच्छप) सम्पूर्ण योग जगत् का आधार है। शरीर के इसी महत्व को मानने के कारण थे। (हठयोग प्रदीपिका १.१०). हठयोग का एक नाम कायायोग भी है।

१०. कौलसम्प्रदाय सिद्धपीठों को चाहे पावन और श्रद्धास्पद भले ही समझता हो, पर वह पौराणिक तीर्थाटन और गंगास्नानादि में विश्वास नहीं करता। कौलों से पूर्व सिद्ध 'सरहपा' ने गंगास्नानादि पर कटाक्ष किये थे। उससे भी पूर्व बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति तो तीर्थाटन, तीर्थस्नानादि को ध्वस्त प्रज्ञों (मारी गयी बुद्धि के लोगो) की जड़ता का चिह्न कह चुके हैं।

'कौलोपनिषद्' के अनुसार "अध्यात्म यह है आचरण न करें, निमयपूर्वक न रहे, नियम मोक्ष का बाधक है।" स्नान एक नित्य नैमित्तिक कर्म है। कौलमत के अनुसार उच्च साधक के लिये यह नियमित स्नान भी वर्जित है।

तीर्थाटन और स्नानादि कृत्य नाथपंथ की साधना में भी अविधेय और बाधक माने जाते हैं। 'अकुलवीरतन्त्र' के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ का भी इस सम्बन्ध में यहीं मत है। अद्वैतज्ञान प्राप्त योगी के लिये यज्ञ, उपवास, पूजा, होम, नित्यनैमित्तिक विधि, तीर्थाटन, धर्म, स्नान सभी अतीत हो जाते हैं। (अकुलीनवीरतन्त्र – ४३–४६)

'हठयोग प्रदीपिका' भी योग बाधक नियमों में तीर्थयात्रा उपवास और प्रातः स्नानादि कृत्यों को उल्लिखित करती है।[3+] इस तरह तीर्थाटन और स्नानादि धर्म में कौलमत की तरह नाथ सम्प्रदाय के साधक भी समान रूप से वर्जना और निषेध मार्ग के अनुयायीं हैं।

नाथमत में इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियों के नाम गंगा, यमुना, सरस्वती रखना और कैलास और केदार के रूप में आज्ञाचक्र और सहस्त्रारचक्र की कल्पना करना भी प्रच्छन्न रूप से इनके मूलरूप का प्रत्याख्यान ही है। वह उनके मूलरूप के प्रति अनास्था का अभिप्रेत रखना ही कहा जायगा। इस तरह इस सम्बन्ध मे कौलमत और नाथ पंथ के मन्तव्य मिलते जुलते ही हैं।

११. कौल सम्प्रदाय की साधना में शरीरस्थ अनेक चक्रों के उल्लेख पाये जाते हैं। मस्स्येन्द्रनाथ के 'कौलज्ञान–निर्णय' के तृतीय पटल में चार, आठ, बारह, सोलह, सौ, सहस्त्र कोटि दलों वाले अनेक चक्रों के उल्लेख पाये जाते हैं। यद्यपि ये यथावत् परवर्ती नाथ पंथ के चक्रों से नहीं मिलते। नाथपंथ के चक्रों के

नाम और दलों की संख्या (४,६,११,१२,१६,२,१०००) भी कौल सम्प्रदाय की मान्यता से पृथक् हैं, पर उनकी कल्पना और प्रेरणा का मूल कौल सम्प्रदाय की साधना ही है। आचार्य डॉ. हजारी प्रसाद जी के अनुसार 'कौलज्ञाननिर्णय' में घट स्थित अनेक चक्रों के उल्लेख हैं, पर कुंडली शब्द का उसमें अभाव है। अतः वे कुंडलिनी योग को नाथपंथियों की साधना का मौलिक अंग मानते हैं। अतः षट्चक्रों के भेदन में कुण्डलिनी के योग को नाथ पंथ की साधना की मौलिकता ही कहा जायगा। ब्रह्माण्ड में जो कुंडलिनी शक्ति है, वही मनुष्य के देह (शरीर) में भी स्थित, पर सुप्त है। उसे जगाकर एकोन्मुख करना नाथपंथ का लक्ष्य है।

इस तरह कौल सम्प्रदाय की साधना पद्धति का नाथ सम्प्रदाय के मूलग्रन्थ हठयोगप्रदीपिका पर गम्भीर प्रभाव पाया जाता है। नाथ सम्प्रदाय में योग सिद्धि का साधन शक्ति (नारी) को नहीं, कुंडलिनी को माना है। नैतिक दृष्टि से नाथपंथ ने कौलाचार के आचारमार्ग से नाथसम्प्रदाय के आचार मार्ग को अलग करके नयी दिशा दी है। अन्त में हम कुंडलिनी को शाम्भवी शक्ति कहने वाली 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार सिद्ध योगी के लक्षण देकर इस अध्ययन का उपसंहार करेंगे–

"दृष्टिस्थिरा यस्य विनैव दृश्यं।
वायुस्थिरो यस्य विना प्रयत्नात्।
चित्तस्थिरं यस्य विनावलम्बं।
स एक योगी स गुरुः स सेव्यः।।" ३४८

–गोविन्दलाल श्रीमाली

# सदंर्भ

1 "कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि तथा वै काचने तृणे।।
न भेदो यस्य लेशोऽपि स कौल: परिकीर्तित:।। भावचूड़ामणि
2 परद्रव्येषु योऽन्धश्च परस्त्रीषु नपुंसक:। परापवादे यो मूक: सर्वथा विजितेंद्रिय: तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र यागे ।।
3 प्राणनिते सावधान बद्धे केवल कुम्भके।
+ उत्पद्यते निरायासात् स्वयमेवोन्मनी यथा।। हठप्रदीपिका 2/26
4+ 'वेदशास्त्र परेशानि सामान्य गणिका इव। एकैव शाम्भवीमुद्रा गुप्ता–कुलवधूरिव।। हठयोग प्रदीपिका 7/35
5+ 'वचने वचने वेदा: तीर्थानि च पदे पदे।
6+ 'हठविद्या परागोप्या, योगिना सिद्धिमिच्छता।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता, निर्वीर्या तु प्रकाशिता। हठयोग प्रदीपिका 1/11
गोपनीयं प्रयत्नेन यथा रत्नकरण्डकम्।
कस्यचिन्नैव वक्तव्यं कुंडलस्त्रीसुरतं यथा। हठयोग 5/9
7+ न शास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धि प्रजायते। न वेशधारणे सिद्धि: कारणं न च तत्कथा।'' हठयोग 3/5
8+ 'वचने वचने वेदास्तीर्थानि च पदे पदे।
दृष्टौ दृष्टौ च कैवल्यं सोऽवधूत: श्रियेस्तुन:।। गो. सि. संग्रह पृ. ।
अतिवर्णाश्रमी साक्षात् गुरुणां गुरु रूच्यते।
न तत्समोऽधिको यास्मिन्, लोकेऽस्त्येव न संशय:। सूतसंहिता (8/459)
9+ प्रणम्य श्रीगुरु नाथं स्वात्मारामेण योगिना।
केवल राजयोगाय हठयोगोपदिश्यते।। (1/1) हठयोग
10+ राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वत:।
ज्ञानभक्तिस्थितिसिद्धि गुरुवाक्येण लभ्यते।। (हठयोग)
11+ (i) गोमांस भक्षयेन्नित्यं पिबेदमर वारुणीम्
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातका:।। (हठयोग 5/67)
(ii) गोशब्देनोविता जिह्वा तत्प्रवेशोहि तालुनि।
गोमांसभक्षणं तच्च महापातक नाशनम्। (हठयोग 5/68)
(iii) जिह्वाप्रवेशसम्भूतवह्निनोत्पादितं खलु।
चन्द्राच्च्यवति य: सार: स स्यादमरवारुणी।। (हठयोग 5/69)
12+ योगो भोगायते सम्यक् पातकं सुकृतायते। मोक्षायते च संसार: कुलधर्मे कुले।
13+ यत्रास्ति योगो नतु तत्र भोगो यत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोग:
श्री सुन्दरी साधक पुंगवानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव। (रुद्रयामल)
14+ 'अथ शुभकरो योग: भोगे मुक्ते च वज्रिण:।' हठयोग 5/134
15+ ' पुंसो बिन्दु समाकुंच्य सम्यगभ्यासपाटवात्।
यदि नारीरजो रक्षेत् संयोगे चापि योगिनी।। हठयोग 5/136
16+ 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।
सुगन्धो योगिना देहे जायते बिन्दुधारणात्।। हठयोग 5/121
17+ प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातय:।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वेवर्णा: पृथक् पृथक्।। कुलतन्त्र
18+ वपुरुत्पद्यते लोके वपुरेव विलुप्यते। न कश्चिद् जायते ह्यात्माविरजोहि परो ध्रुव:। हठयोग 1/13
19+ संसारतापतप्तानां नाथोयोऽयं घटोमत:।
अशेषयोगजगतामाधार: कमठो हठ:।। 1/10 हठयोग
20+ वर्जयेद्दुर्जन प्रीति वह्नि स्त्रीपथि सेवनम्।
प्रातस्नानोपवासादि कायक्लेशादिकं तथा। हठयोग 1/50

# संदर्भ


१ शर्मा, मनीषा, गोरखबानी परम्परा और काव्यत्व. पृ. १३

२ राघव, रांघेय, गोरखनाथ और उनका युग. पृ. ४३, द्विवेदी. हजारी प्रसाद, नाथ सिद्धों की बानियां. पृ ४–२०; शर्मा, पूर्वो. पृ. १७–२५

३ शर्मा, पूर्वो. पृ. १४; द्विवेदी. पूर्वो. पृ. ७

४ चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तर भारत की संत परम्परा।

५ लोरेन्जन, डेविड एन, द कापालिकज़ एण्ड कालमुख्ज. पृ. १४

६ शर्मा, पूर्वो, पृ. १४

७ शर्मा, पद्मजा, महाराजा मानसिंह ऑव जोधपुर एण्ड हिज टाईम्स. पृ १५६

८ हकीकत बही, जोधपुर {वि. सं.१८५६–६०} सं ८, पृ ४५२

९ हकीकत बही, जोधपुर वि. सं. १८७१–८०, सं १० पृ. ८८; शर्मा, पदमजा, पूर्वो, पृ. १६५, भाटी नारायण सिंह, महाराजा मानसिंह री ख्यात. पृ. ३८

१० दाधीच, रामप्रसाद, महाराजा मानसिंह {जोधपुर} व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. ७१–७७, भाटी, नारायण सिंह, पूर्वो, पृ. २९

११ बही, नाथ आसनों की, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश संग्रह, जोधपुर।

१२ शर्मा, पद्मजा, पूर्वो., पृ. १६३; रेऊ, विश्वेश्वरनाथ, मारवाड़ का इतिहास, खण्ड–२, पृ. ४१७, ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड–२, पृ. ८१८; भाटी, नारायण सिंह, पूर्वो., पृ. १०२–१०४

१३ वही, पृ. १६४

१४ वही

१५ भण्डारकर, आर. जी. वैष्णव, शैव एवं अन्य धर्म, पृ. १७७

१६ देवी प्रसाद, मुंशी. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज मारवाड़, भाग ३, पृ. २४३, दाधीच, पूर्वो., पृ. २२०

१७ द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, पृ. ११

१८ द्विवेदी, पूर्वो. नाथ सम्प्रदाय, पृ. १०

१९ देखें, नाथ आसन एवं ग्रंथों की हस्तलिखित बही, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर

२० ब्रिग्स, वेस्टन जॉर्ज, गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज, पृ. ६२–७५; शर्मा, मनीषा. पूर्वो., पृ. ३०

२१ वही, पृ. ६४, द्विवेदी, पूर्वो., पृ. १६१

२२ ब्रिग्स, पूर्वो., पृ. ७०

# मेवाड़ में नाथ सम्प्रदाय के आसन और उनका प्रभाव

—डॉ. ब्रजमोहन जावलिया

महाभारत शान्तिपर्व में उल्लिखित योगदर्शन की परम्परा में उद्भूत योगमत के अनुयायी हिन्दू तान्त्रिक और बौद्ध सम्प्रदाय के तान्त्रिक आज से लगभग बारह–तेरह सौ वर्ष पूर्व वाममार्ग की ओर आकर्षित होकर एक मत होने लगे। बिहार में नालन्दा और विक्रमशिला के बौद्ध विश्वविद्यालय बौद्ध सिद्धों के केन्द्र थे। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में तन्त्रों के गुह्य ज्ञान की गोपनीयता को दूर कर मन्त्रयान, तन्त्रयान और वज्रयान का निर्बन्ध अध्ययन होने लगा। तान्त्रिक देवताओं के मंदिरों का निर्माण होने लगा। तन्त्रों में विहित सांकेतिक भाषा में भ्रष्ट अर्थ लगाये गये और जन भाषा या लोक भाषाओं में उनका प्रचार सामान्य जनता में किया जाने लगा। इससे पंच मकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन) का दूषित प्रचार होने लगा। देश में दुराचार फैलने लगा। विभ्निन प्रकार के पंथों ने इससे जन्म लिया। मारण, मोहन, विभिन्न प्रकार उच्चाटन, वशीकरणादि घोर षटकर्मों की बाढ आने लगी जिसमें तत्कालीन सिद्ध–साधक बह गये। इस प्रवृत्ति काज जन्म मूलत बिहार और आसाम में हुआ और उसका प्रभाव चौरासी सिद्धों की साधना पर भी पडा। ब्राह्मणों का उच्चादर्श इन पर अप्रभावी हो गया।

इन सिद्धों में सभी वर्णों के लोग सम्मिलित थे। ये सिद्ध मद्यप और परस्त्रीगामी हो गये। किसी महिला को महामुद्रा का माध्यम बनाकर उसकी सहायता से वामाचारी उपचार द्वारा यक्षिणी, डाकिनी, कर्णपिशाचनी आदि सिद्धियों का चमत्कार बताते थे। ऐसे सिद्ध तांत्रिक अब घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे। इन कदाचारों के कारण सिद्धों और साधकों को अस्तप्रायः यौगिक क्रियाओं का उद्धार करने के लिए उस युग में नाथ सम्प्रदाय की सृष्टि हुई। इन विश्वविद्यालयों में ही ऐसे कई सिद्ध आचार्य भी थे जो निष्काम उपासक भी थे जो निर्गुण निराकार में ध्यान लगाकर शून्य में लीन हो जाते थे। कुछ काल तक वे निष्प्रभावी अवश्य हो गये पर उनके शिष्यों में अनेक विद्वान् और शक्तिशाली शिष्य हुए जिन्होंने अपनी यौगिक क्रियाओं में लीन रहकर कदाचार की इस बढती हुई बाढ़ पर पर बंधन लगाये। उनमें दीपंकर ज्ञान जैसे बौद्ध भिक्षु, सिद्ध तिलोपा, नारोपा, मीनपा, जालंधरपा, जालंधर के शिष्य और शिष्य मीनपा के पुत्र मत्स्येन्द्रनाथ, मत्स्येन्द्र के शिष्य गोरक्षनाथ प्रमुख थे।

नाथ सम्प्रदाय में गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिणनाथ, गहिनी नाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचंदनाथ, ये नवनाथ प्रमुख माने गये है। आदिनाथ या स्वयं भगवान शिव शंकर इस संप्रदाय के संस्थापक कहे जाते हैं। आगमों में आदिष्ट योगसाधन करने के कारण इन्हें शैव सम्प्रदाय के रूप में भी मान्यता दी जाती है। पर शैवम्प्रदायानुगत शिवोपासना, लिंगार्चन या अन्य सम्प्रदायगत अंगों का निर्वाह ये नहीं करते। हिंगलाज के दर्शनों में अभिरुचि के कारण नाथ सम्प्रदाय का शाक्तों से भी संबंध बताया जाता है।

नाथ योगी भस्म धारण करते हैं – ऐसा वे यौगिक क्रियाओं में नासादि छिद्रों से वायु के अवरोध के समान ही रोमकूपों द्वारा शरीर में प्रवेश करने वाली वायु के प्रवेश में अवरोधक मान कर भस्म रमाते हैं। प्राणायाम की क्रिया में साधक यह अत्यन्त महत्वपूर्ण युक्ति मानी जाती है।

नाथ संप्रदाय से संबंधित योगियों का योग साधन पातंजल विधि का ही विकसित रूप कहा जाता है। नाथपंथ की योग क्रिया

पांतजल योग साधन विधि के दार्शनिक अंश को छोडकर उसमें हठयोग को जोड़ कर संपन्न की गयी है। नाथ पंथ में ऊर्ध्वरेतस् होना आवश्यक माना गया है। मद्य मांसादि सभी तामसिक भोजनों का इसमें सर्वांशत निषेध है। इस पंथ के योगी बालब्रह्मचारी होते हैं.। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पंथ चौरासी सिद्धों के तान्त्रिक वज्रयान की सात्विक रूप में परिणित होता है। कतिपय विद्वान् पाशुपत संप्रदाय या उसकी शाखा लकुलीश संप्रदाय से इसे सम्बद्ध मानते है – पर ऐसा नहीं है। दोनों की साधना पद्धति में पर्याप्त अंतर है।

नाथ पंथ का तात्विक सिद्धान्त है कि परमात्मा 'केवल' है। इस परमात्मा तक पहुंचना मोक्ष कहलाता है। जीव का व्यावहारिक दृष्टि से सम्मीलन ही मोक्ष या योग है। इसी जीवन में नाथ को मोक्ष की अनुभूति हो जाये – यही इस पंथ का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रथम सोपान है काया की साधना। अन्यों की भांति ये न तो काया को साधना में शत्रु समझकर अनेक प्रकार के कष्ट देता है और विषय वासनाओं में लिप्त होकर लगाम ही छोड़ देता है, अपितु काया को परमात्मा का आवास मानकर उसकी उपयुक्त साधना करता है। जिसकी सहायता से वह इसी जीवन में मोक्षानुभूति कर लेता है, जन्म, मरण पर पूर्ण अधिकार कर लेता है, जरामरण, व्याधि और काल पर विजय प्राप्त कर लेता है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह सर्वप्रथम काया का शोधन करता है। यम नियमादि के पालन के साथ हठयोग के षट्कर्म (नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालभीति और त्राटक) करता है। नाथपंथियों ने घेरण्ड ऋषि प्रणीत घेरण्ड संहिता की सात्विक प्रणाली का उद्धार कर इस कार्य के लिये अपनाया है। शुद्ध हठयोग और राजयोग की साधना ही इस मत में अनुशासित है। योगासन, नाडीज्ञान, षट्चक्रनिरूपण और प्राणायाम द्वारा समाधि की प्राप्ति ही इसके मुख्य अंग हैं। शारीरिक पुष्टि और पंचमहाभूतों पर विजय की सिद्धि के लिये रस विद्या का भी इस मत में विशेष स्थान है।[1]

घेरण्ड संहिता के अतिरिक्त शिवसंहिता, गोरखनाथ कृत हठयोग, चतुरशीत्यासन, योग–चिन्तामणि, योग–महिमा, योग–मार्तण्ड, योग –सिद्धान पद्धति जैसे हठयोग से संबंधित ग्रंथों का भी इनमें विशेष प्रचार रहा है। संस्कृत और देशज भाषाओं में और भी अनेक ग्रंथ मिलते हैं।

राजस्थान में प्रत्येक गाँव में नाथ पंथ के आसन स्थापित रहे हैं जो किसी एक प्रमुख आसन के अधीन माने जाते थे। ये नाथ 'आयस' नाम से जाने जाते हैं। ये आसन 'धूणी' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। नोहर के पास गोरखटीला, भर्तृहरि के वैराग्य पंथ का केन्द्र राताडूंगा, माननाथी पंथ के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित महामंदिर, जैसलमेर में योगी रतननाथ का मठ, जालोर दुर्ग में जालन्धरनाथ का मंदिर, पोकरण के योगी बालनाथ, रूपाहेली मेवाड़ में रूपनाथ आदि के स्थानों की प्रर्याप्त प्रसिद्धि रही है।[2]

राजस्थान में स्थान–स्थान पर योगिनियों के मंदिर–मठ भी रहे हैं। हिन्दू ही नहीं जैन सम्प्रदाय पर भी योगिनियों का पूरा प्रभाव था। योगिनियां ६४ ही प्रसिद्ध रही हैं पर विभिन्न मतों के प्रभाव से इनके सैकड़ों नाम साहित्य में मिलते हैं। इनकी संख्या ६४ कोष्ठकों में ही बद्ध होकर रह जाती है। राजस्थान में योगिनियों के प्रमुख स्थान अजमेर और योगिनीपुर (जावर) रहे हैं। दिल्ली भी योगिनियों का प्रमुख स्थान होने के कारण कभी योगिनि पुर कहा जाता था। ऐसी मान्यता है कि योगिनिमत के संस्थापक योगी मत्स्येन्द्रनाथ ही रहे हैं जिन्होंने कामरूप, आसाम में जाकर स्त्रियों में योग की शिक्षा का प्रसार किया था। वहीं से यह मत समस्त उत्तरी भारत में फैला।

मेवाड़ में भी अन्य प्रांतों की भांति नाथ संम्प्रदाय की स्थापना ९–१० वीं शताब्दी में ही हो गयी प्रतीत होती है। पर इनका विशेष प्रभाव महाराणा कुम्भकरण, रायमल आदि के काल में १५ वीं शताब्दी में हुआ। इस काल में नाथपंथ के आसनों को मिले ताम्रपत्र मिलते हैं। मेवाड़ में नाथ आयसों को इनकी योगसिद्धियों के कारण प्रमुख रूप से डोहलियां दी गई। गाँव–गाँव में नाथों ने आसन स्थापित कर हठयोग का प्रचार इस युग में किया होगा इसमें संदेह नहीं। अपने उच्च चरित्र और लोकसेवा के कारण

भी इनका जनता में सदा मान रहा है। ये जोगेश्वर के नाम से भी जाने जाते हैं। महाराणा शंभूसिंह ने मेवाड़ में नाथों के आसनों (स्थानो) और राज्य की ओर से उनको प्रदत्त माफी, जागीर, डोहलियों आदि का विवरण तैयार कराया था। इस विवरणात्मक बहिडे के अनुसार, जो राजकीय अभिलेखागार, उदयपुर में सुरक्षित हैं, निम्नलिखित प्रमुख आसन अवस्थित थे और उनके नीचे प्रदर्शित आसन इन आसनों के अंतर्गत थे।

प्रमुख आसन – लादूवास – कुल अनुदानित भूमि ६४००० बीघा उपत २५००

स्थान जहां आसन और डोहलियां है–

मेडोल्या, सवाणा, बाण्या हाटडी, अरसीपुर, खारड़ा, गाजूषा, पुर में पातोला का आसण, जूमपुरा (आसण), कलाल खेड़ी (आसण), काबरच (आसण), पलाणा (आसण), जालरा (आसण), करणावास (आसण), चावंड्या (आसण), जालसा (आसण), तोलास (आसण), उलेजा आमली, करेडा, थांवला, बावलास, रावल्या, चावंड, तलोली, सीदू, टोकरा, हीरमंड, मोडी, देलास, कटार, वाकली, सोडास, बीजोल्या, भादू, देवरचा, खेमाणा, इन सभी में आसण स्थापित हैं और डोहलिया हैं। उदयपुर में दिल्ली दरवाजे के बाहर इनकी बाडी और आयड और सोभागपुरा में भी कृषि योग्य भूमि है।

ग्राम आक्या – उपत ७००

भरभड्या, अदरसला, राजनगर, रातड्यावास, कुवा खेड़ा, केसूंदा, कुंडला, लासूर, अछारी, जीरण, बडोली, बागरेडा, बुधपुरो में आसण डोलिया, नाही और सोभागपुरा में डोलियां। पोटला और कुकडेसर में आसण और डोलियां।

आसण आमली – डोली बीघा १२५

आमली और मउवा में डोलिया। ग्राम लोट, सामरी में आसण और कृषि भूमि।

आसण कटार – कटार में ३०० बीघा कृषि भूमि खानोला के आसण के अंतर्गत डोली।

भिखारीनाथजी का आसण, उदयपुर – ३०० बीघा भूमि – कुए, तलाई, ग्राम जीवार में, जेनगर में, सारण के आसण में डोली, ग्राम बोर के आसण में डोली।

चित्तौड़ – गउमुख का आसन – आयस, भूमि ६७ बीघा

आसण कोटडा – का आयस रावल उपाधिधारी – ७०० बीघा भूमि

आसण रूपपुरा – में सम्पूर्ण रूपपुरा, बिजैपरु खाखर माला में डोलिया।

आसण बांसे – ग्राम बांसा, मदराडा, अगरत्या में ११४ बीघा डोलिया।

खेडली आसण – खेडली और ओजयाडा में डोलीया आयस रसोडे में थापना (नवरात्रि) पर थापना पर बैठता था।

आसण भोयली – उपत ३०१

आसण फागणवालो – उपत २५०

आसण आमेट – उपत ४०१

भागक, देवली, बाघपुरा, खडेल, अरलक्या में डोलिया – १०८ बीघा।

आसण आसींद – उपत ४०१

आसण मंडी – उपत ६०१

आयस मदारा – डोली बीघा २१० बीघा उपत २०१

आयस रुद्रपुरा – संपूर्ण ग्राम – डोली ७०१ बीघा।

इस डोली का ताम्रपत्र महाराणा जगतसिंह द्वारा प्रदत्त है। ग्राम सिवनगर में ३५ बीघा डोली।

आसण दातडा – रावल की उपाधि। दांडडा (खुर्द, खेलडली, ईटाली, पूराहेली, जालपुरा, कूकडया में १५७ बीघा डोली – १६ कूड़ा और १२०० रू की उपत थी।

आसण हुरडा – रावल उपाधि – हुरडा, सुल्तानपुरा में ७२० बीघा डोली उपत मात्र ३७१ रु.

आसण चेता – ग्राम चेता में ३०० बीघा डोहली ८ कूड़ा उपत ३०० रु रावल उपाधि।

आसण पडयार – पडयार और कणेश में डोली

आसण रचपुरी – रावल की उपाधि – रचपुरी और रासमी में डोलिया। उपत ४६०

आसण मटया – रावल – ग्राम मटया, बणोल, कारोही में डोलिया – उपत ११११ रु.

आसण नाहरमगरा – रावल – यह धूणी कहाता है। सीध्याखेडी और करगेट में ३० बीघा डोहली

आसण खारया – खारया, राजनगर, खाखला गांवों में ३५ बीघा डोली, उपत ७६

आसण ठीकरवास – रावल – ठीकरवास, बराड, केसरी, मय्याला, रासमी गांवों में १२५ बीघा डोहली चार कूड़ा और उपत २००

आसण पालरा – रावल – पालरा, मेनूण्या खेड़ा में ७५ बीघा डोहली – उपत २००

आसण आंजणा – आंजणा और नायला में डोलिया उपत १२२५ – रावल उपाधि

आसण रेलमगरा – रेलमगरा, खेजड़ी, पालड़ी में डोहलिया – उपत

आसण सोपुरी – खारडा और बोराडा में डोहलिया

आसण सेमारी – डोली बीघा १५० कूड़ा ४ उपत १०० रु.

आसण कमोल – कमोल – डोहली २७ बीघा उपत १००

आसण चांपाखेड़ी – कुवाल्या, भूताला में डोहलिया

आसण मंडी – मांडलगढ़ – उपाधि रावल, मंडी, तिरोली, मांडलनगर में ३७० बीघा डोहली – ९ कूड़ा, उपत २९० ग्राम मंडी (मांडलगढ़) पूरा सासणीक है। इसमें से महाराणा जवानसिंहजी ने सं. १८९१ में २१६ बीघा भूमि (पीवल बीघा १०३) और राखड़ बीघा ११३ तथा उपत ३०३ का ताम्रपत्र उक्त आसण को दिया था। पलास्या, जेमली, दुवास के आयसों को डोली दी गयी।

आसण नांदेसमा – के आयस को नादेसमा में १६ बीघा भूमि डोहली रूप में दी गयी। इस भूमि को किसान बोते थे अतः सरकार बराड वसूल करती रही है। खेड़ी, फलास्या, बड़वाई, चेनपुरा, लसाणी के आयसों को डोहलिया

आसण चोली – डोहली २५ बीघा, उपत २०० रु. रामपुरा डोहली बीघा ८ कूड़ा ४

आसण रूपाहेली – रावल उपाधि – ग्राम रूपाहेली में डोहली बीघा ४२५ कूड़ा ५ आबाराजवाल्या में ३ बीघा, गांव दादूथल में ५१ बीघा कुल ४७६ बीघा भूमि डोहली रूप में प्रदत्त उपत १२०

आसण पुमाणा – डोहली

आसण गुणावल – गुणावल में डोहली बीघा ५५ उपत ४०

आसण ओडा – रावल – ओडा में डोली बीघा २५० जिसमें पीवल २५ और राखड़ २२५

आसण घनाणा – डोली

आसण अमरगढ़ – डोली

आसण हुरडा – हुरडा, तसवासा, बावलास, सुल्तानपुरा में डोलियों हुरडा में २०० बीघा

आसण बोराणा – बोराणा, कलाल खेड़ी भटेवर, रामपुरा में १७५ बीघा डोहली उपत २८७ रु

आसण – गोल्यावड़ी, देवल्या, दांतड़ा (दूजा), बडगांव, काण्याखेड़ा, झाडोल, बसी, खेराणा, कालागुण ग्राम में जिन्हें डोहली के रूप में भूमि दी गयी है।

आसण कुरज – कुरज में बीघा १८६ उपत २८१ १२ रु. सरकार लेती है।

आसण कालोड़ा – में डोली

आसण अलगवास – रावल उपाधि – डोहली बीघा ३५० भटेवर कोरीथल में आयसों को डोहली दी गयी।

आसण बलेव – डोहली बीघा १५० कूड़े ४

आसण बामण्या – बामण्या, काकरवा, तोलान्द्री, ताल, भूताखेता में डोहलिया

आसण ब्रह्मघाट (पुर) – डोहली ५०० बीघा उपत २०० आसाण कारोही – पागल उपाधि – डोहली ८५ बीघा

आसण जीवार – जीवार में १५० बीघा और जेनगर में २० बीघा डोहली उपत २५० रु.

आसण बागड (मगरा मेरवाडा) – डोहली ८० बीघा उपत १००

आसण गुदाली – डोहली बीघा ५ उपत ३१ रु.

आसण बणाई – बणाई में ५२ बीघा, सादड़ा में ७ बीघा डोहली। बणाई में डोहली का ताम्रपत्र महाराणा रायमलजी ने सं. १४४५ में दिया था।

आसण गणगोर घाट (पुर) – डोहली १५ बीघा पुर में उपत ५० इनके अतिरिक्त रेणवास, भाटखेड़ा, थाणा, सुराज, अडाणा, भीटोड़ा, आमदला, गुमण, लड़की, जामोली, कूंडया, चडाणा, कुचोली, केलगुदाली, परावली, ईटाली, कुरावडा, गराडया, भेवडया, गोगाथला, जूमपुरा, सीगोली, देढवास, मेण्या, चाखेड, नीबाडा, डींडोली, केली, मरडावदर में भी आसण है और आयस रहते रहे हैं। इन आसनों को भी डोहली के रूप में भूमि दी गयी थी।[3]

इन आसनों को प्रदत्त डोहलिओं के साथ कुछ शर्तें अवश्य रहीं। उनमें प्रमुख शर्तें हैं– आयस का अपने आसन पर सदा उपस्थित रहना। स्थानीय अधिकारी की स्वीकृति पर ही आसन से अनुपस्थित रहना। चेला बनाते समय या उत्तराधिकारी बनाते समय

सरकार से अनुमति लेना। आयस की मृत्यु हो जाने पर उत्तराधिकारी की नियुक्ति सरकार करती थी। कभी--कभी स्वीकृति प्राप्त होने में अत्यधिक विलंब हो जाता था।

कभी–कभी अनधिकृत आयस द्वारा दूसरों के आसनों पर अधिकार के मामले भी सरकार में आते थे जिनका निर्णय सरकार करती थी।

महाराणा जवानासिंह के काल में सभी आसनों की डोहलियों से संबंधित ताम्रपत्रों की जांच की गयी और उनमें से कतिपय जाली सिद्ध हुए। इसी प्रकार इन आसनों के आयस की भी जांच पड़ताल होती थी। आयसों को राज्य द्वारा महन्ताई देकर जमात में भीख वसूल करने का परवाना दिया जाता था। लादूवास के महन्त द्वारा जीर्ण हुए ऐसे परवाने के नवीनीकरण की दरख्वास्त से यह जानकारी मिलती है।[४]

हठयोग के जिन ग्रंथों का उल्लेख पूर्व में किया गया है उनके आधार पर राजस्थानी भाषा में भी ग्रंथ रचे गये। इनमें वर्णित क्रियायों के आधार पर ये योगी नाथ अपने आसनों में निवास करते हुए साधना करते थे। ऐसी दो रचनाएँ राजस्थानी की मुझे प्राप्त हुई हैं जिनमें हठयोग में आसनों की विधि और उनसे होने वाले लाभों की जानकारी भी मिलती है। ये ग्रंथ सं. १८०१ में प्रतिलिपित है।[५]

प्रथम ग्रंथ का नाम इसकी समाप्ति पर 'योग आसन ग्रंथ' मिलता हैं। इसमें प्रथम ३६ आसनों की विधियाँ अप्राप्त हैं। इसमें आसनों का नामकरण नाथपंथ के सिद्धों के आधार पर प्रमुख रूप से किया गया है–यथा दत्त दिगंबर आसण, गोरख आसण, चरपट चौक आसन, ग्वालीपाव आसन, नागीपाव आसन, हालीपाव आसन, मींडकीपाव आसन, जालंधरीपाव आसन, भरथरी आसन, नागार्जुनासन, कान्हीपाव आसन। कुछेक आसन योगसिद्ध स्त्रियों के नाम पर रखे गये हैं– यथा मैणावती आसन, अंजनी आसन, जैवंतीआसन, सावित्री आसन, सीता आसन, लक्ष्मी आसन। ऋषि मुनियों और देवताओं के नाम पर भी आसनों के नाम रखे गये हैं – यथा धनंतर आसन, गरुड आसन, शुकासन, नारद आसन, बृहस्पति आसन, विष्णु आसन, कपिल आसन, गणेशासन, पार्वती आसन, स्वयम्भू आसन,

सनकादिक आसन, दुर्वासा आसन, काकचंड आसन। कुछ अन्य नाम जो लोक अत्यधिक प्रसिद्ध रहे हैं – यथा सिद्ध समाधि आसन, सिद्धासन, चित्रासन, विचित्रासन, स्वस्तोत्री आसन, महामुद्रा आसन, धर्मासन, स्तुति आसन, कर्कटी आसन और पद्मासन।

द्वितीय ग्रंथ शंभूप्रोक्त आसन है। इस ग्रंथ में प्राप्त कतिपय आसनों के नाम है – स्वस्तिकासन, लधुस्वस्तिकासन, वीरासन, वीरबंध आसन, नेती आसन, टेरी आसन, श्याम आसन, अग्निकुंडासन, पद्मासन, पद्मध्यान आसन, पद्मसंपुटासन, पद्मशंख आसन, सूरसिद्ध आसन, तस्करबंध आसन, लील आसन, विश्राम आसन, कूर्म आसन आदि।

इन रचनाओं में आसनों के स्वास्थ्य संबंधी गुणों पर प्रकाश डाला गया है। दोनों रचनाओं के कपितय आसनों के नाम साम्य और लक्षण साम्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों ही रचनाओं में भाषा साम्य को देखते हुए यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि इन का भाषान्तर करने वाला कोई भी एक ही व्यक्ति है जिसका समय सं. १८०१ प्रतिलिपि काल से पर्याप्त काल पूर्व का रहा होगा। प्रतिलिपिकर्त्ता के रूप में किन्हीं रघुनाथ दास का नाम मिलता है।

भाषा और लक्षणों के नमूनों के रूप में एक उदाहरण प्रस्तुत हैं –

***1 दत्त दिगंबर आसण–***

जीवणो पग उचाय डांई जंघ परि करि डाई पाखती आणि गो ३ पग शली जोडि मिलावै। पगां की पगथली वारली कोर धरती टेकै। आडैवाई त्रिव पग राखै, कूलां उडया अंतर मूंड हाथ उनमान राखै। हाथा सूं पगथली लांक पावडै शरीर सम राखै द्रिष्टि त्रिकुटी

(इति दिगंबर आसण) ३८

*गोरख आसण–*

पगां की पगथली डाई जीमणा दिशि सनमुखि करि गोडा दुहू का माथा मिलावै। गोडा की माहिली आंखि माहिली गुल्फ धरती लगाई पग आडैवाई राखै। मूल द्वार धरती टेक बैसे। हाथ गोडा परि राखि द्रिष्टि नासाग्र।

(इति गोरख आसण)

*चरपट चौक आसण –*

पगथली दोऊ संपुट करि आगा नैं जेत्ता पसारया जाय तेता पसारै। गोडा धरती लगावै। हाथि गोडा की मांहिली आंखि परि राखि नीचां दांबै द्रिष्टित्रिकुटी राखै।

(इति चरपट चौक आसन)

2 *वीरासन*

डावां गोडा की मांहिली आंखि परि जीमाणा पग को वारिलो गुल्फ राखै। डावां पग का मांहिला गुल्फ परि जीमणां गोडा की वारिली आंखि लगावै। जीमणों हाथ जीमणा गोडा परि लगाई राखै। दृष्टि भ्रू राखै।

(इति वीरासन)

*वीरबंध आसन*

वीर आसन करि डावो पग जीमणा गोडा तवां सूं काटि जीमणा गो़डा परि राखै। हाथा। की हथेली जीमणी हथेली उपरि करि उपरातवी मेढ परि सुलटी करि राखै। दृष्टि नासाग्रं।

(इति वीरबंध आसन)

*अथ नेति -आसण*

वीर आसण करि डावा हाथ सूं जीमणा की जीमणां सूं डावां की भुजा कुहण्या लगती पाकड़ै। हाथ आगां नै। अधर नासिका की सूंधि राखै। दृष्टि नासाग्ग्रा। हाथां सहत मथाणां जूं आडैवाइ सरीर मथै। पवन मथ्यो जाइ।

आण को गुण –

इस आण बैसि तीन विरियां प्रभात मध्यान्ह संध्या शरीर मथै। निति प्रति अभ्यास करै। सनै सनै चढता चढतो अभ्यास करै तो निरोग होई। क्षुधा न होइ तो क्षुधा होई। अजीरण जाई। पेट में फीहो गोलो होय सु जाय और रोग नाश होय। रोग न होय तो तो सुद्ध वाय इह आरंभ करै तो शरीर निर्मल होय, नाडी सुध होय। और विधि हाथां की अथवा हाथां सूं भुजा पकड़ि तथा हाथ आडैवाइ पसरि सरीर मथै।

देलवाड़ा की हवेली
दयानन्द मार्ग, उदयपुर

## संदर्भ

1 *हिन्दुत्व – रामदास गौड़*
2 *मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन – डॉ. पेमाराम – पृ. 19–20*
3 *महाराणा शंभुसिंह के काल में तैयार बहीड़ा (रा. पु. विभाग) पत्र सं. 288–320*
4 *रजिस्टर सीगा षटदर्शन राजश्री महकमा खास सेक्शन नं. 4 (पंचसाली राज. पुरालेख विभाग, उदयपुर)*
5 *पोथीखाना – जयपुर*

## बीकानेर क्षेत्र में नाथ सम्प्रदाय के मंदिर - मठ

जीवन राम मीणा

भारतवर्ष अनादिकाल से ऋषि मुनियों, सन्त महात्माओं, अवधूतों, दार्शनिकों व योगियों का देश रहा है। इनमें नाथ पंथ भी अपना विशेष स्थान रखता है। सम्पूर्ण भारत में नाथ पंथियों के कुल २८ स्थान प्रमुख माने जाते हैं जिनमें इनके मठ अथवा अखाड़े हैं। राजस्थान में अंगना, लादुवास–उदयपुर, हिंगुआ–जयपुर, महामंदिर–जोधपुर और नोहर–श्रीगंगानगर की विशेष मान्यता है। यह सर्वविदित है कि इस मत के आदिगुरु गोरखनाथजी थे। गोरखनाथ मच्छन्दरनाथ के चेले थे और इनके एक गुरु भाई जालन्धरनाथजी भी थे।

बीकानेर क्षेत्र के प्रसिद्ध सिद्ध जाम्भोजी महाराज और जसनाथजी ने भी गोरखनाथ जी को अपना मानस गुरु माना है। उनकी बाणी के अधिकतर सबद नाथ योगियों के संदर्भ में कहे गये हैं। यहां की अनेक लोक कथाओं में भी कथा नायक को गोरखनाथ जी के दर्शन देने का उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि इसी क्षेत्र के गोगापीर को भी उन्होंने दर्शन दिये थे।

राजस्थान में इस पंथ के व्यापक एवं विशिष्ट प्रभाव का उल्लेख मर्दुमशुमारी के इस उल्लेख से जाना जा सकता है कि

राजपूताने में जोधपुर मारवाड़ जिसमें जैसलमेर भी शामिल हैं, के चांपावत और कूंपावत सरदार इनसे फैज पाए हुए हैं, जयपुर वालों के भी पहले ये ही गुरु थे जयपुर के अलावा नाथावत सरदार भी जोगियों से फैज पाये हुए थे जो डेरे, झंडे और घोड़ों के कांधोटे भगवा रखते हैं।

बीकानेर के राठौड़ वंश पर भी ये प्रभावशाली रहे हैं। इसी प्रभाव के कारण नोहरमढ़ की बीकानेर की पूर्व उत्तर भारत में विशेष मान्यता रही है।

बीकानेर क्षेत्र में इस का प्राचीन स्थल नाथ सागर माना जाता है। यह स्थान बीकानेर के बेनीसर बारी के बाहर नत्थूसर गेट से श्री रामसर जाने वाली सड़क के बांयी और जैतलाई के निकट है। वर्तमान में यह स्थल एक शिव मंदिर के रूप में है। इसके पुरावशेषों को देखने पर लगता है कि यह संभवतः पन्द्रहवीं से सोहलवीं शताब्दी के मध्य का निर्माण है। लगभग ३० फुट ऊंचे चबूतरे पर बने इस मन्दिर में कई भूमिगत स्थान हैं जिनके रास्ते आज बन्द हैं। मंदिर में एक गर्भगृह भी है जहां चामुण्डा की मूर्ति स्थापित है। साथ ही ऊपरी सिरे पर शिवाष्टक प्रतीक पुनर्स्थापित किया गया प्रतीत होता है।

बीकानेर राजवंश के महाराजा गजसिंह ने इस मंदिर का पुनरुद्धार करवाया था अतः इस मंदिर का नामकरण उन्हीं के नाम रूप में गजपतेश्वर महादेव भी प्रसिद्ध रहा है। महाराजा गजसिंह का राज्य काल सन् १७४६ से लेकर १७८७ तक रहा है। इस काल का एक भित्ति चित्र एक अन्य नाथपंथी के साथ महाराज गजसिंह द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करने का एक बगीची की भित्ति पर उपलब्ध है जिसमें शिवनाथजी महाराज उन्हें आशीष प्रदान कर रहे हैं। इस काल के अन्य निर्माणों में महाराज द्वारा निर्मित करवायी गयी बगीची, जो उनके नाम से गजसिंह जी की बगीची के रूप में जानी जाती है उल्लेखनीय है कि वह स्थान भी नाथ पंथियों की साधना स्थली रहा है।

इसी क्षेत्र में प्रसिद्ध नाथपंथी साधुओं का एक स्थान नवल नाथ जी का मठ है। यह स्थान ईदगाह बारी के बाहर है। नवलनाथ

जी को बीकानेर के महाराजा श्री गंगासिंहजी जोधपुर से लाये थे। उनको सियाराम जी की गुफा में ठहराया गया था और उस जमाने में २५० रु. प्रतिमाह निर्वाह राशि तय की थी। ये रस–रसायन के प्रसिद्ध ज्ञाता थे, इन्होंने मोर की पंख से ताम्बा निकालकर उसकी अंगूठी बनाकर महाराज को दी थी– ऐसी अंगूठी पहनने वालों को विष का प्रभाव नहीं होता है। वर्तमान में यह अच्छा मठ है।

बीकानेर के गंगाशहर में शालूनाथ जी का मठ है जो शालूनाथजी का धोरा कहलाता है। ये अपने युग के चमत्कारी महात्मा रहे हैं। ये कुछ गांवों में शिक्षा के लिए पाठशालाएं भी चलाते थे।

फतेहपुर में अमृतनाथ जी प्रख्यात नाथ योगी थे जो कि पारा, संखीया आदि पीकर चमत्कार दिखाते थे। १५० वर्ष पूर्व इनके शिष्य भानीनाथ जी ने चूरु के उत्तर में बीड़ में मठ की स्थापना की। इस मठ में हनुमानजी, भगवती, गोरखनाथ जी, मछेन्द्रनाथ जी व अन्य योगियों की विशाल प्रतिमाएं हैं।

विसाऊ के पास टांई भी नाथ सम्प्रदाय का उद्गम स्थल है।

हनुमानगढ़ के नाथ स्थल जो कि बोहर की गद्दी के नीचे हैं। इस स्थान का महत्व लोकोपचार के रूप में भी है जैसे – आंखों का ईलाज आदि के लिए शिविर लगाना।

सरदार शहर तहसील के कई गांवों में जैसे चोहलिया, राजासर में नाथों की प्राचीन गद्दियां हैं। प्राचीन काल में श्रृंगी भृंगी नाथ योगी भी इन्हीं गांवों में होने की प्रसिद्धि है।

रतनगढ़ तहसील में आलसर से पश्चिम की ओर ३–४ कोस की दूरी पर राजवियों का गांव है। उसी गांव के जंगल में रुस्तम धोरा अथवा जमवाली छात के नाम से स्थान है जहां रूस्तम जी ने १७२८ से १७३६ वि. सं. तक तपस्या की थी। यहां आसोज सुदि सप्तमी और शिव रात्रि को विशाल मेला भरता है। ऐसी मान्यता है कि गोरखनाथ जी इनको मिले थे और रुस्तम जी को सिद्धि प्राप्त हुई थी।

इन्हीं रुस्तमजी ने औरंगजेब को ५२ चमत्कार दिखाये थे जिनमें अग्नि के विशाल ढेर में नृत्य करना प्रसिद्ध है। इससे सम्बन्धित औरंगजेब के जमाने का व हैदराबाद स्कूल का एक प्राचीन चित्र मिलता है।

नोखा तहसील में सैगाल का धोरा जो नोखा से पश्चिम दक्षिण में है, कहा जाता है कि गुरु गोरखनाथजी ने यहां तपस्या की थी और नाथ जातियों की बड़ी जमात सैंगाल में रहती थी। रुपनाथ जी ने अपने पिता बूढ़ोजी एवं काका पाबूजी की मौत का बदला जिनदराय खींची से जो जायल कठौती के शासक थे, लिया था और तब वे दौड़कर सैंगाल गोरखनाथजी की शरण में आ गये और गोरखनाथ के शिष्य बन गये। गोरखनाथजी ने उनका नाम रुपनाथ रख दिया। {पूर्व में झरड़ोजी} रुपनाथ जी रेबारियों के पूज्य देवता माने जाते हैं।

कोलायत में नाथ सम्प्रदाय के कई स्थान हैं जिसमें गऊधाट की पाल पर नाथों का एक बहुत बड़ा स्थान है जहां मेले के समय नाथ योगी ठहरते हैं। कोलायत में ही जसनाथ सम्प्रदाय की परमहंस मण्डली का एक विशाल भवन है जो गऊधाट के उत्तर की तरफ जंगल में हैं। यह स्थान मोतीनाथजी के धोरे, के रूप में प्रसिद्ध है, यहीं पर जसनाथी सिद्धों का एक जसनाथ आश्रम नाम का स्थान है जहां मेले में जसनाथी सम्प्रदाय के लोग ठहरते हैं।

बीकानेर में ही लक्ष्मीनारायणजी के मंदिर के पास पूर्व की ओर गंगाशहर जाने वाली सड़क पर एक नाथों का स्थान है। परन्तु आजकल यहां कोई नाथ योगी नहीं रहते हैं।

बीकानेर में ही केदारनाथजी की गुफा बहुत प्रसिद्ध है जो जैन कॉलेज के पश्चिम की ओर स्थित है। यहां मूंदड़ों के तालाब के ऊपर चिमननाथ जी के नाम से एक योगी रहते थे जो अपनी सिद्धियों के लिए प्रसिद्ध थे, यहां उनकी एक गुफा बनी हुई है।

जसनाथी सम्प्रदाय के मुख्य स्थान बीकानेर डिवीजन में हैं, जिनमें कतरियासर और बम्बलू हैं। पुनरासर, लिकमादेसर चूरु में हैं इनकी ८४ बाड़ियों में से अधिकांश बाड़ियां बीकनेर डिवीजन

में ही हैं। जैसे– डूंगरगढ़ तहसील में सेरूणा, पुनरासर और झंझेऊ, सुजानगढ़ तहसील में धिंटाल, परेवड़ा, जोगलिया। रतनगढ़ शहर में छाजूसर, बीनादेसर, भरपालसर/सरदारशहर तहसील में बीकूसर आदि।

इसी तरह सन् १८७५ के लगभग श्री जीवणनाथ जी बीकानेर आये, दो चार माह नत्थूसर गेट के बाहर बाहेतियों की बगीची में प्रवास किया। वहां से जैरगीरी बाबा {प्रथम} की बगीची में आ गये। वर्तमान में यह बगीची जीवणनाथजी की बगीची के नाम से विख्यात है। बीकानेर के महाराजा श्री गंगासिंहजी ने चैत्र मास में श्री नाथजी के सामने बाजरी के सिट्टे की मांग की। श्री नाथ जी ने बिना किसी असमर्थता के अपने शिष्य पूर्णिया को आदेश दिया और सिट्टे श्री गंगासिंह जी को दिये। ताजे सिट्टे देखकर वे विस्मय में पड़ गये और श्री नाथजी के चरणों में गिरकर उनके प्रति अपनी प्रगाढ़ निष्ठा रखनी प्रारम्भ कर दी। श्रीनाथजी ने पक्षियों को दाना, राहगीरों के लिए प्याऊ, एवं धूणे की भस्मी से रोगों को मुक्त करना आदि कार्य किये।

बीकानेर में ही मूंधड़ों के तालाब पर श्री फूलनाथजी ने तपस्या की थी। यह स्थान 'फूलनाथजी रो धोरो' के नाम से विख्यात है। उनके पास करमीसर ग्राम के व्यक्ति व बीकानेर के सेवग जाति के लोग भी दर्शनार्थ आया करते थे। फूलनाथजी अपने भक्तों को ब्रह्म कहकर सम्बोधित किया करते थे। ये स्वच्छता पर अधिक जोर देते थे– कौओं, कुत्तों को निकट फटकने नहीं देते थे। वि. सं. १९५६ को भयंकर अकाल में इन्होंने हजारों व्यक्तियों को भोजन करवाया। उस समय गोगा गेट के बाहर पंचमुखा हनुमानजी के मंदिर के निकट हजारों अकाल पीड़ितों का शिविर लगा था। पीड़ितों की सेवा करवाकर इन्होंने सन्त हृदय का परिचय दिया।

बीकानेर क्षेत्र में नाथ सम्प्रदाय के अनेक मठ, मंदिर, अखाड़े आदि हैं जिनसे इनकी लोक मानस के प्रति भावना का पता चलता है। इन साधना स्थलियों पर भिन्न भिन्न जाति अथवा सम्प्रदाय के अनुयायी एकत्रित होकर अपने अपने गुरुओं से शारीरिक, मानसिक कष्टों से मुक्त होते रहे हैं अतः ऐसे स्थानों पर लोकोपकारी भाव का उदय स्वतः स्फूर्त ही कहा जा सकता है। यही कारण

है कि बीकानेर क्षेत्र के ऐसे साधना स्थलों के अन्तर्गत भोजनशाला तो है ही, साथ ही साथ शिक्षा का प्रसार, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण, चिकित्सा सेवा आदि लोकहित के कार्य सेवा के रूप में किये जा रहे हैं। बीकानेर के गंगाशहर उपनगर में शालूनाथ जी के नाम पर उनकी कार्य प्रणाली के अन्तर्गत बच्चों एवं प्रौढ़ों की पाठशालाएं संचालित की जा रही हैं। बीकानेर से लगभग ६५ किलोमीटर दूर स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थान कोलायत में इस सम्प्रदाय के कई धूणे एवं स्थान हैं जिनके अन्तर्गत पशु–पक्षियों के लिए चारे चुग्गे की व्यवस्था, गौ सेवा और साधु सन्तों के लिए नित्य प्रति की भोजनशालाएं भी हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बीकानेर परिक्षेत्र में नाथपंथ का जनजीवन के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान है और अपने प्रारम्भिक काल से लेकर अब तक भी यह प्रभाव कम नहीं आंका जा सकता।

## संदर्भ


१ नाथ सिद्धों की बानियाँ, हजारी प्रसाद द्विवेदी
२ सिद्धों के कुलगुरु श्री सूर्यशंकर पारीक से व्यक्तिगत सम्पर्क से जानकारी
३ बीकानेर क्षेत्र के संत महात्मा, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्यास
४ मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन, डॉ. पेमाराम
५ राजस्थान भारती—अंक २, भाग ९
६ मरु भारती, जुलाई १९६५ वर्ष १३, अंक २, वर्ष १२, अंक ४
७ चूरु दर्शन, सम्पादक बनराज जोशी

# सिरे मंदिर सैं सूं सिरे

डॉ. भगवतीलाल शर्मा

इतिहास–विश्रुत जालोर {राजस्थान} नगर के पश्चिम में एक अचल–युगल {दोवड़ो भाखर} प्रहरी–द्वय–सदृश शोभायमान है। इनमें एक है कनकगिरि और दूसरा कलशाचल।[1] राजस्थान की हृदयरेखा से खिंचे अरावली पर्वत का ही यह प्रसरित अंश है।

**क. कलशाचलः**

जालोर से २ किमी पश्चिम में, नैऋत्य कोण में आया यह पर्वत नाथ–सम्प्रदाय में कुंभाचल, कलशाचल और 'जलंधरनाथजी रौ भाखर'[२] नाम से प्रसिद्ध है। जलंधरनाथ के तीन प्रमुख तपस्या स्थलों –गिरनार, कलशाचल, रक्ताचल में से यह दूसरा स्थल है।[3]

नवनाथों में समादृत जलंधरनाथ[x] सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त होने से पूर्व कापालिक साधना से सम्बद्ध थे और उनका प्रवर्तित पाव पंथ {पावक या पा पंथ भी} इस नाथ सम्प्रदाय की द्वादश शाखाओं में से एक है।

कलशाचलस्थ इस 'कपाली आसन' की महिमा का गान करते हुए कविगण लिखते हैं–

महा कपाली सिखर मनि, वहां चढ़ै उव्हि वार।
उतरै सिर पर तैं अवत, भव भव को अघ भार।।[४]

यह {कलशाचल} क्षेत्र पाव पंथी योगियों का परम पावन आदि स्थान है–

आदिभूस्तत्परं क्षेत्रं पावनं पावपंथिनाम्।।६।।[५]

म. मानसिंह 'नाथचरित्र' में इस कलशाचल की स्तुति इस प्रकार करते हैं–

अनन्तमुनिसिद्धसंलसत शृंगयत्कंदरा,
सुरासुरगणा अहोरयनकिन्नराद्यप्सरा।
समीर सहगानसंनृतनिनाद तीघर्थामलिं,
निवासअभिलषिप्रियं नमामि कुंभाचलम्।।[६]

उन्होंने यहां की प्रकृति–प्रदत्त सुषमा एवं पावन परिवेश का चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि नाना पुष्पों को सहलाकर उनकी सौरभ धारण किया समीर, मकरंद–पान से मस्त मंडराते भ्रमर–समूह, मनमोहक तथा कर्णप्रिय कलरव करते कोकिल–कोक–सारस–कुलंग–सारिका–बतक–हंस–पारावत आदि, नृत्यलीन मयूर, शाखाओं पर फलांगते कपि–झुंड, कुलाचें भरते मृग, प्रकृत बैर–भाव विस्मृत कर इस तपोवन में विचरते मोर–भुजंग तथा केहरी–कुरंग–यहां सभी अदभुत परिवेश रचते हैं। [७]

आध्यात्मिकता से ओतप्रोत इस पावन परिवेश में श्रद्धालुओं के अनुसार तापत्रय नाशक, सिद्धों के सिद्ध जलंधरनाथ साक्षात् विराजमान हैं–

नहि जानत मुनि शिद्ध नर, कब तैं आसन कीन।
बहुत जुगनि तैं वास वहां, परम रूप प्राचीन।।७।।
महाअलौकिक मूरती, सब मैं श्रेष्ट स्वरूप।
जास चरन भजि विश्वजन, भए कितेहू भूप।।८।।
आप वसत आनंद मैं, निहचल ज्ञान निधान।
धन्य देस वह धन्य भुवि, सो गिर धन्य स्थान।।१२।। [८]

**ख. मंदिर वर्णनः**

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक की इस मंदिर की यात्रा गाथा अब यहां पाठकों के पठनार्थ प्रस्तुत है।

१. स्थितिः–

यह मंदिर कलशाचल पर समुद्री सतह से ६५८ मीटर ऊंचा, २५.२०ं उ. अक्षांश तथा ७२.३७ं पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[९]

२. पूर्व नामः

श्रीजलंधरनाथ की इस तपोभूमि को पहले 'श्रीजलंधरनाथ जी रौ मिंदर' कहा जाता था।[१०] उस समय यहां भंवर गुफा, चंद्र कूप, सूर्य कुंड तथा रत्नेश्वर महादेव ही थे।[११]

३. 'सिरे मंदिर' संज्ञाः–

प्रवाद प्रचलित है कि सं १८६० में इस स्थान के आयस देवनाथ के माध्यम से प्राप्त श्री जालंधरनाथजी की भविष्यवाणी के आधार पर मानसिंह ने मारवाड़ का राज्य प्राप्त किया था। इस 'चमत्कार' से वे 'नाथमय' हो गये और यह स्थान उनके लिये सर्वस्व ही हो गया।

सिरे का अर्थ है– श्रेष्ठ, ऊँचा, शीर्ष, प्रथम।[१२] म. मानसिंह ने इसी भावना को दृष्टि में रखकर इसे 'सिरे मंदिर' संज्ञा दी[१३] और इसके प्राचीन कलेवर को विस्तृत आकार प्रदान कर इसे कलात्मक परिधान पहिनाने का श्रेय लिया।[१४]

४. दर्शनीय स्थलः

अ. भँवरगुफा

मंदिर परिसर के पश्चिमार्द्ध के उत्तरी कोने में एक विशाल शिलाखण्ड के नीचे यह गहरी और लंबी चौड़ी गुफा है। भीतर से गुफा 11¼ X 7½ फूट नाप की है। मंदिर के समतल आंगन से पांच सीढी नीचे उतरने के पश्चात 9½' X 17½' माप का बरामदा पार कर यहां पहुँचते हैं। गुफा का द्वार ६' ऊँचा

और पूर्वाभिमुख है। ऊपर शिलाखंड की ही छत है, जो शनैः शनैः पश्चिम की ओर कम होकर अंत में भूमि का स्पर्श करती है। इसमें शिवलिंग तथा पार्वती, जलंधरनाथ, गणेश, कार्तिक आदि की संगमरमरी मूर्तियां है। गुफा के भीतर और बाहर– सब नवीन हैं; मार्बल तथा टाईल्स से सुन्दर कलात्मक और आर्कषक।

तीर्थ प्रांगण में यही प्राचीन पुण्य स्थल है, जो योगिराज श्रीजलंधरनाथ की तपोभूमि रहा और आज जन जन का वंदनीय है। इसी जगह जलंधरनाथ ने भ्रूमध्य स्थित योग के षट्चक्रों में एक 'आज्ञा चक्र'[१५] का भेदन किया था। 'आज्ञा चक्र' का इतर नाम 'भ्रमर गुहा' है। इस स्थान का नामकरण इसी आधार पर हुआ – यह मानने का पर्याप्त कारण यही है।

प्राचीन समय से इस परम पावन स्थान को जलंधरनाथ की साक्षात् उपस्थिति से प्राणवंत समझा गया है। जहां ऐसे लोकोद्गार हैं–

भंवरगुफा में विराजिया, जोगी जलंधरनाथ।<br>
कानां कुंडल झिलमिलै, हिरलो तपे ललाट।।

वहां अभिजात साहित्य में भी स्थान–स्थान पर विश्वास संकेतित है–

तत्रैत्य सर्वसुखदे परमार्त्तिहर्ता<br>
ज्ञानात्मना स भयनुद्वसतिं चकार।<br>
सौख्यं निजेष्वखिलभक्तजनेषु कुर्व<br>
न्नद्यापि शर्मकृदसौ शुभदश्चकास्ति।।७।।[१६]

आ. चंद्रकूपः

यह कूप श्रीरत्नेश्वर महादेव के प्रांगण में आया हुआ है और श्रीजलंधरनाथ के समय से ही विद्यमान है। इस सम्बन्ध में उल्लेख है–

जगदुपकृतयेंऽशोत्तिष्ठ तीर्थोत्तमैस्त्वं,<br>
विधुरिति कनकाद्रो यन्नियुक्तोंऽबुरूपः।<br>
अभवदमृतकल्पयो नामतश्चंद्रकूपः<br>
पुनरिममवतुवां नाथजालंधरः सः ।।८।।

अर्थात संसार के उपकार के लिए श्रेष्ठ तीर्थों के अंशों सहित तुम यहां निवास करो'– {इस प्रकार श्री जलंधरनाथ ने} कहते हुए चंद्रमा को जल रूप में कनकाचल पर प्रतिष्ठित किया। तब से {वहां पर} चन्द्रकूप नाम का अमृत तुल्य कूप हुआ। {ऐसे वे} श्री जलंधरनाथ इस {चंद्रकूप} की तथा आपकी रक्षा करें।।८।।[१७]

त्रिताप हरण इस कूप की महिमा का गान करते हुए फिर लिखा गया है–

सदा समजलं तत्र कपालीतीर्थमद्भुतं।
चंद्रकूपाह्वयं तीर्थं साक्षान्निर्वाणदायकम्।।५।।[१८]

इ. सूर्यकुण्डः

योगिराज श्रीजलंधरनाथ द्वारा प्रतिष्ठापित इस कुण्ड का भी स्थान स्थान पर श्रद्धा सहित स्मरण किया गया है।

म. मानसिंह ने इसे भोग–मोक्षदायक मानते हुए लिखा है–

सूर्यकुडं महातीर्थं भोगमोक्षैकसाधनम्।।६।।[१९]

तो वे ही अन्यत्र इसे जगत्ताप नाशक बतलाते हुए कहते हैं–

रवि कुंड नसावन जगत ताप।
जल विमल पूर महिमा अमाप।।[२०]

कवि ताराचन्द व्यास विरचित 'नाथानंद प्रकाशिका' में चंद्रकूप और सूर्यकुण्ड विषयक इस 'छंद की छटा अवलोकनीय है–

गिर चंड हाटक शिखर सोह उतंग तरु बहु संग।
जल कुंड रवि फुन चंद्रकूप सुवापि सुषद सुरंग।।
श्रीनाथ जालंधरन की जित पीठ परम प्रकास।
सुभ थान मिंदर सुभग आभा जाति रूप सुभास।।२७।।[२१]

ई. रत्नेश्वर महादेवः

यह शिवालय भी यहां की प्राचीन पवित्र धरोहर है। जालोर के स्वतंत्र राठौड़ नरेश राम रतन द्वारा सं १७०८ में उनके नाम पर यह शिव–बाण प्रतिष्ठित हुआ।[२२]

· यह शिवालय मंदिर परिसर के पूर्वीभाग में एक वटवृक्ष के नीचे आया हुआ है। गर्भ गृह में पार्वती, गणेश, जलंधरनाथ, गोगादे ऋद्धि–सिद्धि की मूर्तियों के मध्य प्राचीन नवीन शिवलिंग है। यही अखंड ज्योति प्रज्ज्वलित है। इस पर ८१ कलश हैं।

कलात्मक जाली झरोखों से युक्त, रंग–बिरंगे मार्बल की शोभा से संयुक्त तथा चित्ताकर्षक चित्रकारी वाला यह शिवालय वास्तुकला का मनोहारी उदाहरण है।

उ. अन्यः

म. मानसिंह ने यहां भव्य महल तथा सुदृढ़ प्राचीर का निर्माण करवाया।[२३] अखण्ड धूणा, झालरा, वापिका, वाटिका, मानसरोवर, समाधियां {सूआनाथ, भवानीनाथ, भैंरूनाथ, हंसनाथ, फूलनाथ, सेवानाथ, पूर्णनाथ, केसरनाथ, भोलानाथ} आदि भी अवलोकनीय स्थान हैं।

यह समस्त भव्यरूप वर्तमान पीठाधीश्वर शांतिनाथजी ने दिया है।

५. शिलालेखः

सिरे मंदिर के निर्माण एवं इससे सम्बन्धित अन्य सूचनाओं के संकेतक दो शिलालेख[२४] यहां उपलब्ध हैं, जो अद्यावधि अप्रकाशित हैं। ये दोनों एक ही लाल पत्थर पर उत्कीर्ण किये गये हैं, जो चन्द्रकूप पर बने चबूतरे के बीचोंबीच स्थापित हैं।

इस पाषाण के पूर्वाभिमुख पार्श्व पर उत्कीर्ण शिलालेख क्रमांक एक के अनुसार म. मानसिंह के शासन समय में सिरे–मंदिर का निर्माण कार्य श्री हरिनाथ के पश्चात् पाट पर बैठने वाले श्री दाऊनाथ ने सं. १८७६ की भादवा वदि ८ से लगाकर सं. १८९२, माघ सुदि १५ तक 16½ वर्ष में कराया। इसमें रुपये ३५१००० व्यय हुए। यहां सं. १८८३, माघ सुदि ११ एवं सं. १८९२, माघ सुदि ११ को विशाल यज्ञ हुए, जिनमें सामग्री तथा दक्षिणा आदि में क्रमशः : ५००१.०० और रु ३०००.०० लगे। महाराजा के प्रधान राठौड़ बख्तावरसिंह {चंपावत खांप} ने मंदिर को गांव भेंट किया। निर्माण कार्य दीवान ज्ञानमल मुंणौत, जीफसिंह सिंधल {गांव भागली}, कामदार मुंणौत जसरूप हिम्मतराम एवं गजधर सलावट दलेल पीरू की देखरेख में हुआ और मंदिर का बड़ा कोट, दलीचियां, हवेलियां, अंबखास,

साळें, दौलतखाना, कोठार, राजभोग भंडार, दुकानें, अखाड़ा, रिसाला, सिरे पोळ, बाग का कोट, अमृत बावड़ी आदि बने।

इसी पाषाण के दक्षिण पार्श्व पर उत्कीर्ण द्वितीय शिलालेख[२५] में सं. १८६०, काती सुदि ७ को पीर साहब देवनाथ को 'गुरुथापन' करने, गांव गोळ एवं बाघोड़ा भेंट करने, सं. १८७३ में हरीनाथ के देवलोक होने तथा इनके पाट बैठने वाले दाऊनाथ को म. मानसिंह द्वारा पांच गांव, हाथी, पालकी, छत्र, नगारा निशान आदि भेंट देने का उल्लेख है।

६. कीर्तिगानः

इस रम्य मंदिर का मनोहारी चित्रण कर कवियों की कलम कृतार्थ हुई है। बगीराम सेवग श्री जलंधरनाथ के इस 'निजधाम' को तीर्थों का तिलक बतलाते हुए भावविभोर होकर लिखता है–

कासी किधूं प्रियाग, किधूं बद्री केदारा।
वेजनाथ जगंनाथ, किधूं गंगौत्री धारा।।
सेतबंध रांमेस, पुरी दुवारकू परसै।
गढ़ आबू गिरनार, देव कणियागर दरसै।।
तीरथां आद ज्यांरौ तिलक, कहूं क्रीत धर लग कठा।
निज धांम जलंधरनाथ रै, इतरा तीरथ ऐखठा।।४५।।[२६]

और भी उदाहरण दूं–

रम्य सिरै मंदिर रमन, दमन दुष्ट दनुजेस।
सम न जासु कै सिद्धसुर, सो स्वामी सिद्धेस।।[२७]

भदोरा निवासी सांदू भोपाळदांन 'नीसांणी जाळोर गढ़ रा भाव री' में कहता है–

कनकाचल बासी कह्या, ज्यूं कासी संकर।
सिरै मिंदर महिमा सिरै, सोहै सिधेश्वर।।[२८]

तो शेख गुलाम के 'मैहंदी कसीदो' का क्या कहना–

सिफत मंदर की मैं लिखूं कहां तक।
हुई है जिसमैं हीरौं की जड़ाई।।

जो चस्मा उसमैं हैं इंम्रत भरे हैं।
करूं क्या बाग की मदहे–सराई।।
फिसलती है कलम कागज सैं मेरी।
लिखूं मंदर की मैं क्युंकर सफाई।।[२९]

ग. गुरु परम्पराः

कलशाचल स्थित इस सिरे मन्दिर की गुरु परम्परा दो रूपों में प्राप्त होती है–१. गृहस्थ–प्रवण एवं २. वैराग्य– प्रवण।

श्रीनाथतीर्थावली–स्तोत्रानुसार इस कलशाचल पर श्रीगुरुकुल {पीठ} अत्यन्त सम्मान के साथ अधिष्ठित था।[३०] श्री जालंधरनाथ से वर प्राप्त कर योगिराज मेलनाथ ने पुनीत पर्वत गिरनार से यहां आकर श्रीजालंधरनाथ के चरण कमलों की सेवा करते हुए इस गुरुकुल का प्रारंभ और विस्तार किया।[३१]

श्रीनाथ मठ, महामन्दिर {जोधपुर} से प्राप्त एक प्राचीन पत्रानुसार[३२] जालंधरनाथ ने मेलनाथ को गृहस्थाश्रम प्रवेश की आज्ञा प्रदान की।[३३] इस पत्र से सिरे मंदिर की गृहस्थ प्रवण गुरु परम्परा का वंश वृक्ष निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

१. मेलनाथ

२. थाननाथ

३. गोयंदनाथ

४. नाढ़ानाथ

५. केसरीपाव – अ. महेशपाव, ब. गोवापाव.

६. महेशपाव – अ. हरीयापाव
आ. ओपंपाव
इ. सुरतपाव
ई. देवपाव – म. मानसिंह के गुरु.
उ. भीमपाव

७. हरियापाव

८. दाऊनाथ

सं. १८२५ के आसपास रातादूँढ़ा {अजमेर} से भर्तृहरि शाखा के सुआनाथ यहां आकर तपस्यारत हुए। म. मानसिंह के सं. १६०० में देहावसान के पश्चात् समस्त मारवाड़ में गृहस्थ नाथों का वर्चस्व समाप्त हो गया। फलस्वरूप यहां भी वैराग्य प्रवण गुरु परम्परा प्रारम्भ हो गई, जो अविच्छिन्न रूप से इस प्रकार है–

१ सुआनाथ

२ भवानीनाथ

३ भैंरूनाथ

४ फूलनाथ

५ पूरणानाथ

६ केसरनाथ

७ भोलानाथ

८ शांतिनाथ – वर्तमान पीठाधीश – शिष्य कमलनाथ, गंगानाथ, किशननाथ, वीरनाथ.

सिरे मंदिर समस्त नाथ सम्प्रदाय के लिए वन्दनीय एवं यहां के जन जन का श्रद्धा स्थल है। अतः जन मानस की अभिव्यक्ति ऐसे शब्दों में फूट पड़े, तो स्वाभाविक है–

सिरे मंदिर सैं सूं सिरे, और न दूजौ और।
जगा जळंधरनाथ री, जग चावौ जाळौर।।

श्रीनाथतीर्थावली स्तोत्रकार के इन शब्दों में–

ईदृशस्तीर्थराजस्य महिमा केन वर्ण्यते।
अमुष्मै तीर्थमुख्याय भूयो भूयो नमः।१६।

## संदर्भ

१ कणियागर जोड़ै ककस, परबत विषम पहाड़। ६८॥
ग्रं २१: जलंधरनाथरूपक: संतोकीराम: म. मान.पु.प्र., जोधपुर
२ मारवाड़ रा परगनां री विगत: द्वितीय भाग: नैणसी: पृ. ५००
३ ग्रं. १५१०: गु.सं. २ क: पत्र २६ क: म. मान. पुस्तक प्रकाश: जोधपुर
४ ग्रं. १५१७: नाथ चरित्र: मानसिंह : प. ५४–५५: म. मान. पु.प्र., जोधपुर, एवं यहीं के ग्रं. २१, ग्रन्थ ३९, ग्रं ११५ आदि।
x पं. राहुल सांकृत्यायन इन्हें बौद्धसिद्ध मानते हैं। जी. डब्लू ब्रिग्ज भी इसी मान्यता के परिपोषक हैं। — सम्पादक
५ ग्रं. १६१७: श्रीनाथतीर्थावलीस्तोत्र: मानसिंह: म.मान.पु.प्र., जोधपुर
६ ग्रं. १५१७: नाथचरित्र: मानसिंह : प. ५४–५५: म. मान. पु.प्र., जोधपुर
७ ग्रं. १५१०: २क वसंत वर्णन १ : पृ. ४४–४५: म.मान.पु.प्र., जोधपुर
८ ग्रं. १५१७: नाथचरित्र: मानसिंह: पृ. ५४–५५: म.मान.पु.प्र., जोधपुर
९ भारतीय सर्वेक्षण धरातल पत्रक: जालोर: सं. ४५–C.
१० महाराजा मानसिंह री ख्यात: संपा. डॉ. नारायणसिंह भाटी: पृ.४
११ i) भंवर गुफा श्रीजलंधरनाथ की तपस्या–स्थली थी तथा चंद्रकूप और सूरज कुंड उनके समय में थे।
ii) राव रतन ने सं. १७०८ में यहां रत्नेश्वर महादेव की प्रतिष्ठा की।
१२ राजस्थानी हिन्दी शब्द कोश: तृतीय खण्ड: साकरिया: पृ. १४
१३ म. मानसिंह ने अपनी प्रथम पुत्री का नाम भी 'सिरेकंवर' रखा। इस राजकुमारी द्वारा जोधपुर में निर्मित तालाब 'बाईजी रौ तलाब' सुज्ञात है।
१४ निर्माण विषयक सूचना के लिए 'शिलालेख' शीर्षक द्रष्टव्य है।
१५ अन्य चक्र हैं— मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि
१६ ग्रं. १५१७ {अ}: श्रीजलंधरोत्पत्ति: पत्र १: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
१७ ग्रं. १५१०: गु.सं. ३क : जलन्धराष्टक: प. ३८३: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
१८ ग्रं. १६४७: श्रीनाथतीर्थावलीस्तोत्र: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
१९ ग्रं. १६४७: श्रीनाथतीर्थावलीस्तोत्र: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
२० ग्रं. १५१०: गु. सं. २ क: पत्र ४४: वसंत वर्णन: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
२१ ग्रं. १४०: कला प्रथम: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
२२ ग्रं. १५१०: गु.सं २क : परचावली: पत्र १२०: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
२३ इसी निबंध का 'शिलालेख' शीर्षक द्रष्टव्य है।
२४ शिलालेख–पाषाण १'२'' चौड़ा, ५'२'' ऊँचा तथा ९'' मोटा है। प्रथम शिलालेख में ४० पंक्तिया हैं, अक्षर १'' मोटे हैं तथा मारवाड़ी बोली में उत्कीर्ण किया गया है और सुवाच्य है।
२५ इसमें न्यूनाधिक लंबाई की ३२ पंक्तियां हैं, अक्षर १'' मोटे हैं, और पीठाधिपतियों के नाम–स्थान नहीं भरे गये है।
२६ ग्रं. ११५: जलंधरजसभूषण: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
२७ ग्रं. १५१०: गुटका सं. २क: पत्र ७०: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
२८ ग्रं. ३९: राठौड़ राजाओं का वर्णन आदि: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
२९ ग्रं. १७६: हिन्दी–राजस्थानी : म. मान. पु. प्र., जोधपुर
३० ग्रं. १६४७ क : संस्कृत: पत्र १ क: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
३१ तन्मूलकं गुरुकुलं तत्र विस्तारतां गतम्।
गगनस्पर्द्धिशिखरं समया कलशाचलम्॥ ११॥
—ग्रं. १६४७ क: संस्कृत: पत्र १ ख: म. मान. पु. प्र., जोधपुर
३२ मरुश्री: वर्ष ३: अंक २: पृ. २९–३० पर चिरंजीव शर्मा द्वारा प्रकाशित
३३ मरुश्री: वर्ष ३: अंक २: पृ. २९–३०

# राजस्थान के राजघरानों को नाथ–योगियों का आशीर्वाद

डॉ. हुकमसिंह भाटी

नाथ सम्प्रदाय के अतीत का एक उज्ज्वल पक्ष राजस्थान–राजघरानों के इतिहास से जुड़ा हुआ है, वह पहलू है नाथ योगियों का यहां के नरेशों को आशीर्वाद। शुभ आशीष और सद्भावना के इस पहलू ने नाथयोगियों को राजघराने के द्वार तक पहुंचाने में अभूतपूर्व योगदान दिया।

राजस्थान के गुहिल, भाटी, राठौड़, चौहान और परमार राजवंश किसी न किसी रूप से नाथ योगियों के वरदान या यूं कहिये कि प्रभाव से जुड़े हुए हैं। लेकिन मुख्य रूप से मेवाड़ के गहलोत, देरावर जैसलमेर के भाटी तथा मारवाड़ के राठौड़ राजवंश पर जितना नाथों के आशीर्वाद का प्रभाव पड़ा उतना अन्य राजवंशों पर परिलक्षित नहीं होता है। अतः मैंने इस आलेख में केवल इन तीन राजवंशों के संदर्भ में नाथों के आशीर्वाद का विवेचन प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है।

**मेवाड़**

चित्तौड़ के गुहिल राजवंश की स्थापना की गाथा नाथयोगी के वरदान से मंडित है। हारीत ऋषि की कृपा और महादेव के

आशीर्वाद से बापा रावल को चित्तौड़ का राज्य मिला। सर्व प्रथम बापा ने रावल की उपाधि धारण कर गुहिल वंश को गौरवान्वित किया। यद्यपि हारीत ऋषि के बारे में अभी तक× धुंधला प्रकाश ही पड़ा है तथापि विद्वानों की यह मान्यता है कि वे लकुलीश सम्प्रदाय के एक योगी थे और इसके शिष्य महाराणा जगतसिंह {प्रथम} के काल तक एकलिंगजी के पुजारी रहे। डॉ. गौरी शंकर हीराचंद ओझाजी ने भी यह स्वीकार किया है कि एकलिंगजी के पुजारी कनफटे योगी हुआ करते थे। नैणसी की ख्यात से हमें पता चलता है कि हारीत ऋषि ने बापा रावल को यह आशीर्वाद दिया था कि चित्तौड़ पर तेरा अधिकार होगा और मेवाड़ राज्य तेरे वंशजों के पास सदा रहेगा।[१] रावल राणाजी री बात में भी ऐसा ही विवरण मिलता है।[२] बापा रावल[३] और हारीत ऋषि का समय ८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्थिर होता है। हारीत ने आशीर्वाद देते हुए जो भविष्यवाणी की वह सत्य निकली। मेवाड़ पर आतताइयों के अनेक बार आक्रमण हुए और कई बार चित्तौड़ का किला भी उनके हाथ से निकल गया लेकिन गुहिल राजवंश का सूर्य कभी अस्त नहीं हुआ। उनका अस्तित्व बना रहा, इतिहास इसका साक्षी है। यद्यपि नाथों का प्रभाव जैसलमेर और मारवाड़ की तुलना में यहां कम ही रहा तथापि यहां के राजवंश की आस्था बराबर नाथ योगियों के प्रति बनी रही और नवरात्रि के दिन नाथों से आशीर्वाद लेने की परम्परा का निर्वाह भी होता रहा।

नाथों के आशीर्वाद का महाराणा प्रताप से जुड़ा एक नवीन तथ्य सामने हाल ही में मैंने दिवेर की गोष्ठी में उजागर किया। महाराणा प्रताप १२ वर्ष तक मुगलों से संघर्ष करते रहे परन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। वे घोर संकट में जब पहाड़ों की घाटियों में विचरण कर रहे थे तब रोहड़िया ग्राम की एक पहाड़ी गुफा में उन्हें जोगेश्वर महासिद्ध रूपनाथ के दर्शन हुए। प्रताप ने उनके आगे अपनी व्यथा प्रकट की तब योगीनाथ ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि अब तुम्हारे लिये विजय के द्वार खुल गये है। तुम सर्वप्रथम दिवेर की ओर आक्रमण करो तुम्हारी विजय होगी। प्रताप ने दिवेर की ओर आक्रमण कर विजय का बिगुल बजाया और फिर निरन्तर मुगलों की दूसरी चौकियों पर भी कब्जा करने में सफल हुए।[४]

यह उल्लेखनीय है कि यहां नाथ योगियों का आशीर्वाद अपनी परिधि में रहा। उनका वरदान निःस्वार्थ भावना से जुड़ा हुआ रहा। अर्थात् नाथों ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये कुछ किया हो ऐसा नहीं लगता। महाराणाओं ने भी इन्हें सम्मान जरूर दिया पर आस्था के बहाव में आकर दूसरे महाराजाओं की तरह उनका अन्धाधुन्ध अनुसरण नहीं किया। नाथों का क्षेत्र केवल धर्म तक सीमित रहा, महाराणाओं ने उनकी छाया अपने राज्य प्रशासन पर कभी नहीं पड़ने दी।

**जैसलमेर**

जैसलमेर का मरु–क्षेत्र नाथ सम्प्रदाय का गढ़ और नाथ–योगियों की कर्मस्थली रहा है। यह मरुस्थल हमें नाथ सम्प्रदाय के अतीत के दर्शन कराता है। प्रायः सभी विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है कि नाथ सम्प्रदाय का प्रारम्भिक विकास इसी क्षेत्र से हुआ। इस सम्प्रदाय को एक विशेष बल और ख्याति मिली। यहां के भाटी शासकों पर तो नाथ–योगियों ने अमिट छाप छोड़ी है। राज्याभिषेक की रस्म के समय योगियों का भगवा वेश धारण कर उनका आशीर्वाद लेने की यहां एक प्राचीन परम्परा रही है।

योगी रतननाथ ने ६वीं शताब्दी के मध्य में देवराज भाटी {देरावर के शासक} को यह आशीर्वाद दिया था कि भाटी शासकों का इस क्षेत्र में चिरस्थायी राज्य रहेगा। ३०० वर्ष प्राचीन नैणसी की ख्यात में इसका विस्तृत विवरण मिलता है। उसमें लिखा है कि रतननाथ योगी ने अपनी एक चमत्कारी रस–कुप्पी वीर हाथियों के यहां रखी। देवराज भाटी जो उनका जमाई था उसने वह कुप्पी अपनी कब्जे में करली और उसके चमत्कार से देरांवरगढ़ का निर्माण कर अंपनी शक्ति बढ़ाने में सफलता पाई। जब रतननाथ को इसका पता लगा तो वह देरावर पहुंचा। देवराज ने आवभगत कर उसका बड़ा सम्मान किया। रतननाथ उसकी भक्ति से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने एक दिन रस कुप्पी के बारे में पूछा इस पर देवराज ने बताया कि यद्यपि आपने मुझे वह वस्तु नहीं सौंपी लेकिन इसका फल अच्छा ही हुआ। तब रतननाथ ने खुश होकर कहा कि 'तूं हमारा नाम और सिक्का अपने मस्तक पर धारण कर, तेरा बल और कीर्ति दोनों बढ़ेगी। फिर मेखली नाद और

पात्र देते हुए कहा कि दिवाली और दशहरा के समय इसे धारण करना। देवराज ने ये वस्तुएं इसी प्रकार धारण कर ली। इस पर रतन–बाबा ने आशीष देते हुए कहा कि 'तुम्हारा राज्य विस्तार होगा तथा इस क्षेत्र पर तुम्हारे वंशजों का चिरस्थायी राज्य रहेगा, राज–गद्दी पर आसीन होते समय रावल की पदवी और जोगी का वेष धारण करें'' ।[५]

भाटी शासकों ने तब से रावल की उपाधि धारण कर रतननाथ के बताये नियमों का पालन किया। भाटियों पर निरंतर आक्रमण होते रहे परन्तु उन्होंने आत्मबल से उनका सामना किया व अपने राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने में सफलता पाई। अलाउद्दीन खिलजी आदि शासकों के आक्रमणों के जैसलमेर के भाटियों ने मुंह तोड़ जवाब दिये तथा वे स्वतंत्र शासक के रूप में अपनी पहचान देशी राज्यों के विलीनीकरण तक देते रहे।

नाथों से भाटी शासक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने जैसलमेर में अन्य सम्प्रदाय के साधुओं को अपने यहां स्थान नहीं दिया। यद्यपि महारावल अमरसिंह ने हरवंश गिरि के चमत्कारों से प्रभावित होकर सभी सम्प्रदाय के साधु सन्तों को जैसलमेर में प्रवेश करने की स्वीकृति प्रदान कर धार्मिक उदारता का परिचय दिया तथापि नाथों के प्रति उनका श्रद्धाभक्ति का भाव बना रहा। जैसलमेर नगर और उसके आसपास समय समय पर नाथों के बने 'थान' और मठ[६] इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।[x]

**मारवाड़**

मारवाड़ का राठौड़ राजघराना नाथों के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। यहां के राठौड़ों की नाथों के प्रति श्रद्धा–भक्ति योगियों के आशीष से जुड़ी हुई है। खेड़ के स्वामी राव कान्हड़दे के भाई राव सलखा राठौड़ के कोई संतान नहीं थी। वे एक बार जंगल में आखेट के लिये निकले थे वहां एक रावल योगी से भेंट हुई। सलखा ने योगी की आज्ञा लेकर उसके कमंडल से पानी पिया और अपने घोड़े को भी पिलाया परन्तु जल पात्र पानी से भरा हुआ ही रहा। यह चमत्कार देखकर राव सलखा योगी से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने पुत्र प्राप्ति की इच्छा व्यक्त

की। इस पर योगी महात्मा ने एक गोला और चार सुपारियाँ देकर कहा कि यह अपनी रानी को खिला और चार पुत्र पैदा होंगे, बड़े पुत्र माला का नाम मल्लीनाथ रखना और टीका उसको देना। काल प्राप्त कर सलखा के चार पुत्र हुए।

रतननाथ ने उपस्थित होकर ज्येष्ठ पुत्र को योगी के कपड़े पहनाये और उसका नाम मल्लीनाथ रख कर यह आशीर्वाद दिया कि सम्पूर्ण महेवा पर तुम्हारा अधिकार होगा। योगी के आशीर्वाद से न केवल मल्लीनाथ का जन्म हुआ बल्कि एक बड़े भूभाग का स्वामी होने का सौभाग्य भी उन्हें मिला। वे पहले अपने ताउ राव कान्हड़दे के प्रधान रहे अनन्तर महेवा का राज्य हस्तगत करने में सफल हुए।[7] आगे चलकर उन्होंने योगक्रिया से सिद्धि प्राप्त करली।[x]

आहोर जिले के अलावा गांव की एक ऊँची पहाड़ी की गुफा में मल्लीनाथ का मन्दिर बना हुआ है। इसके बारे में ऐसी मान्यता है कि मल्लीनाथ की बहन डोडियाली के चौहान ठाकुर को ब्याही गई। वे एक बार उससे मिलने के लिए गये। वहां सिद्ध पुरुष मल्लीनाथ के दर्शनार्थ गांव की औरतें इकट्ठी हुई और मल्लीनाथ से निवेदन किया कि गांव में जल का अभाव है दूर से सिर पर रखकर पानी लाना पड़ता है। तब मल्लीनाथ ने कहा कि जल–पात्र {मटका} पर ढक्कन नहीं लगावें पानी कभी कम नहीं होगा। डोडियाली गांव में आज भी पानी के मटकों पर ढक्कन नहीं लगाया जाता है। मल्लीनाथ की बहन रोटियां बनाने से परेशान थी उसने अपना दुःख प्रकट किया तब मल्लीनाथ ने कहा कि तुम कटोरदान के ढक्कन नहीं लगावें उपर कपड़ा डालदें एक बार रोटियाँ बनाने के बाद चाहे कितने ही मेहमान आवें पूर्ति होती रहेगी।

इस प्रकार की चमत्कार की ये बातें जब गांव के लोगों ने सुनीं तो मल्लीनाथ के दर्शनार्थ लोग उमड़ पड़े और अपनी व्यथा सुनाने लगे। मल्लीनाथ जिस पोल में विराजमान थे, उठकर चले गये और डोडियाली के पहाड़ को चीरते हुए दूसरी ओर अलावा गांव में प्रकट हुए। वहीं उनका मंदिर है जहां उनकी अश्वारूढ़ प्रतिमा बनी हुई है।

यह भी कहा जाता है कि मल्लीनाथ जी की मृत्यु नहीं हुई वे यहीं अलोप* हुए। मल्लीनाथ का जीवन योग साधना से रंगा हुआ रहा। वे एक कुशल शासक और लोक देवता के रूप में प्रख्यात हुए। तिलवाड़ा में इनके नाम का मेला लगता है। इनकी प्रतिमा जोधपुर किले में भी विराजमान है राजघराने के घरेलू अवसरों पर इनकी पूजा अर्चना की जाती है। इतना ही नहीं जैसलमेर के भाटी शासकों की आस्था इनके प्रति रही है। रावल कल्याणदास के कुंवर मनोहरदास ने श्रावण वदि १४, १६७५ को संगमरमर की बनी मल्लीनाथ की प्रतिमा {पुतली} उनके जन्म स्थल गोपड़ी गांव में स्थापित की जैसा कि उस पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि राव चूंडा अपने बड़े पिता रावल मल्लीनाथ के आशीर्वाद से ही मंडोर लेने मे सफल हुआ। और तो और जोधपुर गढ़ के स्थापना सूत्र में चिड़ियानाथ के आशीर्वाद की किरणें दिखाई देती है।[८] सही अर्थों में देखा जाय तो नाथयोगियों के आशीर्वाद से पल्लवित रावल मल्लीनाथ राठौड़ से ही मारवाड़ के राठौड़–राजवंश की शक्ति का उदय हुआ और फिर इनका वर्चस्व अनवरत बढ़ता ही गया। प्रारम्भ में जोधपुर के राठौड़ राजघराने की नाथ–योगियों के प्रति श्रद्धा भक्ति जरूर रही परन्तु राज्य प्रबन्ध में कोई विशेष प्रभाव उनका रहा हो ऐसा प्रमाण नहीं मिलता। १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में नाथ संप्रदाय का उत्कर्ष एक नए सिरे से प्रारम्भ हुआ और राजघराने की अटूट श्रद्धा के फलस्वरूप उसकी आभा तीन–चार दशकों तक बनी रही। नाथों के प्रति असीम आस्था रखने वाले वे शासक थे– महाराजा मानसिंह, जिन्होंने नाथों के आशीर्वाद से जोधपुर की गद्दी पर विभूषित होने का गौरव पाया।

महाराजा विजयसिंह के जीवन काल में ही उनके कुंवर भोमसिंह व गुमानसिंह की मृत्यु हो गई। इसलिये उक्त महाराज की मृत्यु के पश्चात् भोमसिंह का पुत्र भीमसिंह जोधपुर की गद्दी पर आसीन हुआ और गुमानसिंह का पुत्र मानसिंह जालोर दुर्ग में रहा। मानसिंह जोधपुर की गद्दी प्राप्त करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहे इसलिये महाराजा भीमसिंह ने उनका बल तोड़ने

के लिये जालोर पर अनेक बार चढ़ाईयां कीं। लेकिन किला खाली कराने में उन्हें सफलता नहीं मिली। जालोर किले में रहते हुए मानसिंह आयस देवनाथ के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो जाने से उनके भक्त बन गये। दीर्घ काल तक दुर्ग का घेराव रहने के कारण खाद्य सामग्री व पेय जल का अभाव हो गया और विपत्ति के काले बादल मानसिंह पर मंडराने लगे। ऐसी स्थिति में उन्होंने दीपावली के दिन दुर्ग खाली करने का निश्चय कर महाराजा भीमसिंह के सेनापति इन्द्रराज सिंघवी को यह सूचना भिजवादी। इस बीच जलंधरनाथ के आशीर्वाद से आयस देवनाथ ने यह भविष्यवाणी की कि कार्तिक शुक्ल पक्ष की छट {२१ अक्टूबर, १८०३} तक वह जालोर दुर्ग में ही रहे क्योंकि जोधपुर शासक बनने का उनका योग बना है। आयसजी की वाणी सत्य हुई। १६ अक्टूबर १८०३ को महाराजा भीमसिंह की मृत्यु हो गयी। जब इसकी सूचना अगले दिन जालोर में इन्द्रराज सिंघवी को मिली तो उसने जालोर किले का घेरा उठा दिया और महाराजा मानसिंह को जोधपुर की बागडोर संभालने का निमंत्रण दिया।

महाराजा मानसिंह नाथों से बहुत प्रभावित हुए उन्होंने देवनाथ को ही नहीं उनके भाई हरनाथ, सूरतनाथ, भीमनाथ और ओपनाथ को जालोर से बुलाया तथा स्वयं महाराजा ने अगवानी में शहर के बाहर पहुंच कर बड़ी श्रद्धा के साथ उनका स्वागत किया। १८०४ ई में आयस देवनाथ को अपना गुरु बनाकर महामन्दिर का निर्माण कराया और अनेक गांव दान में प्रदान किये। इतना ही नहीं मारवाड़ के मुख्य परगनों में नाथ मठों के निर्माण हेतु आदेश पारित किये। महामन्दिर के प्रतिष्ठा के समय नाथ योगियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें सत्तर प्रमुख योगियों को खिलअत आदि मूल्यवान वस्तुएं देकर सम्मानित किया गया।

महाराजा मानसिंह की नाथों के प्रति अटूट श्रद्धा एवं भक्ति के फलस्वरूप जोधपुर इस संप्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन गया। विभिन्न आयोजनों व राजकीय क्रियाकलापों में नाथों की भागीदारी प्रकट होने लगी। १८२७ {वि.सं. १८८४ अश्विन सुदि १५} में महाराजा ने आयस लाडूनाथ के हाथों से २५ हाथी कवियों को प्रदान कराये। महाराजा ने सरकारी पट्टे परवानों पर

जलंधरनाथ अंकित करने का आदेश दिया। मारवाड़ के उमरावों की गुटबन्दी, राज्य की आर्थिक दशा और अंग्रेजों के दखल के फलस्वरूप महाराजा मानसिंह का जीवन संघर्षमय रहा। उनके कष्ट साध्य जीवन में नाथ भक्ति ही सबसे बड़ी शक्ति रही, जिसके कारण उनका आत्मबल बना रहा और समय समय पर उठने वाली परिस्थितियों का धैर्यपूर्वक समाधान ढूंढ़ निकालने में उन्होंने सफलता पाई। उनकी कलम से नाथ काव्य कृतियों का सृजन हुआ जो एक साहित्य की विपुल निधि और हमारे राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है।

यह कहना उचित होगा कि नाथों के मुख से निकला आशीर्वाद खाली नहीं गया और उनकी भविष्यवाणियां सत्य निकलीं तथा जब कभी यहां के महाराजाओं ने राज्य विस्तार के लिये बीड़ा उठाया या वे अपनी कीर्ति फैलाने को उत्सुक हुए उन्होंने नाथ गुरुओं का स्मरण कर अपना आत्मबल बढ़ाया। उनकी श्रद्धा भक्ति के फलस्वरूप राजस्थान में अनेकानेक मठ मन्दिरों का निर्माण होने के साथ जन जन में नाथ संप्रदाय का प्रचार हुआ। योगियों की योग साधना और उनके चमत्कारों ने केवल राजा महाराजाओं को ही नहीं सामन्ती वर्ग और प्रजाजन को भी प्रभावित किया। राजस्थान के पांच पीर जिनकी समाज में बड़ी मान्यता रही है, उनकी साधना नाथ संप्रदाय के एक और उज्ज्वल पक्ष को उदघाटित करती है। वस्तुतः नाथों के क्रमबद्ध इतिहास और इस सम्प्रदाय के आधारभूत सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में एक नये सिरे से इस विषय पर व्यापक अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

X हारीत ऋषि, लकुलीश संप्रदाय, पाशुपत मत एवं नाथों के अन्तर्गत उसके समावेश का गंभीर विवेचन डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ''नाथ संप्रदाय'' में किया है। — संपादक

१ मुहता नैणसी ख्यात भाग १ पृ. १५—१६ सं. बदरी प्रसाद साकरिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

२ रावल राणाजी री बात पृ.३, सं. डॉ. हुकमसिंह भाटी, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर

३ बापा रावल ने मान मोरी से चित्तौड़ हस्तगत किया था। मान मोरी का अभिलेख वि. सं. ७७० {७१३ ई.} का चित्तौड़ के निकट पुटोली गांव से मिला है। बापा ने मान मोरी से चित्तौड़ लिया था इसलिये इसका समय इसके आस—पास स्थिर होता है।

४ श्री भंवरलाल नाहटा के संग्रह में संगृहीत ''महाराणा प्रताप री बात''

५ मुहता नैणसी री ख्यात भाग —२ पृ. २३—२४, रा. प्र.वि.प्र. जोधपुर तथा जैसलमेर की ख्यात पृ. ३८ सं. डॉ. नारायणसिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी।

६ नाथों के मठ—मन्दिरों की जानकारी के लिये देखें जैसलमेर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, नन्दकिशोर शर्मा

X समस्त भारत एवं प्रमुखतः राजस्थान के नाथ संप्रदायों के आसनों का जोधपुर के शासक मानसिंह {१८०३–४३ ई.} ने सर्वेक्षण कराया था। यह बही म. मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में सुरक्षित है एवं उस पर आधारित डॉ. सोहन कृष्ण पुरोहित का एक आलेख यहाँ पर दिया गया है। — संपादक

७ मुंहता नैणसी री ख्यात भाग १ पृ. २८२–८४ ''सिद्ध जोगी री दवा {आशीर्वाद} सूं मल्लीनाथ रावल कहायो'' जोधपुर राज्य री ख्यात पृ. ३१ सं. डॉ. रघुवीरसिंह

X मल्लीनाथ में विरक्ति भाव जागृत होने का कारण उनकी पत्नी रूपादे है। वे उगमसी भाटी की शिष्या थीं। नाथों की साधना से हटकर उन्होनें मारवाड़ में सर्वप्रथम भक्तिमार्ग का प्रचार किया। राजस्थान के संत शिरोमणिः राणी रूपादे और मल्लीनाथ; ले. डॉ डी. बी. क्षीरसागर– संपादक

X इस घटना को ''सुरग–पावड़ी'' नामक लोककाव्य में विस्तार से दिया गया है। रामदेव और रूपादे के भक्त इसे प्रायः गाते हैं — संपादक

८ जोधपुर राज्य का इतिहासः डॉ. मांगीलाल व्यास. पृ. ४१

९ महाराजा मानसिंह री ख्यात पृ. २२–२३ सं. डॉ. नारायणसिंह भाटी, हकीकत बही संख्या ९, पृ. ३५, अभिलेखागार बीकानेर, बांकीदास री ख्यात पृ. १७२ सं. नरोत्तम स्वामी, प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, पद्मजा शर्मा महाराजा मानसिंह और उनका काल पृ. १४४

## नाथ सम्प्रदाय में रावल पंथ

मदननाथ रावल 'मृदुल'

नाथसम्प्रदाय नवनाथ, चौरासी सिद्ध और बारह से अठारह पंथों के विशाल जोगी समूह से जाना जाता है। मैं यहां न तो नाथ अथवा नाथ संप्रदाय को परिभाषित करूंगा और न ही उसके आदि अर्थों में जाऊंगा। मैं यहां सीधा–सीधा नाथ सम्प्रदाय के एक प्रमुख रावल पंथ की पहचान को रेखांकित करूंगा। पर यहां नवनाथ और चौरासी सिद्धों को भी रेखांकित करना चाहूंगा क्योंकि इन्हें रेखांकित किये बिना रावल पंथ को समझना असंभव है।

नव नाथ चरित्र में मत्स्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ, रेवणसिद्धनाथ, वरसिद्धनाथ, चरपटीनाथ, गोरक्षनाथ, भृर्तृहरिनाथ, कानिफनाथ व करभंजननाथ का उल्लेख हुआ है। यहां रावल पंथ का सीधा सीधा स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। हालांकि नवनाथ चरित्र में नवनाथों के उल्लेख में कथाबीजरूप नागनाथ जो रावल पंथ से अवगत है, कहीं कहीं रेखांकित हुआ है। अग्रलिखित चौरासी सिद्धों में क्रम संख्या ४० पर नागनाथ, ४६ पर जोग रावल तथा ५० पर अंगम रावल का उल्लेख शिव गोरक्ष की पुस्तक में मिलता है। शोधार्थियों की सुविधा के लिए मैं यहां ८४ सिद्धों की क्रमबद्धता को प्रस्तुत कर रहा हूं–

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | आदिनाथजी | २ | उदयनाथजी | ३ | सत्यनाथजी |
| ४ | सन्तोषनाथजी | ५ | अचलनाथजी | ६ | कन्थड़ीनाथजी |
| ७ | चौराह्निनाथजी | ८ | मत्स्येन्द्रनाथजी | ९ | गोरक्षनाथजी |
| १० | चरपटनाथजी | ११ | विचारनाथजी | १२ | श्रृङ्‌रीवनाथजी |
| १३ | शावरानन्दनाथजी | १४ | नागार्जुननाथजी | १५ | बनखंडीनाथजी |
| १६ | धूर्मनाथजी | १७ | गिरिवरंनाथजी | १८ | बालकनाथजी |
| १९ | श्रवणनाथजी | २० | रत्ननाथजी | २१ | तारानाथजी |
| २२ | चन्दननाथजी | २३ | पिप्पलनाथजी | २४ | सुन्दरनाथजी |
| २५ | सरस्वतीनाथजी | २६ | प्रभुनाथजी | २७ | भावनाथजी |
| २८ | पाणिनाथजी | २९ | वीरनाथजी | ३० | सपादनाथजी |
| ३१ | कायानाथजी | ३२ | गोरक्षनाथजी | ३३ | खार्पूनाथजी |
| ३४ | खेचरनाथजी | ३५ | मण्डपनाथजी | ३६ | लौपिपादजी |
| ३७ | ज्वालानाथजी | ३८ | प्रण्यपादजी | ३९ | गम्भीरनाथजी |
| ४० | नागनाथजी{रावल} | ४१ | ब्रह्मनाथजी | ४२ | रेवणनाथजी |
| ४३ | अड़वंगनाथजी | ४४ | विरूपवंगनाथजी | ४५ | भेरूंनाथजी |
| ४६ | कर्मनाथजी | ४७ | मल्लिनाथजी | ४८ | पूर्णमल्लनाथजी |
| ४९ | जोगरावलजी{रावल} | ५० | अंगमरावलजी{रावल} | ५१ | शीलनाथजी |
| ५२ | शिवनाथजी | ५३ | मकरध्वजनाथजी | ५४ | गोविन्दनाथजी |
| ५५ | गहनीनाथजी | ५६ | निवृतिनाथजी | ५७ | ज्ञाननाथंजी |
| ५८ | मुक्तानाथजी | ५९ | सोपाननाथजी | ६० | चाङ्‌गदेवनाथजी |
| ६१ | विभाण्डकनाथजी | ६२ | भग्रभाण्डनाथजी | ६३ | याज्ञवल्क्यनाथजी |
| ६४ | चतुर्भुजनाथजी | ६५ | लक्ष्मणनाथजी | ६६ | भगवन्तनाथंजी |
| ६७ | उपन्तनाथजी | ६८ | धीरजनाथजी | ६९ | शुकनाथजी |
| ७० | वामनाथजी | ७१ | मार्कण्डेयनाथजी | ७२ | जलन्धरनाथजी |
| ७३ | कानिपानाथजी | ७४ | चिड़ियानाथजी | ७५ | ब्रघनाथजी |
| ७६ | सारंनाथजी | ७७ | चोलनाथजी | ७८ | कपिलनाथजी |
| ७९ | मल्लिकानाथजी | ८० | पुण्यानन्दनाथजी | ८१ | स्वात्मनाथजी |
| ८२ | विश्वनाथजी | ८३ | आग्रनाथजी। | | |

मैं यहां यह भी स्पष्टीकरण करना चाहूंगा कि नाथ सम्प्रदाय मात्र गोरक्ष द्वारा ही प्रवर्तित नहीं है अपितु 'शिव' के द्वारा भी प्रवर्तित है और समूचा नाथ सम्प्रदाय इन दोनों में विभाजित है। अर्थात् नाथ सम्प्रदाय के कुछ पंथ शिव के द्वारा तथा कुछ गोरक्ष के द्वारा चलाये गये हैं। गोरक्ष द्वारा प्रवर्तित पंथों में

१. हठनाथ, २. आई पंथ के चौलीनाथ, ३. चांदनाथ कपिलानी, ४. बैराग पंथ, ५. जयपुर के पावनाथ, ७. धजनाथ महावीर हैं तथा 'शिव प्रवर्तित १. भुज कच्छ के कंठरनाथ २. पेशावर और रोहतक के पागलनाथ ३. अफगानिस्तान के रावल ४. पंख {पंक} ५. मारवाड़ के वन ६. गोपाल या रामके।

यहां यह उल्लेखनीय है कि पेशावर और रोहतक के पागलनाथ तथा अफगानिस्तान के रावल दोनों ही रावल पंथ से सम्बन्धित हैं। ये दोनों ही शिव द्वारा प्रवर्तित हैं तथा ये आराध्यदेव के रूप में शिव अथवा हिंगलाज मैया को मानते हैं।

***इतिहास के पृष्ठों में रावल पंथ***

धर्म ग्रन्थों, शोधकर्ताओं, टीकाकारों, रचनाकारों, धर्माचार्यों की रचनाओं के अतिरिक्त इतिहासकारों के ग्रन्थों में भी नाथ सम्प्रदाय के इस प्रमुख पंथ के सन्दर्भ में ऐतिहासिक प्रमाण संगृहीत हैं—

'ब्रिग्ज के अनुसार रावलों का स्थान रोहतक और सुदूर अफगानिस्तान तक में स्थित है। पागलनाथ व रावल सम्प्रदाय के मिश्रित हो जाने के संकेत भी यहां दिये गए हैं। अरजन नंगा, ज्वालामुखी के माननाथ से भी उन्होंने सम्बन्ध माना है। मुस्लिम योगियों में मादिया तथा गल दो योगी हैं जिन्हें पागल पंथी कहा ज़ाता है। इन्हें रावल गल भी कहा जाता है तथा इनका मुख्य स्थान रावलपिण्डी माना गया है। ये लकुलीश तथा हिंगलाज के पुजारी हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ नाथ सम्प्रदाय के पृष्ठों में पंजाब व अफगानिस्तान में प्रचलित कथाओं का उल्लेख किया है। उनके द्वारा दी गयी एक कथा के अनुसार— सियालकोट के राजा के दो पुत्र थे जिनका नाम क्रमशः राजा रसालू तथा पूरणभगत था। राजा ने अपने पुत्र पूरणभगत को किन्हीं कारणों से बारह वर्ष के एकान्तवास में रखा। इस बीच राजा ने एक चमार कन्या से जिसका नाम लूण था, विवाह रचा लिया। एकांतवास की समाप्ति पर जब पूरणभगत माता—पिता के पास लौटे तो उन्होंने अपनी विमाता लूण को सहजभाव से मां कहकर पुकारा, पर विमाता लूण को लगा कि वह उस पर प्रहार कर रहा है, फलस्वरूप वह ईर्ष्या एवं क्रोध में पागल हो

गयी। उसने राजा से कहकर पूरण भगत के हाथ–पांव कटवा दिए तथा उसे चौरंगा बना दिया। आंखे फोड़ दी गईं। यहां तक कि उसे कुएं में डलवा दिया गया। कथा में बताते हैं इस समय वहां गोरक्षनाथ प्रकट हुए तथा उन्होंने अपने भक्त का उद्धार किया। तब ही से वह पूरणभगत चौरंगीनाथ योगी के रूप में प्रसिद्ध हुए। दूसरी तरफ कबीर नामक पुस्तक में भी ऐसे ही प्रमाण मिलते हैं कि रावल लोग लाकुल या लकुलीश सम्प्रदाय से पाशुपत थे। जहां पागलनाथी एवं चौरंगीनाथ को इनका प्रवर्तक माना गया है।

महाभारत काल में भी कुछ तथ्य मिले हैं। महाभारत के सभापर्व के २७–५ में लिखा है कि जब अर्जुन उत्तर देश जय करने गए थे, वहां उनका 'उलूक' नामक जाति से सामना हुआ था। उलूक लाकुलीश सम्प्रदाय के शैव थे। उलूक गांधार नरेश शकुनी के भाई का भी नाम था। इससे स्पष्ट होता है कि अफगानिस्तान रावलों का प्रमुख धाम रहा है।

बलदेव उपाध्याय लिखित विश्वभारती पत्रिका खण्ड ६ पृष्ठ २४५ में प्रकाशित एक लेख में स्पष्ट किया गया है कि पाशुपतों के सम्प्रदाय का जन्म उपनिषद् काल में हो चुका था। राजपूताने का इतिहास, शिवपुराण भागवत के आधार पर भी लकुलीश का जन्म बताया गया है। मथुरा में उपलब्ध शैवस्तम्भ, उस पर उत्कीर्ण शिलालेखों में लकुलीश का समय बताया गया है जो वि. सं. के दो सौ वर्ष बाद ठहराया जाता है। यहां भी रावल शब्द लाकुल का रूपान्तरण माना गया है। कुछ स्थानों पर रावलों के पशुपत सम्प्रदाय के होने के कारण मात्र जोगी कहकर भी पुकारा जाता है।

चित्तौड़ के बप्पा के साथ रावल शब्द को अधिक प्रसिद्धि मिली। द्विवेदी ने कई प्रश्न खड़े किए हैं। बप्पा के साथ 'रावल' शब्द अपभ्रंश में चलता है? या लेखों में संस्कृत {राजकुल} शब्द का ही व्यवहार है? विचारणीय बिन्दु है। इसका समधान भी उन्होंने निम्न तर्कों से दिया है– वे लिखते हैं कि बप्पा से गुरु गोरक्षनाथ के मिलन की प्रसिद्धि कई विद्वानों ने लिखी है। राजपूताना के इतिहास में भी बप्पा का समय ८वीं ईसवी तथा महाराणा कुम्भा के समय एकलिंगमाहात्म्य में ७५३ ई. माना गया है। बप्पा के

गुरू हारीत ऋषि थे जो कि लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष थे। एकलिंगजी के मंदिर में स्थापित लेख जो ६७१ ई. में लिखा गया था में कहा गया है कि बप्पा ने ही इस मंदिर की प्रतिष्ठा कराई थी। इसके अतिरिक्त बप्पा काल का अजमेर में एक सिक्का भी मिला था उससे भी सिद्ध होता है कि वे लकुलीश पाशुपत के अनुयायी हो गए थे। वहीं राजपूताने के इतिहास पृष्ठ ४१५–४१६ में दर्शाया गया है कि ७–८ वीं शताब्दी में प्रतिभाशाली विद्वान् सम्मान पाने लगे थे। ८ वीं शताब्दी में बप्पा ने भी रावल उपाधि धारण की थी।[x] वे श्रद्धावश इस सम्प्रदाय के अनन्य भक्त हुए थे। इसके अतिरिक्त सोमनाथ में प्राप्त लेख जो १२८७ का है, के अनुसार गोरक्षनाथ एवं लकुलीश को एक साथ दर्शाया गया है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि रावल नाम परिचित योगियों की समूची शाखा वस्तुतः लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय की ही उत्तराधिकारी है।

लेकिन डॉ. बर्गीज ने एलोरा {वेरुल} गुफाओं में एक शिव योगी के चित्र का अंकन प्रकाशित किया है, उसमें शिव बाएं हाथ में लाठी लिए हुए पद्म पर समासीन हैं और पद्म नागों के फण पर है। 'फ्लीट' ने इसे लकुलीश की मूर्ति माना है। इससे 'रावलों' के अथवा रावल पंथ का नागनाथी होने का प्रमाण मिलता है। शिव प्रवर्तित शाखा में भी ऐसा ही माना गया है। वहां भी नागनाथ एवं रावल पंथ को एक ही माना गया है। वहीं द्विवेदीजी अपनी पुस्तक में पंजाब के योगी रावलों की मर्यादा को उंचा नहीं मानते। द्विवेदी एक स्थान पर लिखते हैं कि पंजाब में हैसी नामक निम्न समझी जाने वाली जाति के लोग भी इनके अर्थात् रावलों के घर से अन्नजल ग्रहण नहीं करते। त्रिपुरा, ढाका, में रावल जोगी हैं, वहां वे वस्त्र बुनना, मांगना, चुना बनाने का कार्य करते हैं। हाथ देखकर करामात दिखाकर अपनी आजीविका चलाते हैं। कन्नड़ भाषा में प्रकाशित नाथवाणी के सम्पादक डॉ. श्री श्री श्री नीलकंठनाथ महास्वामी योगाश्रम कुलपा पालियां, बैंगलौर ने अखिल भारतीय नाथ समाज के अध्यक्षीय भाषण में एक स्थान पर विचार व्यक्त किए हैं उनमें {प्रकाशित है} में कहा गया है कि हुबली धारवाड़ {कर्नाटक} में भारी संख्या में रावल योगी निवास करते हैं। वे मूलरूप से मेवाड़ राजस्थान के हैं। कुछ प्रदेशों

में इस पंथ के लोग संगीत से सीधा जुड़ जाते हैं तथा ये लोग क्षेत्रीय अथवा परम्परागत प्रभाव के कारण रावळ, रावळिये, रावलिया, रावुळ, राहुल तथा रावळ जोगी के रूप में जाने जाते रहे हैं। तथा अपने नाम के आगे जोगी, योगी, जोगेश्वर, योगेश्वर, नाम का भी प्रयोग करते हैं। यथा लखा रावल जोगेश्वर समदरावल जोगी इत्यादि। राजपूताने में भी रावल तथा महारावल का प्रयोग किया जाता रहा है। डॉ. द्विवेदी ने इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि रावल शब्द जाति वाचक नहीं होकर उपाधि है।

***वर्तमान में राजस्थान के रावलपंथ का स्वरूप***

प्रदेश में मेवाड़, मारवाड़ के बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा अजमेर एवं पाली जिलों में रावलों की जनसंख्या पाई जाती है। यहां ये रावल अथवा रावल जोगी अथवा जोगी के रूप में माने जाते हैं। नाथ सम्प्रदाय के रावल पंथ के ये योगी कनफटे योगियों की भांति भगवा वस्त्र, कानों में कांच, लाख, हाथीदांत अथवा स्वर्ण से बनी मुद्राएं {कुंडल} पहनते हैं। गले में काले धागों की सेली, नांद, सिंगी धारण करते हैं। तुम्बी, झोली, चिमटा या डंडा अपने साथ रखते हैं। घरबारियों के अतिरिक्त 'नागा' भस्म भी लगाते हैं। मौत होने पर घर गुवाड़ी में समाधि देते हैं। ये आपस में मिलते हैं तो आदेश आदेश बोलकर एक दूसरे से आत्म साक्षात्कार करते हैं। एक कविता में रावलों के सन्दर्भ में इस तरह रेखांकित किया गया है—

> ''रावल सेली, सिंगी, सिरजट, झोली भगवा वेश
> कानों में कुण्डल भस्म शिव गोरक्ष को आदेश।।

हालांकि स्वतन्त्रता के बाद की पीढ़ी मे व्यापक परिवर्तन आया है। सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े इस पंथ के कुछ लोग आगे बढ़े हैं तथापि अभी भी अस्सी प्रतिशत लोगों की स्थिति पहले से भी बदतर हो गई है। अशिक्षा के कारण आज भी गांव में मांगकर खाते हैं। तथा वैसे इस पंथ का प्रमुख धंधा अलख जगाना तथा फेरी फिरना है वहीं शिवरात्रि को शिव आराधना करते हैं। रात रात भर जागकर भक्ति भजन करते हैं। स्वतन्त्रता के बाद ये खेती एवं पशुपालन भी करते

हैं। कुछ शिक्षित परिवार राजकीय सेवाओं में भी हैं। वहीं मेवाड़, बागड़ क्षेत्र के रावल जोगी जो जोगी के नाम से भी जाने जाते हैं वे गायकी के जरिये पेट भरते हैं। एक तारा अर्थात् कंछेरा एक वाद्ययंत्र होता है, वे अपने ही हाथों से इसका निर्माण करते हैं। एक बांस पर दो फुट की दूरी पर दो बड़ी, खोखली तूम्बियां बांध देते हैं। तार कसकर मधुर धुन बजाते हैं। समूह के समूह घर से निकलते हैं। घर घर जाकर वे कुछ जातियों को छोड़कर प्रत्येक जाति के लोगों से मांगते हैं। रोटी, कपड़ा, धान पैसा लेते हैं। अलख अलख कह कर आटा मांगते हैं। हिंगलाज देवी के लिए वे लाल कपड़ा भी मांगते हैं। वे अपने साथ एक बड़ी झोली रखते हैं। वे नाचते गाते हैं। हाथ में लालझंडी भी रखते हैं। उनके अन्य साथी हिरण का सींग भी बजाते हैं। कुछ लोग छोटी सींग भी बजाते हैं। कंदेरों पर शिव–पार्वती, लीला घोड़ा, वीर तेजा, प्रताप, निहाल दे, सुलतान और मकरसक्रांति पर गलालेंग गाते हैं। ये जादू, टोना, तंत्र–मंत्र, सांप–बिच्छु, पेट दर्द मंत्रों तथा झाड़ा देने में प्रवीण होते है। चीमटे, झाड़ू या जूते से झाड़ा मंत्र भी करते हैं। लोग रोते हुए आते हैं और इनके घर से हंसते हुए जाते हैं। तो कुछ रावल मारवाड़ के गांवों में होने वाली सत्संगों में वीण एवं हारमोनियम के संगीत के साथ भजन कीर्तन भी करते हैं। मारवाड़ में अन्नारावल जी एवं पन्ना रावल जी दोनों भाई भजन कीर्त्तन तथा नैतिक वार्ताओं के लिए प्रसिद्ध हैं। वहीं अजमेर जिले में स्थित 'रावली धूणी' महासन्त लाणा रावल जी के चमत्कारों के लिए विख्यात है।

भिक्षा मांगते समय ये रावल पंथी इन काव्य पंक्तियों को गाते हैं–

बैठ राजा, बैठ परजा, बैठ बन री हिरणी
हम क्यों बैठो जोगी, रावल सारी नगरी फिरनी।।"

"रावल जोगी क्या धन मांगे
खीर खाण्ड का भोजन मांगे
कजली बन का हाथी मांगे
सूरजजी का रथ मांगे
मोहन भांग का लूंदा मांगे
ऊपर घी का झारा मांगे.......।"

रावल पंथ के इन जोगियों के चार उपपंथ {जातियां} जिसे लोक भाषा में लोग छूरी शब्द से संबोधित करते हैं। ये हैं गेल रावल की छूरी, भद्ररावल की छूरी, संतोष रावल की छूरी, मांगड़जी रावल री छूरी। अन्य जातियों की भांति इनमें पंवार, राठौड़, सिसोदिया, चौहान भाटी, देवड़ा इत्यादि गोत्र भी पाये जाते हैं। आजकल रावल पंथ के लोग गोरक्ष प्रवर्तित पंथ हठनाल, आई पंथ के चौरंगीनाथ, चांदनाथ, कपिलानी, बैरागपंथ एवं पाव पंथ के साथ धुल–मिल रहे हैं तथा सामाजिक परिवर्तनों के कारण एक दूसरे के निकट आ रहे हैं।

X *रावल जैसलमेर के भाटी शासकों के नाथ गुरुओं की उपाधि थी– देरावर के किले की प्रतिष्ठापना भी रावल रतननाथ ने की थी। परवर्ती काल में रामदेव के समकालीन राठौड़ शासक मल्लीनाथ को भी उनके विरक्त जीवन में रावल मल्लीनाथ नाम से ही जाना जाता रहा है। – संपादक*

# नाथसंप्रदाय और मारवाड़ के पंच पीर

डा. सोनाराम विश्नोई

मारवाड़ के पांच पीरों के विषय में लोक विख्यात दोहा है कि –

पाबू हडबू रामदे, मांगलीया मेहा।

पांचो पीर पधारजो, गोगाजी जेहा।।

अर्थात् पाबूजी राठोड़, हड़बूजी सांखला, रामदेवजी तुंवर और मेहोजी मांगलियो और गोगाजी चौहान।

लोक प्रचलित इस कथन में लोक साहित्यानुसार संख्यावाचक रुढि प्रयुक्त प्रतीत होती है। इन पांच नामों के अतिरिक्त एक महान् विभूति और है जिसका नाम मारवाड़ के लोक देवताओं तथा पीरों में होना आवश्यक है। मण्डोर में स्थित देवताओं की 'साल' में तो प्रस्थर खण्ड पर निर्मित इन सभी लोक देवताओं

की मूर्तियों के साथ उनकी प्रतिमा भी है। वे हैं तत्कालीन मारवाड़ के शासक मेहवे के रावल मालजी, जो बाद में रामदेवजी के अनन्य भक्त तथा अपने युग के प्रसिद्ध योगसाधक व संतशिरामणि ऊगमसी भाटी के शिष्या (रूपादे) की प्रेरणा से ऊगमसी भाटी के शिष्य बन कर कर रावलभाल से मल्लीनाथ हो गये।

तिलवाडा में लूनीनदी के तट पर योगसाधना करते हुए रानी रूपांदे व मल्लीनाथजी समाधिस्थ हुए जहां आज भी प्रत्यक्ष पर्चा है। उनकी स्मृति में जो पशु मेला आयोजित होता है, वह राजस्थान के पशु मेलों में सर्वथा विशिष्ट है।

ऊगमसीभाटी निश्चय ही एक सिद्ध योगी थे। उनका जीवन वृत्तान्त शोध का एक महत्वपूर्ण विषय है जो अभी तक सर्वथा अछूता है। मैं यहां इस राष्ट्रीय गोष्ठी में विराजमान शोध विद्वानों से आत्मानुरोध करता हूं कि इस विषय पर शोध कार्य हेतु कोई कटिबद्ध हो तो यह अकिचन यथा सामर्थ्य भरपूर योगदान हेतु सदैव तत्पर रहेगा।

इन लोकदेवताओं अथवा पीरों में नाथ सम्प्रदाय के दोनों पक्षों, क्रियात्मक पक्ष व साधना पक्ष में क्रियात्मक पक्ष प्रबल है। इनमें से केवल रामदेवजी ही एक ऐसे पीर है जिनकी वाणियों में नाथ सम्प्रदाय का साधना पक्ष प्रकट हुआ है तथा कृतित्व में विशेषकर चमत्कारिक लोक कल्याण के कार्यों में क्रियात्मक पक्ष प्रतिबिम्बित हुआ है। कहा भी है –

रमता राम रूणीचे आया,

परचे रै कारण पीर केवाया।

'चमत्कार को नमस्कार' कथन भी लोक जीवन में प्रतिष्ठित है। इन वीर पुरूषों ने अपने चमत्कारों से ही पीर विशेषण प्राप्त किया है। पीर शब्द मुस्लिम संस्कृति का है जिसका अर्थ सिद्ध महात्मा है। किंन्तु ये सभी हिन्दू वीर, हिन्दू समाज में देव के रूप में तथा मुस्लिम समाज में पीर के रूप में प्रतिष्ठित हुए। सत्य यह है कि हिन्दूओं ने भी इन्हें पीर कह कर पूजा, यह पूजा चमत्कारों से प्रभावित हुयी। चमत्कारों का सम्बन्ध योग

साधना से प्राप्त सिद्धियों से है। गोरा बादल चरित्र में भी प्रंसग आता है–

फिरत इ पग पयोनिधि पास, रीठु जोगी एक उदास।

साधई पवन सदाई तेह, जंगम जोग तणु गुण गेह।।

बेडासवार धरी निज नाथ, शंघल दीपि गयु गुरुनाथ

नजर समीपइ आयाजीसै, आयस हुए अलोपह तिसइ

पाबूजी राठोड़ द्वारा अपने भील सेवकों व हरिया राइका को पंचनद पार करवा कर लंकेउ गांव की सीमा में प्रवेश करना। मृत व भीलों द्वारा लिये जाने पर भी ऊंटनी को जीवित करना। जंगल {मरुस्थल} में असीम समुद्र दिखा कर गोगाजी को चमत्कृत करना। गोगाजी द्वारा सर्प का रूप धारण कर लेना, पाबूजी को भी पर्चा दिखाना। हडबू सांखला के शकुन विचार, पक्षियों की भाषा का ज्ञान तथा गाड़ी {बैलगाड़ी} का हवा में उड़ना प्रसिद्ध है। ये सभी चमत्कार ही उनके पर्चे कहलाये। इस प्रकार के पर्चे दिखाने की क्षमता योग साधना से प्राप्त सिद्धि के कारण है। इस प्रकार इन सभी वीरों में क्रियात्मक पक्ष प्रबल है।

रामदेवजी में साधना पक्ष व क्रियात्मक पक्ष दोनों का सुन्दर समन्वय है। उनकी वाणियां इस तथ्य की पुष्टि करती है। यथा–

अमर बधावो म्हारै होय रह्यौ,

होय रया मंगलाचार।

आया हो निकलंक नाथ म्हारै पावणा

जूना जोगेसर अपार।।

हालो में ए सइयां जुगत सूं बधावां,

नहींतर रह जासां लारं।।

योग साधना द्वारा इस काया में ही निष्कंलकनाथ {परब्रह्म} जो अजर, अमर और अनादि नाथ है को प्राप्त करके साधक की चित्तवृतियां स्वागत गान कर रही है। मंगल गीत. गा रही

है तथा साधक की चित्तवृत्तियां परमगुरु की पूजा में चढ़ गई है। जीवात्मा अपनी सहेलियों {चित्तवृतियों} को कह रही है कि हे सखियों! आओ युक्ति पूर्वक इन्हें बहाकर अर्थात् वन्दना करके प्राप्त करलें, यदि युक्ति नहीं की तो पीछे रह जायेंगी {मोक्ष से वंचित रह जायेंगी}।

नाथ सम्प्रदाय पातज्जली योग की जटिल विधि को जनवाणी के माध्यम से तथा लोक–जीवन व लोक संस्कृति में व्याप्त तत्वों के साथ रूपक बांध कर प्रस्तुत किया गया है। रामदेवजी की मौलिकता ने योग की गूढ पद्धति को मधुर व सरल बना दिया।

उपयुर्क्त पंक्तियों में नाथ का अर्थ स्वामी है। जीवात्मा का स्वामी। जीवात्मा व परमात्मा का यह वर्णन आध्यात्म का विषय है। अध्यात्म के वर्णन में दाम्पत्य प्रेम, माधुर्य भक्ति का पुट देकर कितना सुन्दर समन्वय किया है। इसमें योग और भक्ति का तो संमन्वय हुआ ही है साथ ही सूफी मत का समन्वय भी स्पष्ट प्रतीत होता है।

समन्वयवादी दृष्टिकोण ही रामदेवजी की विशिष्टता है। इनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व समन्वय का प्रतीक है। अछूतोद्धारक और हिन्दू मुस्लिम एकता के महान् स्तम्भ के रूप में तो रामदेवजी का स्थान अन्य पीरों तथा लोकदेवताओं से पृथक् व विशिष्ट है। रामदेवजी के जीवन – दर्शन की यही विशेषता उनकी योग साधना सम्बन्धी रचनाओं में प्रतिबिम्बित हुई है।

साधना पक्ष उन्होंने अपनी वाणी में प्रस्तुत किया। योग साधना द्वारा ही निष्कलंकनाथ की प्राप्ति का उपाय बताते हुए वे कहते हैं–

मारग बेखरी बारियो, मेटयौ सब अलूजाड़।
पोल पश्यन्ती खोल दीनी, मध्यमा कियो विहार।।
परा नगर में गुरु नै लावणा, ब्रह्मानन्द दरबार।
तुरिया तख्त बिछावणा, जड़िया रतन अपार।

जिन्हें परमगुरु को प्राप्त करने का उपाय, निष्कलंकनाथ की युक्ति का मार्ग, यही है मोक्ष की प्राप्ति – सर्वप्रथम जीवात्मा की पहली अवस्था {जागृतावस्था} में बेखरी वाणी के सभी प्रपंच मिटाकर साधना का पक्ष उजागर किया। तत्पश्चात् {पथ उजागर होने से) दूसरी अवस्था {स्वप्नावस्था} में कण्ठस्थान में मध्यमावाणी की प्राप्ति हुई जिससे केवल सूक्ष्म वासना ही रह गई, अन्य क्रियायें समाप्त हो गई। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का ज्ञान नहीं रहा। तदउपरान्त सुषुप्ति अवस्था में ह्रदय स्थित पश्यन्ति वाणी का द्वार खुल गया जिससे जीवात्मा आनन्द की अवस्था में आ गया। जीवात्मा में शब्दादिक विषयों की कोई कामना नहीं रही।

तुरीय अवस्था में पहुंचकर परावाणी को प्राप्त किया और जीवात्मा को निर्विकल्प सुखानुभव हुआ। मूर्धा में स्थित यही परानगर है, यहीं पर ब्रह्म {परमगुरु} या शब्दब्रह्म की प्राप्ति का सुखानुभव करो और तुरीय अवस्था में रतनजडिततख्त {सहस्रदलकमल} पर परब्रह्म के दरबार में उपस्थित हो जाओ।

जहां–

पांच पच्चीस दस भेला हुया, होय रही भीड़ अपार।<br>
उसमें सुप्त सहेली, गज मोतियां रौ भर पाल।।<br>
ढोल बाजै ए सइयां ध्यान रौ, घुल रहया रंग अपार।<br>
संत बधाव घर लाबिया, मिट गयौ भेद विकार।।

इस प्रकार योग साधना से पंच महाभूत, पच्चीस प्रवृति तथा दस इन्द्रियों आदि की भीड़ को दर्शन करती हुई, उससे ऊपर उठती हुई, उनके बन्धन से मुक्त होती हुई जीवात्मा परब्रह्म के दर्शन करके आल्हादित हुई और ज्ञान रतन का थाल भर कर परब्रह्म की, वन्दना की अर्थात् आत्मज्ञान से परब्रह्म की प्राप्ती हुई।

तुरीय अवस्था में पहुंचने पर ध्यान योग से अनहद नाद सुनाई दिया तथा आनन्द की अनुभूति हुई और परब्रह्म की प्राप्ति हुई जिसके साथ ही द्वैत भाव का विकास मिट गया। आत्मबोध हो गया।

जो भी साधक ऐसी स्थिति तक पहुंचता है वह ब्रह्ममय हो जाता है – कोई भी ऐसा साधक ब्रह्म से वंचित नहीं रहता।

राम रीज राजी हुआ, एक दीठ सूं निहार।

सगलां मै आप में भेलिया, कोई नहीं राख्या लार।।

मेलो हुतो सो मिट गयौ, सुरता कियौ रे विचार।

म्हें अर सतगुरु दोय जणा, करसां वचन निहार।

इस प्रकार जब आत्मा निज स्वरुप को प्राप्त करके माया से मुक्त हो जाने पर भी यह जीवात्मा परम गुरु अर्थात् परमात्मा से वंचन विलास की बात कहती है तो निष्कलंकनाथ अर्थात् परमपीर या परब्रह्म हंस कर कहते हैं –

हंस बोल्या निकलंकनाथ, तू है मूरख गिंवार।

म्हे सो तूं, तूं सो म्हें हूं, रह्यौ नीं भेद लिगार।।

म्हें अर तूं दोनू मिटग्या, अपणा ही आप आधार

इण विध जोगेसर बधावजौ, कदेई न पड़े जमरी मार।

द्वैत भाव का समाप्त होना, आत्मा का अपने निज स्वरुप को प्राप्त होना ही मोक्ष है, फिर यम की यातना कैसी? रामदेवजी करते हैं कि यहीं सद्गुरु {परमब्रह्म} की वन्दना है–

रात रौ बधानौ साधां गावियौ, क़र घर मन में पियार।

कहे रामदेव पहुंचियौ, हद बेहद सूं पर।।

वन्दना की इसी विधि से जीवात्मा माया के बंधन से मुक्त होकर असीम ब्रह्म में लीन हो जाती है।

नाथ सम्प्रदाय में साधना का पथ है और उसमें गुरु का विशेष महत्व है। रामदेवजी का कहना है कि यह गुरु स्वयं समर्थ हो तभी वह समस्त सांसारिक कष्ट तथा संशय मिटा कर शिष्य को संशय मुक्त कर देता है। संताप रहित शिष्य जब शुद्ध चित्त से परम तत्व का ध्यान करता है तो उसकी गति {दशा या स्थिति} लट्ट और भ्रमर जैसी हो जाती है।

सिमरथ गुरु सांसौ सब मेटै, निज मन होय ध्यावै।

लट भंवरा ज्यूं गति होई जाई, होय भंवर उड़ जावै।

जिस प्रकार भ्रमर की संतान भ्रमर होते हुए भी पंख के अभाव में 'लट्ट' की संज्ञा से अभिहित होती है, परन्तु पंख आ जाने पर वह भी भ्रमर की संज्ञा व तद्धर्म धारण करके अर्थात् भ्रमर बन कर उड़ जाती है। ठीक उसी प्रकार समर्थ गुरु का सच्चा शिष्य आत्म–ज्ञान रूपी पंख धारण करके गुरुवत् हो जाता है, वह सद्गुरु के स्वरुप को प्राप्त कर लेता है अर्थात् स्वयं समर्थ हो जाता है। इस प्रकार समर्थ गुरु अपने शिष्य को अपने जैसा ही समर्थ बना देता है। तब शिष्य गुरुवत् बन गुरुमय हो जाता है। अंश, अंशी में मिल जाता है। जीवात्मा ब्रह्म {परमात्मा} में विलीन हो जाती है।

राजस्थानी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर

## नाथों का सामाजिक प्रभाव

दीनदयाल ओझा

राजस्थान के अन्तर और बहिस्साक्षों के आधर पर यह कहा जा सकता है कि नाथ संप्रदाय और राजस्थान का अतीव प्राचीन संबध है। डॉ. भाटी के अनुसार राजस्थान के धर्मिक संप्रदायों में नाथ संप्रदाय का विशेष महत्व है। यह कहना बहुत कठिन है कि राजस्थान में नाथ संप्रदाय का प्रवेश कब और कैसे हुआ परन्तु इतिहास में जो भी संदर्भ मिलते हैं उससे ज्ञात होता है कि नाथ संप्रदाय का यहां प्रादुर्भाव सैकड़ों वर्ष पहले हो गया था। मेवाड़ के शासक बप्पा रावल {वि.सं. ८१०} नाथ सम्प्रदाय में आस्था रखने वालों में से थे। जहां तक मारवाड़ का प्रश्न है लोक देवताओं के संदर्भ में जलंध्रनाथ आदि, नाथपंथी योगियों का उल्लेख बार–बार आता है।

राजस्थान और नाथ संप्रदाय के संबंध में श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी का रावल शाखा संबंधी विवरण अतीव महत्वपूर्ण है। रावल संप्रदाय योगियों की बड़ी भारी शाखा है। प्राचीन काल में तीन राजवंशों ने यह रावल {रावळ} विरुद धरण किया था। मेवाड़

के राजकुल ने, आबू के परमारों ने और जालौर के चौहानों के अलावा और किसी राजघराने ने यह विरुद धरण किया था या नहीं यह नहीं मालुम हो सका है। पर यहां यह उल्लेखनीय है कि जैसलमेर री ख्यात के अनुसार रावल रतननाथ योगीश्वर जो बाराहां के गुरु थे और उन्होंने भाटी देवराज को 'आवो सिद्ध रावळ राज' कहकर संबोध्ति किया और एक रसकुंपा झरझर कथा आशीर्वाद स्वरूप दिया। देवराज को 'रावळ' का विरुद मिला और तदन्तर जैसलमेर के शासक रावळ या महारावळ कहे जाने लगे[३]।

### नाथ संप्रदाय के पंथ और मठ

नाथ संप्रदाय के बारह पंथ सतनाथ, रामनाथ, ध्रमनाथ, लक्ष्मणनाथ, दरियानाथ, गंगानाथ, बैराग, रावळ या नागनाथ, जालंधरिपा, आई पंथ, कपिलानी और ध्जनाथ अत्यध्कि प्रसिद्ध हैं। इनमें वैरागनाथ का प्रदेश पुष्कर के पास अजमेर और माननाथी पंथ का मठ महामंदिर[४] में है। अन्य राजस्थान के मठों में अंगना {उदयपुर} नोहरमठ {बीकानेर}, लादुवास {उदयपुर}, हिंगुनाथ {जयपुर} भारत–प्रसिद्ध हैं।[४] जालोर तो जालंध्र नाथ का ही माना जाता हैं। इसी जालोर मे किले में आयस देवनाथ ने महाराजा मानसिंह को अत्यध्कि हताश अवस्था में भविष्यवाणी की कि वह दुर्ग न छोड़े। उसे तीन दिन बाद ही जोध्पुर का राज्य मिलेगा। और वास्तव में ऐसा ही हुआ। उन्होंने राज्य मिलने पर अपने गुरु जी के परिवार को जालोर से बुला कर महामंदिर और उदयमंदिर में स्थापित किया और उनके लिए भव्य भवन व राजसी सुविधाएं उपलब्ध करवाई।[५]

### नाथ संप्रदाय और राजकीय उत्सवों पर प्रभाव

मुहणोत नैणसी री ख्यात' जैसलमेर री ख्यात और विभिन्न जैसलमेर के इतिहास ग्रन्थों से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि रत्ताबाबा {रतननाथ} ने देवराज को मेखला, नाद पात्र दिया और कहा कि जब राज्य तिलक हो, दीपावली, दशहरा हो, तब इनको धरण करना। रतननाथ का कहा देवराज ने स्वीकारा –तरे जोगी आपरी मेखला, नाद पात्र देवराज नूं दिया। तिका मेखळ देवराज गळै में घाती, नाद सका माहै आसियो, पात्र आगे मेसियो नै जोगी रो सिक्को धरियो।[६]

जैसलमेर री ख्यात में तो यहां तक उल्लेख मिलता है कि रावळ रतननाथ देवराज पर अत्यधिक प्रसन्न हुए – दोय चीज बगसी। जण सूं राज बांध्यो। एक तो रस कूंपो, दूजौ झरझर कंथा। माथै हाथ दियो। सिको आपरो बागस्यो। गादी की बगत जोगी रो भेष बणावणो, पछै राजरी रीत करणी।'' आज भी जैसलमेर के नरेश के राज्याभिषेक पर इस परम्परा का पूर्ण रूपेण निर्वाह होता है।[७]

उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि राज्यतिलक, विजयदशमी और दीपावली पर नाथ परम्परा का गुरु निर्देशित आदेश का निर्वाह संप्रदाय की गरिमा के अनुकूल होता था। नाथ संप्रदाय के १२ पंथों के मूल प्रवर्तकों और शिष्यों तथा ८४ सिद्धों और उनके शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा अद्यतन जो साधना, जीवन पद्धति, साहित्य स्थापत्य, शिल्प, वेश भूषा, तंत्र मंत्र, चमत्कार, जीवनोद्धर, वरदान, शापजन्य जितने भी कार्य हुए उनका समाज पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभाव पड़ा।

***तांत्रिक_ आदर्श***

गुरु सेवा, जीव मात्र की दया, मांस मदिरा और जीव हिंसा का विरोध, ब्रह्मचर्य, योग साधना, सहज समाधि, षट कर्म {धौति,- बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपासभाति}, षट्चक्रों {मूलाधर, स्थाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशु, दधख्य, आज्ञा} का भेदन, षड़ रिपुओं, कंचन कामिनी, त्याग आदि–आदि अनेक नाथ संप्रदाय के तात्विक आदर्शों के अनुपालन का संकेत परवर्ती संत संप्रदायों और उनके अनुयायियों में भी देखा जा सकता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस मार्ग {नाथ संप्रदाय} में कठोर ब्रह्मचर्य वाक् संयम, शारीरिक शौच, मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्य आचरणों के प्रति अनादर, आन्तरिक शुद्धि, और मद्यमांसादि के पूर्ण बहिष्कार पर जोर दिया गया हैं। हिंदी में पाए जाने वाले पदों में यह स्वर बहुत स्पष्ट और बलशाली है। इस स्वर ने परवर्ती संतों के लिए आचरण शुद्धि प्रधन पृष्ठ भूमि तैयार कर दी थी। संत साधकों को बहुत कुछ बनी बनाई भूमि मिली थी।[८]

**रचनाधर्मिता का प्रभाव**

नाथ संप्रदाय के आचार, विचार और साधना पक्ष का समाज पर प्रभाव पड़ा, ठीक उसी तरह नाथ संप्रदाय के मत्स्येन्द्र {मच्छेन्द्र} और गोरक्षनाथ {गोरखनाथ} की रचना शैली का प्रभाव भी परवर्ती संतों पर विपुल मात्रा में पड़ा। द्विवेदी जी के कथनानुसार हिंदी की बहुत सी रचनाएं संवादरूप में मिलती है। ऐसा जान पड़ता है कि दो महात्माओं के संवाद के रूप में अपने दार्शनिक मत और धर्मिक विश्वास को प्रकट करने की यह पद्धति नाथपंथियों का अपना आविष्कार है। इस पद्धति में परवर्ती संत साहित्य को खूब प्रभावित किया था और संवादरूप में अनेक ऐसे ग्रन्थ लिखे गए जिनका उद्देश्य संप्रदाय के विश्वास ओर मत का प्रचार है।[६]

जिस तरह की पद रचना, वाणी, दोहा, उलटवासियां, गेय पदों और साधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग नाथ संप्रदाय के सिद्धों, नाथों ने किया उसी तरह की शैली का प्रभाव पश्चात् के निर्गुण संप्रदाय के प्रवर्तकों और शिष्यों में देखा जा सकता हैं।

यह स्पष्ट है कि नाथ संप्रदायानुयायी सिद्ध, आचार्य, गुरु और अनुयायी अध्कि पढ़े लिखे नहीं थे और निम्नजातियों से थे। उनके लिए संस्कृत, यज्ञ, संध्यावंदन, षोडस संस्कार, भक्ति, ईश्वर की सगुणोपासना, मूर्ति पूजा, आचार जन्य शुद्धता, सात्विक आहार–विहार, वाणीगत पवित्रता आदि आदि का अभाव था ही। इसके साथ ही उनके साथ अस्पर्शता और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग का वैशिष्ट्य भी कम दुखदायी नहीं था। अतः इन योगी सिद्धों, नाथों ने संस्कृत भाषा के स्थान पर जन भाषा का आध
ार लिया और ब्राह्मणों के यज्ञादि कार्यक्रमों, धर्मिक अनुष्ठानों और बाह्य आचार–विचार, शिखा सूत्र, स्नान शौच का विरोध और हंसी उडाते अपने योग और चमत्कृत करने वाली सिद्धियों के माध्यम से अध्किांश अपठित जनता का हृदय जीत लिया और समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग इस ओर आकृष्ट होने लगा।

नाथ संप्रदाय की इस संस्कृत और विशिष्ट वर्ग विरोधी भावना के चित्र पश्चात् के कबीर, दादू, जसनाथी, लालदासी पंथं और अन्यान्य फुटकर संतों की वाणियों और उनके रचित दोहों, उलटवांसियों,

साखियों और अन्यान्य ग्रन्थों में भी स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

### *स्थापत्य, शिल्प और कला जन्य प्रभाव*

समाज की अवधरणा जहां उसके साहित्य में प्रतिबिंबित होती है, वहीं स्थापत्य, शिल्प, चित्र कला, गायन, मूर्तिकला आदि कला परक सर्जन द्वारा भी अभिव्यक्ति होती है। ८वीं शताब्दी से या मत्स्येन्द्र ओर गोरक्षनाथ के आविर्भाव से अद्यतन नाथ संप्रदाय के सिद्धों, आचार्यों, गुरुओं और उनके शिष्यों के साधना, आवास, आहार–विहार, राजदरबार में गमनागमन, मान–सम्मान और उनके उत्सवों–महोत्सवों ने समाज को विविध रूपों में प्रभावित किया। अनेक मठों, धूणों, समाधियों का भव्य निर्माण हुआ। भगवान् शिव की विविध रूपा नाथ संप्रदायानुमोदित मूर्तियों के साथ साथ गुरुओं और आचार्यों की कलापूर्ण मूर्तियों की स्थापना होने लगी। वैष्णवों की तरह ही प्रस्तर फलकों और दीवारों पर नाथ लीलाओं का चित्रांकन भी होने लगा। इस प्रकार स्थापत्य, शिल्प, मूर्तिकला के साथ साथ चित्रकला को भी प्रभावित किया।

विगत १०–११ शताब्दियों से भारत के कोने कोने में समाहदृत नाथ संप्रदाय ने यहां के सामाजिक जीवन को निश्चयात्मक रूप से विविध रूपों में प्रभावित किया हैं। साहित्य और कला तथा मुद्रा जन्य प्रभावों के साथ साथ उसने समाज के प्रतिदिन के क्रियाकलापों और जीवन शोधन की बात भी जन भाषा में अतीव सहज और आत्मीय भाव से जनजन को कही। यथा–

गुरु भक्ति– गुरु कीजै गहिला निगुरा न रहिला।<br>
गुरु बिन ग्यांन न पाईबांरे भाईवा।।<br>
घट में तीर्थ– अर ही भीतरि अठसठ तीरथ।<br>
कहां भ्रमै रे भाई।<br>
मन की पवित्रता– अवधु मन गया तो<br>
कठौती ही गंगा।<br>
हंसने खेलने के साथ चित की दृढता–<br>
हसिवा रोसिबा रहिबा रंग<br>
काम क्रोध न करिबा संग।।

हसिबा खेलिबा गाड़वा मील
द्रिट करि राखि अपनाा चलत।।
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यांन
अहनिसि कथिवाब्रश गियांन।।
हसै खेलै करै मन भग
ते निह्वल सदा नाथ के संग।।

जल्दबाजी और गर्व निषेद्य तथा गर्व हरन और सहज रहन–

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा
धीरै धरिबा पावं।
गरव न करिबा सहज रहिबा
भणत गोरख रावं।।

वाक् संयमी, ब्रह्मचारी ही उत्तम पुरूष–

यन्द्री का लड़बड़ा जिभ्या का फूहड़ा।
गोरख कहै ते परतखि चूहड़ा।
काऊ का जती मुख का सती।
सो सत पुरुष उत्तमो कथी।

नाद, बिन्दू संयमित ही पार्वती सेवी–

ध्न जोबन की करै न आस।
चित न राखै कांमिनी पास।
नाद बिंद जाकें घांटे करै।
ताकी सेवा पारबती करै।

अरवाद्य खाने अपेय पीने वाला यम यातना का भागी–

अवधू मास मखन्त दया ध्रम का नास
मद पीवत तहां प्राण निरास।
भांगि भरवंत ग्यान ध्यांन खोवंत।
जम दरबारी ते प्राणी रेवंत।

नाथों की उक्त उक्तियों के अतिरिक्त अन्यान्य सहज, सुरल प्रसार गुण युक्त सारगर्भित उक्तियों ने हिन्दू और मुसलमान समाज को पग पग पर बड़े प्रभावी ढंग से आकर्षित किया[11] और समाज के नागर तथा ग्रामीण जन जन इस उपदेशामृत का पान कर अपने पतनोन्मुखी जीवन को उत्तरोतर ऊर्ध्वमुखी बनाया।

परन्तु इस समुज्ज्वल पक्ष के साथ नाथ संप्रदाय के चमत्कारों नाथों के बाह्य और वामाचारों तथा भौंड़े अश्लील प्रदर्शनों, क्रिया—कलापों, उद्दण्ड जीवन के कृष्ण पक्ष का भी प्रभाव समाज पर पड़े बिना नहीं रहा और उनेक विकृतियों का भी प्रभाव बढ़ा। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नाथों के आचार विचार, कृतित्व और व्यक्तित्व का अत्यध्कि प्रभाव पड़ा और आज भी ग्रामीण क्षेत्र तथा अनपढ़ मानव समाज मच्छन्दर गोरख की वाणी से प्रंभावित हो अपना आत्मशोध्न, आत्मदर्शन करके जीवन को पावन पवित्र बना मोक्ष की कामना करता है, यह नाथ संप्रदाय के प्रभाव का समाज पर पढ़ने वाला प्रत्यक्ष प्रमाण है। करणी को उत्तम बना जीवन जीने की कसक मानव ने जब तक रहेगी तब तक नाथों की वाणी का प्रभाव समाज पर पड़ता रहेगा।

साहित्य साध्ना सदन
केरवा पाड़ा, जैसलमेर ३४५ ००१

## संदर्भ

1. नाथ चंद्रिका संपादक डा नारायणसिंह भाटी परम्परा अंक 92 पृ सं 5 संपादकीय
2. नाथ संप्रदाय- हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ स. 171, 172
3. जैसलमेर री ख्यात-स नारायण सिंह भाटी राजस्थानी शोध संस्थान,चौंपासनी जोधपुर पृष्ठ संख्या 38
4. नाथ संप्रदाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ स 12, 168 से
5. नाथ चन्द्रिका 170, चन्द्रिका परम्परा अंक 92 पृ सं 6
6. मुहता नैणसी री ख्यात स श्री बदीप्रसाद साकरिया राज. प्रा.वि. प्रतिष्ठान, जोधपुर पृ सं 24
7. जैसलमेर राज्य का इतिहास मांगीलाल मयंक पृ सं. 26
8. नाथ सप्रदाय - हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ सं 204
9. नाथ सप्रदाय - हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ सं 198
10. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग 1 पृष्ठ संख्या 241-85
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास आ. रामचन्द्र शुक्ल पृ.स. 18

## *नाथ सम्प्रदाय और मारवाड़*

पं. रामदत्त थानवी

यह बहुत ही गहन शोध और ऐंथ्रोपोलोजी (मानव विज्ञान) के चिंतन का विषय हैं, परन्तु इतिहास के जिज्ञासु पाठक के रूप में यह काव्योक्ति पढ़ने को मिली "... मान करी नेपाल" तब यह सोच बना कि मारवाड़ में नाथ संप्रदाय का फैलाव कैसे हुआ और इसका प्रभाव सामाजिक रूप से जाति प्रथा पर क्यों पड़ा? यों तो सारे उत्तर भारत में ही नाथ संप्रदाय और उसकी साधना पद्धति में किसी समय आस्था रही और अनेक स्थानों पर नाथों के थान या आसन बन गये। उनका प्रभाव साहित्य, धर्म, शिल्प, स्वरूप आदि सभी पर पड़ा, परन्तु राजस्थान और उसमें भी विशेषकर मारवाड़ में महाराजा मानसिंह के कारण नाथों के बढ़ते प्रभाव से समाज के संगठन में भी बदलाव आया। इसकी विवेचना करना ही इस पत्र का प्रयास है।

***भोगीशैल (जोधपुर) नाथों के तपोधाम –***

नाथों का मारवाड़ में प्रभाव व उनके फैलाव से सम्प्रदाय और जातियों का उद्‌भव व विकास पर विचार करने पर हमारे सामने जोधपुर का भोगिशैल सामने आता है, जहां हर अधिक

मास में भोगीशैल परिक्रमा हुआ करती हैं। इस परिक्रमा में भोगीशैल की घाटियों में अनेक महादेव मंदिर आज भी विद्यमान हैं, जिनकी प्राचीनता का समय निर्धारण नहीं हो पाया है जैसे–

१) सोमनाथ महादेव फतहगढ़ी के पास अखैपुरी सन्यासी ने सनेसढे के वृक्ष से तंभसाधना से प्रेत को मुक्त किया।

२) पीपलिया महादेव कोई सिद्ध पीपल के नीचे रहता था।)

३) अणदेश्वर सीताराम मंदिर नवचौकिया – बहुत पुराणा।

४) ओंकेश्वर – गणेशगढ के ऊपर पहाड़ी पर

५) नर्मदेश्वर (थड़े के पास) पुराणा स्थल

६) विश्वनाथ (अंखैरामजी के तालाव के पास) प्राचीन स्थल

७) जागनाथ (चांदपोल बाहर पहाड़ी पर गोवर्धन तालाब के पास ६०० वर्ष पुराना)

८) इकलिंगजी पहाड़ी की टुकं में (मंदिर विजयसिंहजी की राणी ने बनाया) २०० वर्ष पुराना

६) बाणनाथ सुखानन्द बगेची (बाईजी महाराज देह) प्राचीन

१०) भूतनाथ पहाड़ी की गांव में प्राचीन

११) जबरनाथ पहाड़ी की गांव में भूतनाथ से आगे (प्राचीन)

१२) मण्डलनाथ मण्डोर के आगे पहाड़ी पर ९८८ का शिलालेख हैं।

उपरोक्त प्राचीन स्थल कालान्तर में महादेव के मंदिर बना दिये गये थे परन्तु निस्संदेह ये नाथ सिद्धों के तपोस्थल रहे हैं। नाथ स्वामी समाज में परम्परा रही है कि उनके शव को गाड कर उस पर चबूतरी बनाई जाती है और महादेव का लिंग स्थापित कर दिया जाता था। ऐसे स्थल श्रद्धालुओं द्वारा शिवालय बना दिये जाते थे, जैसा कि उपरोक्त स्थलों में हुआ हैं।

***मारवाड़ में नाथ सम्प्रदाय–***

नाथ सम्प्रदाय में दो प्रधान गुरू रहें – मत्स्येन्द्रनाथ तथा जलंधरनाथ। मारवाड़ में पंक गोपाल तथा कनपा जलंधरीनाथ का प्रभाव रहा हैं। पूरे मारवाड़ का विवेचन करें तो भुज व कच्छ के नाथ योगियों के भी संप्रदाय यहां रहे हैं। आई पंथ तथा जयपुर के पावानाथ का भी यहां प्रभाव रहा है लेकिन ये सभी शिव की उपासना करते थे। इनमें कुछेक तांत्रिक व झाड़ा झपटा करने वाले रहे हैं तथा दूसरे गुसाईं की तरह मठ के महन्त या पुजारी बने रहे हैं।

***नाथ सम्प्रदाय की मारवाड़ में जातियां–***

मारवाड़ में कुछ जातियें देव पुजारियों की परम्परा पर बन गई थी। अलग अलग देव पूजकों वेशभूषा, रीतिरिवाज तथा जीवन दर्शन भी अलग अलग बना रहा है। इन्हें षट्दर्शन के नाम से पहचाना जाता हैः–

"जोगी, जंगम, सेवड़ा, सन्यासी, दरवेश।

छटा रूप जो ब्रह्म का, तामें मीन न मेख।।

जोगी– जोगी जाति के लोग गोरखनाथ के अनुयायी होते हैं जो शिव के उपासक हैं। जोगी मूलतः योगी शब्द का अपभ्रंश रूप है। परन्तु अब तो जोगी एक विशिष्ट जाति हो चुकी है जो अपने कान फड़वाते हैं तथा गेरूआ या लाल वस्त्र धारण करते हैं तथा उपरोक्त वर्णित १२ पंथों में से किसी एक के अनुयायी होते हैं तथा अपने नाम के आगे नाथ लगाते हैं।

जोगी मांस मदिरा का सेवन करते हैं तथा शादी ब्याह करते हैं परन्तु शादी की रस्म नहीं मनाते। कुछेक मनाते भी हैं। ये लोग नेपाल को अपना तीर्थधाम मानते हैं। इनका शव दफनाया जाता है जिस पर समाधि निर्मित की जाती है। इनके दो वर्ग हैं –१) कनफटा जोगी या नाथ जो कान फड़ा कर मुद्रा धारण करते हैं। २) कालबेलिया जो अपने कान नहीं फड़ाते।

१) नाथ– यह वर्ग कनफटा जोगियों में सम्माननीय माना जाता है। इनको यहां जोगेसर, सरूप या आयसजी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता हैं। ये नाथ लोग जलंधरनाथजी के अनुयायी होते हैं। इस सम्प्रदाय की जाति के पुरूषों को कान फड़ाना नितान्त आवश्यक होता है और मुद्रा धारण करनी ही पड़ती है लेकिन इस जाति की महिलाओं का अलग ही नियम हैं। जब तक वे कनफटी नहीं होती हैं, 'ओघड़' कहलाती हैं परन्तु जब कान फड़वा लेती हैं, तब इस नाम से नहीं पुकारी जाती हैं। ये घरबारी होती हैं, शादी विवाह कर सकती हैं। इनमें नाता या करेवा भी होता हैं। इनकी जाति परम्परा चलती रहती है जिसमें राजपूत जाति के लोग नाथ ज्यादा बनते हैं। ये नाथ राजपूतों के गुरू माने जाते हैं।

कर्नल वाल्टर के शब्दों में मालानी क्षेत्र के अधिपति श्रीमल्लीनाथजी के गुरू गरीबनाथ थे। ये गोसांई गरीबनाथ के नाम से पहचाने जाते थे। नाथ जाति के पुरूष विवाह नहीं कर सकते हैं परन्तु कभी किसी नाथ पर स्त्री प्रसंग का अभियोग लग जाता है तो उसे मठ मंदिर से निष्कासित कर दिया जाता है। जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी आयस देवनाथ जी को अपना गुरू मानते थे। उनके शासन काल में नाथों का प्रबल प्रभाव रहा। महामंदिर मठ आज भी आयसजी की गादी है। इसे आसन कहा जाता है।

इस जोगी जाति में दूसरी जाति है मसानिया जोगी। ये नाथ जोगेश्वर से नीचे स्तर की होती है। वैसी इनकी वंश परम्परा महामंदिर के नाथ की ही है लेकिन श्मशान में ये आधा कफन लेते रहे हैं, इस कारण मसानिया जोगी कहलाने लगे। ये चिड़ियानाथजी के अनुयायी हैं जिनकी समाधि पालासनी गांव में है और यहीं का गुरूद्वारा प्रमुख माना जाता है। ये जोधपुर में ही पाये जाते हैं जो या तो मजदूरी करते हैं या भिक्षा मांगते हैं। इनमें शव को कपड़े की झोली में सजाकर या कपड़े की वैकुण्ठी में बैठी अवस्था में ले जाते हैं और बैठी स्थिति में ही गाड़ते हैं। ये दूसरी जात के लोगों को भी अपना बना लेते हैं और उनके कान फाड़ डालते हैं ताकि वे पुनः अपनी पहली जाति में न मिल सकें।

राख लगाये ने धौदे,

नै कान फड़ायै खौदे

कालबेलिया– ये जोगी अपने आप को जालंधरी शाखा के कनिपा कृष्णपा के अनुयायी मानते हैं। यह जाति भी जोगी जाति में न्यूनस्तर की मानी जाती है। ये भी भीख मांगने वाली जाति है – रावळ जोगी भी इसी परम्परा में आते हैं। इनका अलग महन्त नहीं होता। इनका प्रमुख गुरूद्वारा (अखाड़ा) डिगाई मारवाड़ में हैं। ये लोग हिंगलाज तीर्थटन को जाते हैं। स्थानीय समाधियों पर जो चढ़ावा आता है उससे ही ये उदरपूरण करते हैं। इनमें कई उपजातियां हैं– जिनमें परस्पर शादी विवाह होता है– इनमें नाता भी होता हैं। ये लोग कालबेलिया) अपने हाथ में खप्पर रखते हैं। कहते हे कि कालबेलियों में यदि परस्पर संघर्ष हो जाता है तो खप्परों से लड़ते हैं। इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि

जोगी जोगी लड़े खप्परों की हांण''

वैसे कालबेलिया घुम्मकड़ जाति हैं। गधों पर ही अपना घरबार संभाले ये लोग गांव गांव घूमते हैं। जंगल में. ओरण में रहते हैं। खुले आकाश में ही पड़ाव पड़ता हैं। इनमें सांप पालने का भी धन्धा होता है। सपेरे इनमें से ही होते हैं। कालबेलिया जादू टोना भी करते हैं तथा इनकी औरतें नृत्य किया करती हैं। पूंगी पर ये अच्छा गाना बजा लेते हैं। कालबेलिया पुरूष के पहनावे में भगवा साफा, अंगरखा, ऊंची धोती व गले में कांठला तथा सिर पर बाल होते हैं तो महिलाओं के काली ओढनी व कांचली – घाघरा, केशविन्यास चांदी के जेवर व कानों कें झुमके रहते हैं।

सन्यासी– ये नाथ पंथी (शैव) होते हैं परन्तु शंकराचार्य के अनुयायी होते हैं। इनमें वैराग्य की अवस्था होती है लेकिन सम्प्रति यह एक विशिष्ट जाति का नाम हो गया हैं जिसके उपास्य देव भागवान शिव हैं। सन्यासी जाति के ३ विभाजन हैं– सन्यासी, दण्डी व सांमी।

१) सन्यासी– वास्तव में सन्यासी तो वे होते हैं जो सांसारिक भोग का परित्याग करके कठिन तपस्या में लग जाते हैं जैसे पेड़ों पर उल्टे लटक कर तप करना, अपना एक हाथ ऊपर उठाकर एक पांव को मोड़ कर अनिश्चित समय तक खड़े रहना, लोहे की कीलों की शय्या बनाकर सोना अथवा भयंकर गर्मी में नंगेबदन सूरज का ताप तपना, सर्दी में नदी या तालाब में खड़े रहकर तपस्या करना आदि।

जोधपुर में सिद्धनाथ पीठ पर नारायण स्वामी तथा उनके शिष्य नेपाली बाबा ऐसे ही सन्यासी थे। इनकी तप साधना कठोरतम रही हैं। इनकी स्थान अचलनाथ मंदिर शिव 'मंदिर रातानाडा' सिद्धनाथ जोधपुर में हैं। पाली मारवाड़ में भी बढ़िया तालाब पर अखाड़ा है। ये दत्तात्रेय को गुरू मानते थे।

२) दण्डी– दण्डी सन्यासी हमेशा अपने हाथ में दण्ड धारण किये रहते हैं। रेवरेण्ड शोरिंग के शब्दों में दण्डी स्वामी आग, धातु या धातु के उपकरण को नहीं छूते। ये अपने हाथों से भोजन नहीं बनाते और धन संचय नहीं करते हैं। इनका जीवन तो करतल भिक्षा, तरूतल वासा ही रहा हैं। ये अपने शरीर पर लाल भगवा धोती लपेटे रहते हैं। ये यद्यपि धन का संचय नहीं करते हैं तथापि भीख नहीं मांगते। इनकी तो गृहस्थी सादर ससम्मान से सेवा करते रहते हैं। इनके भक्त ब्राह्मण लोग ज्यादा मात्रा में होते हैं।

जो भी दण्डी स्वामी होता है वह विवाह सूत्र में नहीं बंधता न मकान में ही निवास करता है। ये कमण्डल धरण करते हैं। हमारे चारों पीठ के शंकराचार्य इस संप्रदाय के आदर्श हैं। जोधपुर में भी श्रीमाली और पुष्करणा ब्राह्मणों में दण्डी स्वामी हुए हैं। चांदपोल बाहर ब्रह्मनारायण आश्रम इसी पंथ का मठ है।

३) सांमी (स्वामी)– इस जाति के लोग गुसांई तथा अतीत के नाम से पहचान में आते हैं। ये लोग मांस मदिरा का सेवन करते हैं। इनकी उपासना शिव उपासना ही रहती हैं। इनमें भी दो वर्ग हैं। एक वर्ग में तो मृत्यु के बाद शव को बैठी अवस्था में गाडते हैं तथा दूसरे वर्ग में शव को लम्बा करके गाड़ते हैं।

इनको आश्रम या मकान में ही दफनाया जाता हैं जहां उनका निवास रहा हो। दाह स्थल पर समाधि बना दी जाती है तथा उस पर महादेव का लिंग स्थापित करने की परम्परा रही है।

मारवाड़ में इस जाति के लोगों को जागीर या डोली के खेत मिलते रहे हैं। ये घरबारी होते हैं। शादियाँ होती हैं। खेती बाड़ी करते हैं परन्तु कई पुजारी आटा की फेरी करते जीवनयापन करते हैं। कालान्तर में शिक्षा के प्रभाव के कारण इनके युवा नौकरी पेशे में लग गये हैं।

इनकी दस उपजातियां मारवाड़ में मानी जाती हैं। इसलिए ये दसनामी कहलाते हैं।

गिरी, पुरी, भारती, बाण, अरण, परीत, सागर, तीर्थ, आश्रम, सरस्वती। इस जाति में शिव तथा शक्ति दोनों की उपासना की जाती है।

घरबारी सांमी में कई लोग शस्त्र रखते हैं जिन्हें मारवाड़ में महापुरुष कहा जाता है। ये लोग अधिकतर मारवाड़ राज्य में सिपाही के पद पर नौकरी करते थे।

चेला– इस जाति को पाल दे दिया जाता है – फिर कान में मंत्र फूंक कर सांमी बनाया जाता हैं। चेलों को घर में पुत्र का सा अधिकार रहता हैं और उसी प्रकार शादी की रस्में निभाई जाती हैं।

महिला– शामियों की महिलाएं 'सामण' के नाम से सम्बोधित की जाती है और वे साधारण महिला की ही पोषाक पहनती हैं – लेकिन जो औरतें हिंगलाज तीर्थ कर आती हैं या घरद्वारी होकर नहीं रहती वे पुरुष के वस्त्र धारण करके रहती हैं – धोती पहनती हैं अंगरखा पहनती हैं और भगवा साफा बांधती हैं। इन महिला शांमी को 'अवधूतणी' कहा जाता है।

निहंग स्वामी – शामियों में अनेक घरबार से विरक्त तन पर भस्मी लगाये रहते है और साथ शेर या हरिण का चर्म रखते है जिन्हें बाधाम्बर और मृगाम्बर कहते हैं। इन निहंगों के पास

कमण्डल तथा तांग भी रहता है और जटा बढ़ाये रहते हैं। इनकी सेवा घरद्वारी गृहस्थ लोग ही अधिकतर किया करते हैं। इनके हरेक वर्ग या उपजाति का अलग महन्त होता है परन्तु सर्वोच्चय 'दशनामी महन्त' रहता है।

***मारवाड़ के राजवंश पर नाथ प्रभाव***

इस प्रकार से मारवाड़ में राम, रावल, पावनाथी और कट्टरपंथी परम्परा का समिश्रण रहा है और ये लोग सामाजिक व्यवस्था में जहां शिव–शक्ति उपासना के मूल सहयोगी रहे वहीं नाथ सिद्धों के संस्कारों और व्यवहारों से पूरे समाज पर प्रभाव डाला। जिस राज्य की जनता पर नाथ पंथ का प्रबल प्रभाव पड़ा जो आजतक जाति–गत संस्कारों व रीति रिवाजों में दिखलाई पड़ता है वही प्रभाव मारवाड़ के नरेशों या वशंजों पर भी समय समय पर पड़ता रहा है। जिसका इतिहास साक्षी है।

मारवाड़ के राव सलखा के पुत्र राव माला रावल मल्लीनाथ का समय सन् १३३८ से १३७६ ई. माना जाता है। इन्होंने अपने अनुज वीरमदेव को राज्य संभलाकर योगी रतननाथ की दीक्षा से साधु बन गये {नाथ पंथी साधु} और अपना शेष जीवन 'नगर' एवं भिड़कोट में बिताया। कोई इन्हें भदीषनाथ का शिष्य भी बताते हैं। परन्तु यह सत्य है कि नाथ सम्प्रदाय के ये साधु बन गये।

राव वीरमदेव का पुत्र राव गोगादेव के ऊपर भी जलंधर नाथ के सिद्धांतों का प्रबल प्रभाव रहा। उस समय के बहादुर ढाढी ने जो तत्थ प्रमाण किया है उससे सिद्ध होता है कि राव गोगादेव को जलंधरनाथ ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर 'रलतली' तलवार प्रदान की थी और जोहियो के युद्ध में राणकदेवी की तलवार के प्रहार से उनके बांये पैर का टखने तक का हिस्सा कट गया तो रावगोगादेव ने श्री जलन्धरनाथ को याद किया और वचनों में बंधों नाथजी ने आकर उनके पैर को अन्य ताजे शव के पैर से ज़ोड दिया। कहते हैं कि उस समय पैर लाने वाले को ध्यान नहीं दिया कि राव गोगादे का कौन सा पैर क़टा वह दांया पैर ले आया और नाथजी ने बांये पैर की जगह दांया पैर जोड दिया।

इस ऐतिहासिक प्रसंग से यह प्रमाणित होता है कि राव माला नाम साधु बनने के पश्चात् रावल मल्लिनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए और राव गोगादे की नाथजी ने सहायता की वे उस समय मण्डोर के पहाड़ों में तपस्या करते थे।

'धण भाजण जोहियों सेना, जीने कर समर।

कटिया पग गोगादेव जष, जिन याद जोगेश्वर।।

दरण सिद्ध आय दिया, माथे कर महर।

गोगा पग उतारा संधिया, ओलखांण कहर।।

राव गोगादेव भी नाथ साधु बन गये और योगी जलंधरनाथ के साथ कांगड़ा {हिमाचल प्रदेश} चले गये।

पाबूजी राठौड राव आसनाथजी के पोते तथा धांधलजी के द्वितीय पुत्र थे समय {वि. सं. १३६०–१३८३} इनको भी सिद्ध माना जाता है और थोरी जाति के लोग जोगी गोरखनाथ भरथरी और इनके गुण गाते हैं। इनका भतीजा झरड़ा सूढां का बेटा जिसे बूढ़ौ की पत्नी गेहली ने सती होते समय पेट चीर कर निकाला था, गोरखनाथ का भक्त था और उसकी बुआ जीन्दराव चौहान भी गोरखनाथ का भक्त था परन्तु पाबू व सूढां की हत्या करने के कारण गोरखनाथ उससे नाराज हो गये और उसके मारने का झरडे को आदेश दिया –

मोहर बूढौ मारियौ, पछै खाजियो पाल।

रती न सक म्हारी रखी, लिण जींदै तेराल।।

सौगन म्हारी संपरत, जीरै की नहीं झूठ।

उइ दिन सूं अपनी परै रहियो हूं विण सूठ। {गोरख पाद}

गोरखनाथ झरड़ा से मिले तो अपना परिचय देते कहा–

मैं न मछंदर मैं न जलंधर मैं हूं गोरख लू झरडा लख।

मैं वह औगड़ मै वह कूबड, मै वह धूवड़ नाथ सुणे सिस।

मै वह कंथड नैन वि

गोरखनाथ सभी बारह सिद्धों का नाम बताते हैं जिससे यह प्रमाणित होता है कि नाथ सम्प्रदाय में सभी परस्पर मिले हुए हैं।

गोरखनाथ झटड़ से कहते हैं जिस तरह अश्वत्थामा ने अपने पिता द्रोणाचार्य की हत्या का बदला लिया, उसी प्रकार तू भी अपने बाप व चाचा की हत्या का बदला ले–

सुण झरड़ा अर व्है सबल रवणी छल सूं राड़।
मारयौ द्रोणी रावरौ पंचल ने पाछाड।।
तू छली वो विप्र थौ निकण लियौ पित बैर।
वो अणनाथ सनाथ तू पाछंसू सिखभेर।।

गोरखनाथ के आदेश से और उनके प्रभाव से ही झरडे ने जिन्द राव पर विजय पाई। यह नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव ही है।

बाबा रामदेव रूणेचा के राजा थे जो कुंवर अनंगपाल के वंशज थे। इनके समय में भी नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव था। बालकनाथ योगी से इनका साक्षात्कार हुआ था और उसके ही सहयोग से ही भैरवा राक्षस का वे वध कर पाये थे। मसूरिया पहाड़ी पर बालानाथजी की नगरी थी जहां वे तपस्या करते थे।

राव जोधा ने जब मेहरानगढ़ दुर्ग की नींव रखी तो इस चिडियाटूंक पर नाथ सिद्ध चिड़ियानाथ धूनि रमाता था। उसको जबरदस्ती हटाया तो उसने शाप दिया था – हर तीसरे साल यहां काल पडेगा। परन्तु जब जोधाजी ने उनकी पूजा–सेवा की तो उन्होंने फिर कहा – जब तक रोठ – तक तक कोट। अतः सन् १४५८ में मेहरानगढ़ दुर्ग बनाने की नींव रखी गई। तब तक इस भोगिशैल पर्वतमाला में नाथ योगी तपस्या करते थे।

महाराजा मानसिंह जालोराधिपति थे और महाराजा भीमासिंह ने सेनापति इन्द्रराज सिंघवी के साथ सेना भेज कर जालोर घेर लिया। उस समय नाथ सिद्ध आयस देवनाथजी के आर्शीवाद से जोधपुर का राज्य मिला। मानसिंहजी स्वयं जालंधरनाथजी के उपासक

बन गये और देवनाथ जी आयस के लिये महामन्दिर मठ बनवाया। मानसिंह ने पुस्तक–प्रकाश की स्थापना कर नाथ साहित्य का संग्रह किया और स्वयं नाथजी की प्रशस्ति में अनेक पद लिखे जैसे–

{राग भैरवी – ताल सवारी}

रक्ता चले कन्दरासने स्वयं स्वामी {अस्थाय़ी}

जोगेश्वर लीलाधरत मूर्तिमान नाथ परिवसत जत्र

आदपुरी दंडवती सरितेश्वरी जलन्ध्री गंगा पुनीत नामी।

महा पंचकुण्ड गाली पाव धाम तत्र आवै

इस प्रकार से मारवाड़ की धरती पर, मारवाड़ के जन समाज पर तथा राज्यवंश पर नाथ पंथ का प्रभाव १० वीं शताब्दी से दिखाई देता है। और यह सम्प्रदाय आम जन साधारण का जातिगत रूप भी ले बैठा।

*जनसामान्य पर प्रभाव*

नाथों के सामाजिक प्रभाव में हमने जाति, वर्ग एवं राजवंश को प्रभावित करने वाले कारणों को उजागर किया परन्तु सामान्य जनता पर नाथों के प्रभाव को हम अछूता नहीं रख सकते। हम देखते है कि रात कै जागरणियें या सत्संग करने वाले अनेक गायक निर्गुण वाणी, निरंजनी वाणी या कबीर आदि सन्त सिद्धों के आध्यात्मिक पद गाते हैं जिनमें निराकार ब्रह्म का वर्णन रहता है तथा जीवन और माया के संसर्ग से सासांरिक दुःख का वर्णन होता है। कई पदों में कुण्डलिनी योग, नारी त्याग, विषय त्याग एवं ब्रह्मरंध्र से टपकने वाले अमृत रस के पान करने का वर्णन रहता है इसका मतलब है कि ऐसे पद रचनाकारों पर नाथ–सिद्धों का प्रभाव पड़ा है।

उदाहरण के लिए सामान्य तौर पर एक पद 'माया' के अनन्य रूपों पर रहा है – 'माया, महारागिनी हम जानी उस पद में 'माया' के विधि रूपों का विन्यास करके उससे अलग होने

का उद्बोधन किया गया है ऐसा ही पंथ गुरु गोरखनाथ का प्रचलित है जिसमें माया की विविधता को दर्शाया गया है – जैसे

मेरा गुरु तीनि छंद गावे
ना जाणौं गुरु कहां गैला, मुझ नींदडी न आवै।
कुम्हरा के घरि हांडी ऊंछै, अहीरा के घर सांडी।
बमना के घर रांडी आछे, रांडी, सांडी हांडी। ।।१।।
राजा के घरि सेल आछे, जंगल मधे बेल।
तेली के घरि तेल आछे, तेल, बेल, सेल। ।।२।
अहीर के घर महकी आछे, देवता मध्ये ल्यंग।
हाटी के घरि हींग आछे, हींग, हयंग स्यंग। ।।३।।
एक सुभै नाना बढ़िया बहुमंगत दिखलावे।

माया ही राजा के बरछे (सेल) जंगल में बेलि के रूप में और तेली के घर में तेल के रूप में हैं अतः तेल, बेल और सेल ही माया है।

वही अहीर के घर में श्भंभ (महकी भैंस) है, देवालय में लिंग है और पंसारी की दूकान में हींग है – तब हींग, लिंग व श्रृंग ही ही रूप है।

एक सूत्र से नाना रूप बने हुए हैं जो बहुत प्रकार से देखने में आते हैं। गोरखनाथ गुण रहित (निंदनीय) माया का वर्णन करता है– सत्गुरू ही ऐसी माया का विवेक करा सकता है।

इस पद में गुरू की महिमा बतलाते हुए कहा गया है कि माया से मुक्त रहकर परम पद दिलाने वाला मात्र गुरू ही है। ऐसे अनेक पद गोरखनाथ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते सामान्य जन समुदाय को प्रभावित करते रहे हैं।

***मारवाड की नाथ सम्प्रदाय–परम्परा***

बताया जाता है कि मारवाड़ की नाथ सम्प्रदाय परम्परा राजा भर्तृहरि जिन्हें गुरू गोरखनाथ ने अपना शिष्य बना कर उनका नाम 'सिद्ध विचारनाथ' रखा, उनसे ही चालू हुई। आपके चार

शिष्यों की अलग अलग स्थानों पर महत्ता रही। इसे सिद्ध विचारनाथ सम्प्रदाय कहते हैं।

सिद्ध विचारनाथ

| भैरवनाथ | अचिन्तानाथ | अरिभनाथ | भावनाथ |
|---|---|---|---|
| (स्थान राताढूंढा) | (मेवाड़) | (इड़वा पालासनी) | (डीडवाना) |
| ४०० आश्रम | २०० आश्रम | १०० आश्रम | १०० आश्रम |

भैरवनाथ– भूचरनाथ → मंगलनाथ → सन्तोषनाथ → मायानाथ → सोमनाथ → महरनाथ → धीरनाथ → पंचमनाथ → पद्मनाथ → चिमन(च्यवन)नाथ → गंगानाथ → सन्तोषनाथ → केसरनाथ → उदयनाथ → बालकनाथ → मोतीनाथ

अचिन्त्यनाथ (धांधला के ढंट तालाब पर तपस्या राव गांगा जी)

(१) सूरतनाथ → दयानाथ → भंवरनाथ → कृपानाथ → लक्ष्मीनाथ → रविनाथ → धरवतनाथ → कमलनाथ → नागनाथ → बोरियानाथ → धूणीनाथ → नयानाथ → गोवर्धननाथ (वर्तमान) लाड़वास उदयपुर में

(२) प्रभातनाथ → पन्थनाथ → अमरनाथ → नेमनाथ → नयानाथ → सुजाननाथ → शंकरनाथ → जननाथ → खुसालनाथ → सूरजनाथ → रूपनाथ → भवानीनाथ

(२अ) भवानीनाथ बीकानेर में मठ → ऊंझानाथ → बाबूनाथ

(२ब) उदयपुर रंगनाथ → सूरतनाथ → दृढ़नाथ → सन्तोषनाथ → नन्दीनाथ → मूरनाथ (आयस की हैं)

अरिभनाथ (इडवा, पालासणी, अरिभाणी स्थान) राव जोधा के गुरू कमरनाथ चिड़ियानाथ (पालासणी आसन बनाया) → केवलनाथ → निश्चलनाथ → नेमनाथ → लक्ष्मणनाथ → शब्दनाथ → कंवरनाथ → ब्रह्मनाथ → सहजनाथ → सुन्दरनाथ → खुसालनाथ → माणिकनाथ → कृपानाथ → गेबीनाथ → मोतीनाथ → कूलनाथ → प्रेमनाथ → लालनाथ → मेघनाथ (पालासणी महन्त)

भावनाथ (भराणी–जायल, डीडवाना) आत्मनाथ → बालानाथ → धीरनाथ → धर्मनाथ → जेठनाथ (वर्तमान)

सिद्ध चिड़ियानाथ की परम्परा में बनानाथजी हुए जिनका 'बनानाथ अनुभवप्रकाश' प्रसिद्ध है। आपके शिष्य नवलनाथ जी हुए जिनका मठ नई सड़क चौराहे पर है व आपके शिष्य उत्तमनाथ जी हुए। आपके दो शिष्य श्री विवेकनाथजी व श्री वैरागयनाथ (आप नवलनाथ मठ के महन्त हुए– आपके शिष्य – निरंजननाथ, लाडूनाथ, रामनाथ, शंकरनाथ, रत्ननाथ, इन्द्रनाथ। श्री रसनाथ, हिम्मतनगर मठ के महन्त हो गये। रामनाथ, रूणेचा रामदेवरा मठ के महन्त हुए।

(२) वैराग्यनाथ के शिष्य पूर्णनाथ है।

बनानाथ के पदों में निर्गुण का वर्णन है' ऊलट वाणियां है, आला की विरह वेदना है वहीं मिलन का दिव्यानन्द है।

'साधो भाई देऊँ ऊंचों चढ़ हेला।

जोगी जती सतीसब सुणज्यो कहूं मुक्ति को गेलो।'

नवलनाथ – चौपासनी स्कूल का उद्‌घाटन किया। आप हठयोगी और राजयोगी थी। आपके डॉ. निरंजननाथजी को पारा गर्म कर दिखाया जो उडा नहीं "अगन विच पारा जो रखे – सोई गुरू हमारा' गोरखरसशास्त्र का सिद्धान्त है। आप मोर पंख से तांबा व सोना भी निकालते थे। गंगासिंह जी बीकानेर आपके शिष्य थे।

उत्तमनाथ – आपने जोधपुर – जैसलमेर बीकानेर का भ्रमण किया व वेदानत का प्रचार किया। नशा छुड़ाने की चिकित्सा की बीकानेर के सेठ रामगोपाल मोहता शिष्य बने।

यह परम्पुरा आज भी आत्मज्ञान का दीप फैला रही है।

## नाथ सिद्धों की संगीत साधना

डा. पंकजमाला शर्मा

जिस प्रकार काव्य मानव के हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति का साधन है, उसी प्रकार संगीत भी भाव को रोचकतापूर्ण ढंग से अन्यों तक प्रेषित करने का एक महत्वपूर्ण साधन हैं। प्राचीन धर्म साधना की तरह भारतीय धर्म साधना में भी जितने संप्रदाय हुए उन सबने संगीत को अपनी भावाभिव्यक्ति का साधन बनाया। इसके दो कारण थे। प्रथम कारण यह था कि वे साधक जहां नाद का उच्चारण करते हुए ब्रह्म की उपासना में साधनारत थे, वहां उनको उससे स्वयं में मानसिक एकाग्रता की भी प्राप्ति हो रही थी। ऐसा देखा जाता है कि जब साधक संगीत की धुन में रमता हैं, उस समय में वह स्वयं को एकं लोकोत्तर जगत् में प्रतिष्ठित पाता हैं। द्वितीय कारण था, अपने सिद्धान्तों को संगीत के माध्यम से सरलता से दूसरों तक पहुंचाना। इन्हीं दो उद्देश्यों से मध्यकालीन सिद्धों ने संगीत का आश्रय लिया। यह बात उल्लेखनीय है कि जिन सिद्धों ने संगीत को अपने सिद्धान्त की अभिव्यक्ति का साधन बनाया वे किसी भी प्रकार वाममार्गी साधना पद्धति से

सम्बद्ध नहीं थे। संगीत उनकी दृष्टि में अपने आप में योग का एक सशक्त और समर्थ साधन था। योग जहां मात्र वैयक्तिक साधना थी वहां संगीत वैयक्तिक साधना के साथ साथ उनके सिद्धान्तों को दूसरों तक पहुंचाने का भी श्रेष्ठ साधन था। तत्कालीन सिद्धों की जो वाणियां प्राप्त होती हैं उनमें विविध रागों का समावेश है। ये राग इस बात के द्योतक हैं कि उन सिद्धों के मत में संगीत भी एक प्रकार से नादब्रह्म की उपासना हैं। तत्कालीन वाणियों के अवलोकन से ज्ञात होता हे कि उनमें कुण्डलिनी, चक्र, मुद्रा आदि का बड़े ही रुपात्मक ढंग से चित्रण हुआ हैं। सामान्य रूप से दृष्टिपात करने पर ऐसा प्रतीत हो सकता है कि उन वाणियों में लौकिकता है, किन्तु वस्तुतः उनमें उच्च कोटि का ज्ञान समाहित हैं। उदाहरण के लिए जोगी परम्परा में उपलब्ध एक गीत इस प्रकार है–

जोगी जा रे जा
अपने प्रीतम सो नेह लगा
औरन को नाही को बतिया
अपनी पैंज बढ़ा {राग तिलंग}

इस गीत में उस प्रियतम परमात्मा के प्रति योगी की निष्ठा केन्द्रित होने की बात कही हैं। परवर्ती परम्परा में इन्हीं विषयों को आधार बनाकर तथा उन्हें गीत का रूप देकर घूम घूम कर गाने का प्रचलन हुआ। मध्यकालीन धर्मसाधना में संगीत के विषय में एक रूप ऐसा भी दिखायी पड़ता है जहां अपनी परम्परा के साधकों के जीवन को तथा उनके चमत्कारों को आधार बनाकर गीत के रूप में सामान्य जनता में उनका प्रचार किया जाता था। वस्तुतः मध्यकालीन संत परम्परा के साधकों का जीवन इन गीतों के माध्यम से सुरक्षित हैं। ऐसे अनेक गीत हैं जो अभी तक संकलित नहीं हुये हैं। लोकगीत के रूप में ही परम्परा में प्रवहमान हैं। ये गीत जिन नाथ सन्तों के जीवन को आधार बनाकर परवर्ती परम्परा में प्रचलीत हुए और घूम घूम कर जोगियों द्वारा गाये जाते थे उनमें मछन्दरनाथ, जालन्धरनाथ, गोपीचन्द तथ भरथरी आदि प्रमुख थे। इन गायकों को 'पैरिया' कहा जाता था।

आधुनिक संगीत परम्परा में प्रचलित कतिपय रागों के नामों से भी संगीत की जोगी परम्परा प्रवाहित दिखायी पड़ती है। उदाहरण के लिए राग गोरखकल्याण तथा राग जोगिया का उल्लेख किया जा सकता हैं। आधुनकि युग के प्रसिद्ध संगीतज्ञ पंडित विनायक राव पटवर्धन ने अपनी पुस्तक 'राग विज्ञान' के चतुर्थ भाग में इस बात का उल्लेख किया है कि गोरखकल्याण राग का सम्बन्ध अवश्य ही गोरखपंथी परम्परा से रहा होगा, इसलिये इस राग का नाम गोरखकल्याण रखा गया होगा।[1] इससे हमें एक महत्वपूर्ण तथ्य का ज्ञान होता हैं कि उन सिद्ध गायकों ने जो गान किया उसके आधार पर परवर्ती परम्परा में जो गान की परम्परा प्रवाहित होती रही वह उन सि;द्धों के साथ सम्बद्ध थी। जो राग भिन्न–भिन्न सिद्धों द्वारा गाये गये थे वे उनेक नाम पर रूढ़ हो गये, जेसे मीरां की मल्हार, रामदासी मल्हार, सूरमल्हार इत्यादि। नामकरण की इस परम्परा का आधार वैदिक सामों में भी देखा जा सकता हैं जहां ऋषियों के द्वारा किये गये गानों का उन ऋषियों के नाम पर रखा गया हैं।[2]

मध्यकालीन संतों के जीवन के साथ संगीत इतना जुड़ा हुआ है कि किसी वाद्यविशेष को धारण करना उनकी एक विशेष पहिचान बन गयी थी। कबीरदास ने जोगियों के वेष का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे मुद्रा, नाद, कंथा, आसन, खप्पर, झोली, विभूति, बटुवा आदि के साथ सारंगी यन्त्र को भी धारण करते थे।[3] इस सारंगी यन्त्र का प्रचलन गोपीचन्द ने किया इसलिये उन्हीं के नाम पर गोपीयन्त्र भी कहलाता था। योगियों द्वारा धारण किये गये चिह्नों में 'किंगरी' भी एक चिन्ह था। किंगरी एक प्रकार की चिकारी थी जो कि सारंगी की तरह एक वाद्य होता हैं। इसे भर्तृहरि के गीत गाने वाले लिये फिरते हैं।

एक दूसरा यंत्र 'सींगी' था। यह हरिण के सींग द्वारा निर्मित एक विशेष वाद्य होता हैं जो मुंह से बजाया जाता हैं। यह सुषिर जाति का वाद्य हैं। औंधड़ और योगी दोनों एक प्रकार जनेव धारण करते हैं जो काले भेड़े की ऊन से बनाया जाता हैं। इसके बनाने की विधि भी विशेष होती हैं। ब्रिग्स ने लिखा है कि कुमायुं के योगी रूई के सूत का जनेव भी धारण करते

हैं। इसी सूत में एक गोल 'पवित्री' बंधी रहती है जो हरिण के सींग या पीतल, तांबा आदि धातु से बनी होती हैं। इसमें रूई के सफेद धागे से शृंगी {सिंगीनाद} नाम की सीटी बंधी रहती है और रूद्राक्ष की एक मनिया भी झूलती रहती है। प्रातः और संध्याकालीन उपासना के पूर्व योगी लोग इसे बजाया करते थे। इस 'सिंगीनाद' के बंधे रहने के कारण ही जनेव को 'सिंगीनाद जनेव' कहते हैं।[1] इब्नबतूता नामक मिश्री पर्यटक ने भी इस वाद्य का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि योगी लोग प्रातः सायं तथा रात्रि में शृंग के समान किसी वस्तु को बजाया करते थे।[2] योगसम्प्रदायाविष्कृति नामक ग्रन्थ में भगवान शिव द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ को अपना रूप प्रदान करते समय 'नाद जनेउ' नामक वाद्ययन्त्र प्रदान किये जाने का उल्लेख है जिसका अभिप्राय यह था कि भगवान शिव ने स्वय बताया कि यह वाद्ययन्त्र योगियों के नांद के साथ नित्य सम्बद्ध रहने का प्रतीक हैं।[3]

जैसा कि हमने ऊपर कहा कि किसी विशेष वाद्य को धारण करना योगियों के वेष के अन्तर्गत मान लिया गया था किन्तु ऐसे भी साधक थे जो अन्य बाह्यरूपों की तरह इन वाद्ययन्त्रों को अभ्यन्तर में धारण करने की बात कहते थे। जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सत्ता सिद्धों ने अपने वैयक्तिक शरीर में मानी, उसी प्रकार वाद्यों को भी अपने अन्दर स्थित मान कर उनका विवेचन किया। किन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसी मान्यता वाले वे सन्त थे जो किसी भी प्रकार के बाह्याडम्बर को अपनी साधना का अंग नहीं मानते थे। कबीर आदि संत इसी मत कें थे।[3]

इस उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट होती है कि नाथ सिद्धों ने भारतीय संगीत को भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चाहे राग हो, चाहे विशिष्ट प्रकार की वस्तु को आधार बना कर गान की बात हो, या नवीन वाद्ययन्त्रों के प्रयोग की बात हों, सभी दृष्टियों से नाथ–संप्रदाय का भारतीय संगीत के विकास के इतिहास में अपना विशेष योगदान है। तत्कालीन समाज में वाद्ययन्त्रों में 'सारंगी' का संगीत वाद्य के रूप में व्यवहार मध्यकालीन नाथ संतों से ही प्रारम्भ होता है। इस वाद्ययन्त्र का क्या महत्व है, आज भी शास्त्रीय संगीत में संगीतवाद्यों में इसकी उपस्थिति से आंका जा सकता हैं।

आज नाथ सन्तों के द्वारा गायी गयी वाणियों को सुरक्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि रागों के अनुसार उनका संकलित रूप तैयार हो। संगीत की अन्यशैलियों का जिस प्रकार अध्ययन होता है उसी प्रकार संगीत की नाथ शैली का भी अध्ययन किया जाये। इसके लिए महत्वपूर्ण सामग्री इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भी प्राप्त हो सकती है और उस परम्परा के अनुयायी आज के कतिपय गायकों द्वारा भी प्राप्त की जा सकती हैं। अभी भी इस परम्परा के गायकों का अभाव नहीं हैं। इस परम्परा को संरक्षित रखने के लिए आवश्यक है कि ऐसे गायकों का अन्य संगीतकारों की भांति समय समय पर सम्मान किया जाये ताकि वे उत्साह के साथ इस संगीत परम्परा को प्रवहमान रख सकें।

## सदंर्भ

*सो जोगी जाके मन में मुद्रा, रात दिवस न करई निद्रा।*
*मन ये आसण मन में रहणा, मन का जप तप मन सू कहणा।।*
*मन में खपरा मन ये सींगी, अनहद नाद बजावै रंगी।*
*पंज प्रजारि भस्म कर भूका. कहै कबीर सो लहसै लंका।।*
*क.ग्र.पद 206, पृ 258*

# मेवाड़–मारवाड़ की अज्ञात नाथ–धूणिया

रतनलाल कामड़

मेदपाट की उर्वरा जमीन का इतिहास, देश के गौरवशाली इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ रहा है। इसमें त्याग, बलिदान, अपराजेय वीर या धार्मिक सहिष्णुता, भक्ति व राष्ट्रभक्ति एव शैव नाथ साधना पद्धति विषयक सतत, समयं पर प्रमाण प्रस्तुत कर, पूरे देश ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में अपनी यशस्वी कीर्ति संस्थापित की है। यहां के शासको में धर्म, संस्कृति व धार्मिक विलक्षणता के लिए सदैव सर्वस्व के परित्याग की भावना रही हैं।

मेवाड़ के मूल शासक बप्पा रावल एक विशिष्ट ऐतिहासिक उदाहरण हैं जिन्होंने अपने इष्टदेव भगवान श्री एकलिंगनाथजी की आराधना और शैवाचार्य व योगीराज गुरू हारित राशि के आशीर्वाद से मेवाड़ राज्य की स्थापना ८वीं शताब्दी वि.) कर, नाथ धर्म का पालन व विस्तार भी किया हैं। शैव व नाथ योगियों परम्परा मारवाड़ से ज्यादा प्राचीन मेवाड़ियों में रही हैं। श्रीएकलिंगजी,

श्री अमरकजी व श्री झाम्भेश्वर जी जैसे प्राचीन शैवालय उसके ठोस प्रमाण हैं। यही नहीं श्री एकलिंगजी के परिसर में स्थित श्री लकुलीश देवालय की विक्रम संवत १०२८–६७१ ई की प्रशस्ति का यह वाक्य एक विशिष्ट ऐतिहासिक उदाहरण हैं।

'' ऊँ नमो लकुलीशाय।। प्रथम तीर्थ श्वरम्

श्री एकलिंगजी को लकुलीश धर्म की प्रथम तीर्थभूमि के रूप में ख्याति प्राप्त हुई है जिसके कारण मेदपाट् को श्रीएकलिंगजी जी की पुण्यभूमि भी कहा जाता हैं।

ये एकलिंग की पुण्य भूमि,
महिमा मानव गुण धर्मों की
ये आदर्शों का उदयांचल, ये कीर्तिप्रभा सत्कर्मोंकी।
ये धरती परम पुनीता है, महिमा मंडित विश्वभर की
इसके मस्तक पर रही सदा, अनुकम्पा दिशा दिगम्बर की।।
मेवाड़ भूमि का वंश मुकुट तप है हारीत महर्षि का,
ये एकलिंगजी का सिंहासन,
इस पर शासन है समदर्शी का।
मानव सेवा से सम्मानित शिवसुन्दर सत्य मनुजता का।
आकार ले रहा वर्तमान सद्भाव प्रेम समरसता का।।
शिव की छाया से अभिसिंचित मेवाड़ महावट वृक्ष हुआ
दृढ धर्म धुरी धारण करना, इसके जीवन का लक्ष्य हुआ।
शिव की समाधि सी अटल रही ये अरावली पर्वतमाला
इसकी रक्षा में शंकर के नयनों से जागी है ज्वाला।।

इस प्रकार अति अल्प शब्दाकार में हमने मेवाड़ के गौरवगान के साथ ही शैव धर्म व नाथ धर्म के प्राचीन संकेत (मेवाड़) प्रस्तुत किए हैं।

मध्ययुगीन भक्ति साहित्य में, विख्यात निर्गुण ज्ञान गंगा की पीयूषधारा प्रवाहित होने से पूर्व, भारत के पश्चिमोत्तर व पूर्वीय भूभाग में नाथ साधकों व योगियों व उनकी साधना पद्धति का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा हैं। मेवाड़ के साथ साथ मारवाड़ के नरेशों, धर्म गुरूओं व प्रजाजनों पर भी उनका प्रभाव रहा हैं।

यही नहीं, मेवाड़ एवं जैसलमेर में शासकों को उनके नाथ गुरूओं के द्वारा 'रावल' की उपाधि दी जाती रही है तथा चौहान व परमार शासकों के नाम के साथ रावल लगाने की परम्परा रही हैं। १६वीं शती (विक्रमी) में मारवाड़ के शासक रावल मल्लीनाथ और पांच पीरों का नाथ गुरूओं व उनकी परम्परा से गहरा व निकटतम सम्पर्क रहा था और १६–१७वीं शती में आई पंथ का मारवाड़ में प्रचार प्रसार भी रहा था। जिसके आज भी मुख्य केन्द्र बिलाड़ा व नारलाई उसके प्रमाण मौजूद हैं।

नाथों की परम्परा जीवन पद्धति की समानता के दृष्टिकोण को अपनाती है, इसलिए समाज के बहुसंख्यक लोगों ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। मेवाड़ मारवाड़ में प्रचलित दशनामी सम्प्रदाय[२] नाथों की ही शाश्वत देन है। जोगी, कामड़–योगी, मसाणिया जोगी आदि कई शाखाएं, आज भी मेवाड़ मारवाड़ में उसके जीवित प्रमाण हैं। इस प्रकार नाथों का सामाजिक जीवन पर गहरा और चिरस्थायी प्रभाव पड़ा हैं। एवं उनसे प्रभावित होकर योगियों, सिद्धों और पीरों ने भी उस परम्परा की धूणियों भी स्थापित की। उसी श्रृंखला में श्री हरचन्दपीर ने ढालोप में धूणी की स्थापना की जिस ओर विद्वत् समाज व षणकर्ताओं का ध्यान नहीं पहुंचा। इसलिए मैंने इस महत्वपूर्ण धूणी पर व्यापक प्रमाण, अध्ययन व शोध के वाद पहली बार आलेख तैयार कर राष्ट्र के विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

***गोड़वाड़ प्रदेश का श्री रघुनाथ पीर आश्रम, ढालोप सांस्कृतिक व सामाजिक साधना के चेतना का केन्द्रः–***

घाणेराव ठिकाने में देसूरी परगने के अन्तर्गत ढालोप महत्वपूर्ण गांव हैं। राजस्थान के इतिहास में घाणेराव का ठिकाना सुप्रसिद्ध रहा है। इस ठिकाने की स्थापना सन् १६०६ ई में मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह प्रथम के काल में मेडतिया राठौड़ ठाकुर गोपालसिंह के द्वारा की गई थी। उक्त महाराणा के द्वारा उनको कुंभलगढ़ और गोड़वाड़ की रक्षा के दायित्व स्वरूप जाडोल का पट्टा दिया था। सन् १६४६ में भूतपूर्व रियासतों के राजस्थान में विलय के समय घाणेराव ठिकाना तत्कालीन मारवाड़ राजा की प्रथम श्रेणी के ठिकानों में से था।

घाणेराव ठिकाना राजस्थान के इतिहास प्रसिद्ध गोड़वाड़ प्रदेश में स्थित हैं। गोडवाड़ अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला की कर्मभूमि रही, जिसके अवशेष आज भी मौजूद हैं।

गोड़वाड गोढ़वाड़) मगरा से लगा हुआ पश्चिम क्षेत्र है, जो अरावली पर्वतमालाओं के पार नीचे की ओर स्थित है, आजकल यह पाली जिले के अन्तर्गत है। महाराणा कुंभा के शासन काल से गोडवाड़ पर कभी मारवाड़ का अधिकार रहा है। किन्तु महाराणा अरिसिंह के काल में विजयसिंह को यह परगना जागीर में अस्थायी तौर पर प्रदान किया[3] किन्तु तब से लेकर देश आजाद होने तक यह कभी मेवाड़ में पुनः सम्मिलित नहीं हो सका था। यह अभी पाली जिले की शोभा बढ़ा रहा हैं। यह क्षेत्र बहुत उपजाऊ है, इसमें घाणेराव, सादड़ी व बाली आदि प्रमुख स्थान हैं।[4]

घाणेराव इलाके में शैवधर्म शाक्त, वैष्णव, भैरव श्री जैन धर्म व श्रीरामदेवजी के मत का पर्याप्त प्रभाव रहा हैं प्राचीन धर्म संस्कृति, इतिहास व भौगोलिक सम्पन्नता वाले मारवाड़ के प्रसिद्ध गांव ढालोप[5] में श्री रघुनाथपीर का आश्रम सुशोभित हैं।

***श्रीरघुनाथपीर आश्रम***

यह इस गांव का प्रमुख ऐतिहासिक, सांस्कृतिक धार्मिक, व सामाजिक चेतना का मूल्यवान गांव है। जहां तक जानकारी है श्री रामदेवजी की परम्परा मे, यूं कहें शैवसाधना की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण साधना स्थल भी रहा है। इस आश्रम में श्री हिंगुलाज की धूणी, श्री रामदेव जी का देवालय, श्री हनुमान मन्दिर, रघुनाथ पीर का साधना स्थल व आश्रम पूज्य है। यहां के पीरों की समाधियों की परम्परा है। यहां कतिपय जीवित समाधियां भी है, जो पूजी जाती है यथाः श्री हरचन्दपीर की समाधि, श्री रघनाथपीर की समाधि आदि श्रद्धा के केन्द्र है। यहां राजस्थान भर के मेघवशं समाज की पवित्र गुरु गादी पीर (गादी) भी पूजी जाती है।

वैसे यहां मुख्यतया मध्यकालीन युग से धार्मिक, सांस्कृतिक विशेष उत्सव – शिवरात्रि, गुरु पुर्णिमा महोत्सव, सामाजिक चेतना का केन्द्र रहा है, किंतु यहां १९८८ से अखिल राजस्थान मेघवाल

समाज का रघुनाथ पीर आश्रम (धूणी) ट्रस्ट, ढ़ालोप के तत्वाधान, सादड़ी चौताला व बाल चौताला के मेघवंश समाज के पदाधिकारीयों, कार्यकत्ताओं, सदस्यों व नगर के महानुभावों के अथक् परिश्रम व लगन से विशेषकर उक्त ट्रस्ट के श्री अध्यक्ष जी श्री ताराचंद जी हिंगड (सादड़ी), महामंत्री श्री ओमाराम जी सोलंकी, कोषाध्यक्ष, श्री जसाराम जी परिहार व अन्य श्री बी. आर. जी. भाटी (R.A.S., बाली क्षेत्र), श्री पन्ना लाल जी परिहार, श्री तेजराम जी गोयल आदि महानुभाव का यहां सक्रिय सहयोग/सेवाएं प्रदान कर रहें हैं, और उन्हीं के सत्प्रयासों से यहां एक फाल्गुन बद पंचमी को (१६८८ से लगातार) भव्य मेला भरता आया है, जो दिनोंदिन अपने यौवन पर है। इस ट्रस्ट के अन्य पदाधिकारियों व सदस्यों के सहयोग के साथ साथ युवा साथीगण–सादड़ी व बाल चौकला का भी प्रमुखतया योगदान मिलता रहा है तथा जिला पाली, जोधपुर, जालोर, सिरोही, बाड़मेर, बीकानेर व मेदपाट (मेवाड़) मान्य मेघवंश समाज का सहयोग भी सदेव स्मरणीय ही रहेगा। वर्तमान में – मुख्यतया १६८८ से आरम्भ यह आश्रम व ट्रस्ट पूरे राजस्थान प्रान्त का चहेता केन्द्र[६] होकर राष्ट्रीय धरातल पर पल्लवित व पुष्पित होकर अपनी आभा व खुशबू/सौरभ से दसों दिशाओं को प्रकाशमान व सुरभित सा निम्न पंक्ति का अजपा जाप कर रहा है–

१. संकट कटे मिटै सब पीरा
जो सुमिरै, रघुनाथ पीरा।

२. जै जै जै समसपीर गुंसाई
कृपाकरों गुरुदेव की नाईं।

***ढालोप की धूणी पर नाथ–सम्प्रदाय का प्रभाव***

सुविख्यात है कि इस श्री हरचन्दवाणी धूणी के आद्य संस्थापक श्री हरचन्दजी पी थे, उनसे लेकर आज तक (संभवतः चौदह पीर हुए) जो भी यहां 'पीर' पदासीन हुए हैं, उन पर राजसीना की शैव परम्परा व नाथ धर्म व सम्प्रदाय का व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। जैसे; इस धूणी की विभिन्न पूजा–पद्धतियां, श्री अलखजी

व हिंगलाज[9] माता के जम्मा–जागरण व पूजा, अनुष्ठान, विविध –प्रकार की तांत्रिक पूजाएं, कर्मकाण्ड, भैरवपूजा, पीरों की यौगिक साधना मूलक क्रियाएं, आचार विचार, वेशभूषा, जीवन–पद्धति, धूणी में अग्नि को प्रज्ज्वलित कर उसकी पूजा व तपस्या करना, अग्नि की पूजा करना, भभूत लगाना, जीवित समाधियों का मान–सम्मान करना व उनकी पूजा करना, जम्मा जागरण के अनुष्ठान करना, धूणी को प्राथमिकता व विशेष सम्मान प्रदान करना, गुरु की महत्ता, 'अलख निंरजन' शब्दों का उच्च उद्‌घोष करना व उसका बार–बार प्रयोग करना आदि इस तथ्य या प्रभाव के अकाट्‌य व अनूठे प्रमाण है कि ढालोप की इस धूणी व उनकी पीर–परम्परा नाथ धर्म से पूर्णतया प्रभावित रही है। यही नहीं सर्व विदित है कि श्री रामदेवजी स्वयम् नाथ सम्प्रदाय (धर्म–पंथ) के योग्य योगी गुरु श्री बालीनाथ[8] जी के परमपट्ट व प्रसिद्ध शिष्य थे। श्रीरामदेवजी महाराज की धर्मपरम्परा – भोग परम्परा में चार प्रमुख धूणियां[6] मानी जाती है –

१. समसाणी

२. रामदीवाणी (राम नवाणी)

३. हरचन्दवाणी

४. मालाणी धूणी यथा

'पीर', पंडित और झोड कामड़ चारों धूणी के साथ रामनवाणी हरचंदवाणी, समसाणी आदि इस परम्परा की तीसरी प्रमुख धूणी थी। [10]हरचन्दवाणी को भी प्रसिद्धि प्राप्त हैं ज्ञात सूत्रानुसार श्री हरचंन्द परी का आविर्भाव वि. स. १७०० के पूर्व ही हुआ होगा, उन्हानें वि. स. १७०० के लगभग दीक्षा ग्रहण कर, २५ वर्ष पर्यन्त धूणी पर तपस्या करके वि. सं. १७२५ के आसपास ढालोप में जीवित समधी ग्रहण कर ली। उन्होंने नाथ–परम्परा के आलोक में व उस परम्परा के प्रतिनिध धूणी की सुसंस्थापना करके, एक ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पुनर्जागरण का पुनीत कार्य ही किया है। यहीं नहीं श्रीरघुनाथ पीर (रामपीर) की तपस्या व उनके विख्यात पर्चो से प्रभावित होकर, तत्कालीन नाथ योगियों ने, जो वहां प्रमुख रूप में तैनात थे, उन्होंने श्री राधूपीर[11] को 'नाथ' योगी की

उपाधि (अलंकरण) से भी, विभूषित किया था। यद्यपि राधूपीर ने नाथ योगियों को परास्त कर, उन्होंने इसे श्री रामदेव जी के धर्म की परम्परा में स्थापित करने के साधु प्रयास किये, किंतु धूणी की पीर नाथ धर्म की पुनः सुसमृद्ध कड़ी हो गई। नाथ–योगियों विशेषकर यह धूणी पूरे भारत वर्ष – विशेषतया राजस्थान, गुजरात, मालवा, दिल्ली, पंजाब आदि में प्रसिद्ध हो गई।

***हरचन्दवाणी की अन्य धूणियां***

वैसे इस परम्परा की ढालोप मुख्य धूणी है, किन्तु कोट (पाली) गांव की धूणी इससे भी पुरानी बताई जाती हैं· इसके अलावा ७ अन्य धूणीयां भी होने की सूचना स्वयम श्री गोकलदास जी महाराज ने इस प्रकार बताई है:

१. नाथसर

२. नांगल (बरड़ा)

३. चारणवास

४. धानोना

५. अमरसर

६. देवीपुरा

७. लाखणी

## सदर्भ

1 राष्ट्रीय कवि श्री नरेन्द्र जी मिश्र की यह कविताएं साभार प्रस्तुत है।

2 दशनाम इस प्रकार बताये गये है- गिरि, पर्वत, सागर, वन, अरण्य, तीर्थ, आश्रम, पुरी, भारती एवं सरस्वती।

3 जोधपुर - मारवाड़ के शासक

4 गोडवाड प्रदेश, मेवाड़ की सीमा से सटा है। राव जोधा व महाराणा कुंभा 1433-1468 ई. के समय मेवाड-मारवाड़ राज्यों की सीमाएं तय की गई। इस घटना के बाद 500 वर्षों से अधिक यह इलाका मेवाड़ राज्य के अधीन रहा है।

5 अरावली के पश्चिमी ढ़लान/ढ़ाल पर बसा हुआ गांव।

6 प्रतिवर्ष श्रावणी पूर्णिमा-गुरूपूर्णिमा को यहां पर भव्य महोत्सव होता है। इस वर्ष वि. सं. 2053 श्रावणी पूर्णिमा दि. 30.7.96 को भी यहां भव्य उत्सव सुसम्पन्न हुआ।

7 'हिंगुला मगंला सीता सुषुम्णा मध्य गामिनी।'
वामेकेश्वर तंत्रगत महात्रिपुरा सुन्दरी-सहस्त्र नाम
बलोचिस्तान में सिंध और अफगानिस्तान के मध्य शाक्य देवी व उनका पीठ श्री हिंगुलाज विद्यमान

है। ले कर्नल टॉड रचित 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' का हिन्दी अनुवादित ग्रंथ 'पश्चिम भारत की यात्रा', राज. प्रा. विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ई. 1965, पृ. 341 का फुटनोट दृष्टव्य है। 'अग्निमीले पुरोहित' न

8 पोकरण नगर से 5-6 मील की दूरी पर रामदेवरा स्थल व पोकरण के मध्य श्री बालीनाथ जी महाराज की तपोभूमि व उनका आश्रम है। जो आज भी उनका पूजास्थल व देवालय भारी श्रद्धा का स्थान है।

9 बाबा रामदेव, इतिहास एवं साहित्य, सोनाराम विश्नोई, कलकत्ता, 1981, पृ. 39 से 45 तक इन चारों के अलावा अर्थात इन चारों धूंणीयों के कोटवाल को झालाणी साधु व धूणी के नाम को झालाणी धूणी कहा जाता है।

10 मेघवंश इतिहास, पृ. 187-88

11 ज्ञात सूचना के अनुसार श्री राधूपीर मेवाड़ या मारवाड़ ढालोप गांव या जैतारण के मेघ महर्षि थे। ये यहां के प्रमुख्य प्रसिद्ध पीर हुए है।

# *ORIGINAL HATHAPRADIPIKA SOURCES IN RAJASTHAN*

YOGAMAHARATNA M. VENKATA REDDY

## SEARCH FOR ORIGINAL HATHAPRADIPIKA:

HATHAPRADIPIKA (HP) is an important treatise on Hathayoga Nathayoga written by Atmarama (1534-1634 A.D.) Shrinvasabhatta Mahayogindra refers to this classic in his HATHARATNAVALI repeatedly. Unfortunately there is a contravention about the extent of the original TEXT. No information about the author or his composition is furnished by the HP. One has to read very much between the lines to catch a few hints here and there.

Hundreds of manuscripts on HP are deposited in the Oriental Libraries in the country and abroad. After the first printed edition of Hathapradipika by Tukaram Tatya of Bombay in 1893, several Indian and foreign editions of HP have come out. The author has collected so far fifteen printed texts of HP in various languages. All these editions are more or less the production of similar text with the exception of the critical edition brought out by the Kaivalyadhama S.M.Y.M. Samit i, Lonavala, 1970. The

efforts made for this critical edition are noteworthy because 101 manuscripts were consulted for this edition.

The critical edition contain total 409 verses and 5 chapters. This last chapter is not found in any of the printed editions of Hathapradipika. Further, it is to be noted that different texts of HP vary in their extent. Some texts contain a few verses which are not found in the other texts. What could be the source of the variance in these verses ?. What length was the ORIGINAL HP are not known?.

The purpose of this paper is to invite attention of Yoga students and scholars to search for ORIGINAL HATHAPRADIPIKA. Textual criticism of the ORIGINAL HP proceed from the incorrovertible fact that the text of the treatise has been handed down in two divergent forms of NORTHERN and SOUTHERN recension familiarly known as "AARYAVARTHA and the DAKSINAPATHA". The DAKSINAPATHA (Southern) tradition is described below.

## SOUTHERN TRADITION

CONTENTS OF THE ORIGINAL HATHAPRADIPIKA AS STATED IN THE SHIVATATVA RATNAKARA.

Late Dr. P.K. Gode quotes only once fixing the date of Haphapradipika as follows "A work called the SHIVATATVARATN" composed in 1709 A.D. appears to have made of HYP. Dr. Gode mentioned only the date and not touched the contents of the text.

Some of the new slokas quoted in STRK on HP lead me to believe that there must be some more text of ORIGINAL which unfortunately is not available to us. We are informed about the details of the contents of this text by SHIVATATVA RATNAKARA.

Swami Digambarji, a critical editor of HP-Kailvayadhama (p-204) mentions "Stanzas not found in HP but added in other books as belonging to HP". Three works namely:

(1) GORAKSHA SIDDHANTA SAMGRAHA (2) HATHA SANKETA CHANDRIKA and (3) YOGA CHINTAMANI have quoted verses from HP. One work added to this list is the work of STRK.

There are about 188 slokas described about yoga philosophy and practical yoga in STRK. It will be interesting to compare and survey the STRK with published HPs or ORIGINAL HP or Jodhpur MS.

Bhasava Bhupala (1694-1714 A.D.) was the ruler of the Kaladi Kingdom, author of STRK quoted in the colophon as follows:

"NALASYA NAKULASYAPIMAM PARASARAM TADHA

SIVAYOGAM SHIVALOKAM HATHAYOGAPRADIPIKAM".

SOURCE OF ORIGINAL HP FORM COMMENTARIES:

(1) The following commentaries on HATHAPRADIPIKA OF Atmarama are found mentioned in the Literature:

(1) HATHAYOGA PRADIPIKA Tika by RAMANDANDA TIRTHA

(2) HATHAPRADIPIKA Tippana by UMPATI

(3) HATHAPRADIPIKA commentary (Hindi) by VRAJABHUSAN

(4) HATHAPRADIPIKA Vritti (Marathi) by BHOJATMAJA

(5) HATHAPRADPIKA commentrary by Madadeva

(6) HATHAPRADIPIKA Vyakhya - Jyotsna by BRAHMANADA

(7) HATHAPRADIPIKA - Commentary by LALACHHIRAMAIAH

Out of the above, commentaries No. 1,2,3, and 5 are not traceable. The most well-known commentary on HATHAPRADIPIKA is the one by Brahmandanda (1825-1869 A.D.) which has been published by the theosophical publishing house, Adyar, Madras. The above text contains only four chapters. There is no clue from the commentators of HP on "ORIGINAL HATHAPRAADIPIKA".

**NORTHERN TRADITION CONTENTS OF THE ORIGINAL PRADIPIKA IN JODHPUR (MS).**

DESCRIPTION OF MANUSCRIPT

A unique manuscript of HP prescribed in the RAJASHTAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE-JODHPUR vi No. 6756, size 17 cm x 9 cm page 171, lines 7-9 and leters 20-27.

"Iti shri sahajanda sisyena sri svatmarama yogindra viractitayam hathapradipikayam siddhantamuktavalyam sasthopadesh iti/shirrastu/sriman maharaja sri Jayasimhadeva Jikasyajnaya likhitamidam tularamena samvat 1765 mase kishna pakse 10 - Shrirams jayati"

As per the information from the Rajasthan Oriental Research Institute, there was no such a name of the King Jayasimha available in the family of Jodhpur Kings.

SALIENT POINTS:

(1) The special feature of the Jodhpur manuscript is that it contains not only largest number i.e. 1553 verses, but also number of topics which are availing in printed texts.

(2) Greatest number of asanas described in any traditional text is found in this.

(3) 87 new asanas described in this original HP.

(4) The text is full of useful quotations and advice on practice.

(5) An interesting problem that is created by the Jodhpur manuscript is the mention of "SIDDHANTA MUKTAVALI" along with "HATHAPRADIPIKA" in the colophon. What is the relation of Siddhanta Muktavali with Hathapradipika. Has the Hatha pradipika something to do with Siddhanta ?.

**SIDDHANTA THEORY:**

According to Brihadyogi Yanjavalkya Samithi Siddantha means "An Orthodox System of Philosophy" and the number of these systems is seven. The word "SIDDHANTA" refers

to a work to be studied by these who seek self realisation.

"ATMAJNANAM NIMITTAM TU

SIDDHANTAI VICINTAYET"

(BR YAJ-SM-XII-35)

From this point of view Atmarama considers Hathapradipika as a Siddhanta granth of Hathayoga/Nathayoga. He mentions in the end of the text as follows:

"HATHAPRADIPIKAM SHRUTVA

SIDDHANTAGRANTHAMUTTAMAM

TYAKTVASHRANTIMASSTRANI

SOTAM SADYA PARAM GATIH".

**CONCLUSION**

In the light of the above discussion it may be considered that the Jodhpur (Rajasthan) manuscript represents original text of Hathapradipika.

**REFERENCES:**


(1) Gharote M.K.: A Critical note on Hathapradipika YM-July 1989- 99 17.

(2) Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur vide No. 6750 Sivatatvaratnakara by Basavabhuplala, Mysore Oriental Institute.


Note:- There is evidence in the shape of a "Tamra Sasanam" preserved even today in the District Court of Visakhapatnam with No. O.S.C.M.A.I. 1946-47 wherein it is mentioned that in the year 1643 A.D. Sri Pusapati Sitharama Gajapathi of Kalinga Vijaynanagar donated an "Agraharma" 8 miles form Vijayanagar on the coast of Bay of Bengal on the occasion of Solar eclipse. The Maharaja was himself a great devotee of Siva and the Agraharm was given away in appreciation to a devatee of Siva and a Sanskrit scholar by name "Somayajula Atmaramannd".

## हठप्रदीपिका की कतिपय गुत्थियां

डॉ. म.ल.घरोटे

हठप्रदीपिका यह स्वात्माराम योगीन्द्र द्वारा लिखित हठयोग का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। उसका प्रभाव न केवल योगसाधकों पर दिखायी देता है, अपितु उनके पश्चात् के हठयोग के ग्रन्थकार भी प्रभावित हुये। जैसा कि योगचिन्तामणि, हठरत्नावली, हठसंकेतचन्द्रिका, हठतत्वकौमुदी आदि ग्रन्थों से प्रतीत होता है। हठप्रदीपिका ग्रन्थ की कई पांडुलिपियां प्राच्यविद्या ग्रन्थालयों में भारत तथा विदेशों में सुरक्षित हैं। इसका पहला मुद्रण मम्बई के तुकाराम तात्या ने सन् १८९३ में किया था। इस ग्रन्थ के भारतीय और विदेशी जितने भी प्रकाशन उपलब्ध हुए हैं वे सारे तुकाराम तात्या द्वारा प्रकाशित हठप्रदीपिका के पुनर्मुद्रण हैं। इस में अपवाद केवल सन् १९७० में कैवल्यधाम श्री मा.यो.मं. समिति, लोनावला द्वारा संशोधित तथा संपादित प्रकाशन का है जो १०१ विभिन्न पांडुलिपियों पर आधारित है। इस प्रकाशन में ५ उपदेश हैं जिनमें ५वां तथा अंतिम उपदेश दोषचिकित्सा पर है। गलत योगाभ्यास से योगसाधकों में जो दोष उत्पन्न होते हैं उनकी चिकित्सा का वर्णन इस पांचवें उपदेश में मिलता है जो किसी अन्य प्रकाशन में नहीं मिलता।

***1. हठप्रदीपिका ग्रन्थ की व्याप्ति कितनी? उसके मूल उपदेश कितने? चार, पांच, छः या दस?***

हठप्रदीपिका के प्रकाशित ग्रन्थों में तथा बहुत सारी अप्रकाशित पांडुलिपियों में चार उपदेश मिलते हैं। स्वात्माराम द्वारा वर्णित हठाभ्यासानुक्रम में आसन, कुम्भक {प्राणायाम}, मुद्रा और नादानुसंधान ऐसे चार अभ्यास सम्मिलित हैं। इससे ग्रन्थ में चार उपदेश होना स्वाभाविक लगता है। कैवल्यधाम प्रति में संगृहीत ५ वां उपदेश ग्रन्थ का अंगीभूत उपदेश नहीं दिखायी देता। आडयार लायब्रेरी एवं रिचर्स सेंटर द्वारा प्रकाशित हठप्रदीपिका में श्लोक संख्या प्रथम उपदेश में ६७, द्वितीय उपदेश में ७८, तृतीय उपदेश में १३०, तथा चतुर्थ उपदेश में ११४, इस प्रकार कुल श्लोक संख्या ३८६ पायी जाती है। अन्य प्रकाशनों में भी न्यूनाधिक यही श्लोकसंख्या दी गयी है। कैवल्यधाम प्रतिलिपि में, श्लोक संख्या ४०६ दी गयी है। कविकाव्यकालकल्पना में हठप्रदीपिका की श्लोक संख्या ५०० दी गयी है। इंडिया ऑफिस लंदन की पांडुलिपि में ४०१ श्लोक हैं तथा ऑक्सफोर्ड में संगृहीत पांडुलिपि में केवल ३३१ श्लोक हैं। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत क्र. ६७५६ की पांडुलिपि में छः उपदेश तथा श्लोक संख्या १५५३ है। महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में संगृहीत क्र. २२२७ की पांडुलिपि में दस उपदेश उपलब्ध हैं। इस पर बालकृष्ण द्वारा लिखित 'योगप्रकाशिका' नामक व्याख्या भी प्राप्त है जो कि महाराजा मानसिंह पुस्तक में क्र. २२२८ में संगृहीत हैं। इस उपदेशावली क्र. २२२६ की पांडुलिपि में श्लोक संख्या ६४३ है। योगप्रकाशिका व्याख्या में भी यही संख्या पायी जाती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि रा.प्रा.प्र., जोधपुर की पांडुलिपि सबमें वृहद्काय है। यह उसकी विशेषता है तथा उसमें अनेक विषयों की सुसंगत चर्चा है। महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में संगृहीत पांडुलिपि में सर्वाधिक दस उपदेश हैं तथा अन्य मुद्रित प्रतिलिपियों की अपेक्षा श्लोक संख्या कुछ अधिक हैं।

प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त प्रतिलिपियों में सें कौनसी प्रतिलिपि अधिक प्रमाणित मानी जाय। अभी तक अडयार प्रतिलिपि प्रमाणित मानी जाती है। परन्तु उसके बाद कैवल्यधाम द्वारा संपादित

प्रतिलिपि आज प्रमाणभूत मानी जाती है। तथापि जोधपुर की दो पांडुलिपियां उपलब्ध होने पर आज हठप्रदीपिका की प्रमाणभूत प्रतिलिपि का पुर्नविचार करना आवश्यक हो गया है। इस विचार के लिए रा.प्रा.प्र. जोधपुर की वृहद्काय पांडुलिपि की अन्य प्रतिलिपियों की तुलना में अधिक जानकारी प्राप्त करना उचित होगा।

## 2. रा.प्रा.प्र. जोधपुर की पांडुलिपि क्र. 6756 का वर्णन

आकार १७ सेमी X ९ सेमी पृष्ठ १७१ पंक्ति ७–६ अक्षर २०–३०, पुष्पिका इस प्रकार है "इति श्री सहजनाथशिष्येण श्री स्वात्मारामयोगीन्द्र, विरचितायां हठप्रदीपिकायां सिद्धान्तमुक्तावल्यां षठोपदेशः इति। श्रीरस्तु। श्रीमन्महाराजाधिराज श्री जयसिंहदेवजीकस्याज्ञया लिखितमिदं तुलारामेण संवत् १७६५ वर्षे चैत्रे मासे कृष्णपक्षे १० श्रीरामो जयति। श्री गणपतये नमः।

चार उपदेशवाली हठप्रदीपिका में जो विषय नहीं मिलते, परंतु उपर्युक्त पांडुलिपि में मिलते हैं उन्हें तालिका १ में प्रस्तुत किया गया है। कैवल्यधाम प्रतिलिपि के पांचवे उपदेश का औषधकथन का विषय जोधपुर के उपर्युक्त पांडुलिपि में सर्वथैव नहीं मिलता। इस पांडुलिपि में प्राप्त श्लोकसंख्या तथा विविध वर्णित विषयों को तालिका २ में दर्शाया गया है।

इस पांडुलिपि में प्राप्त अतिरिक्त जानकारी में विभिन्न आसनों का वर्णन महत्वपूर्ण है। इतनी अधिक संख्या में आसनों का वर्णन अन्य किसी सांप्रदायिक ग्रंथ में नहीं मिलता। कुछ आसनों के नाम तक अनजान से लगते हैं। जैसे शिवासन, पूर्वासन, सप्तर्षि आसन, गोरक्षजंजालि आसन, सावित्री समाधि आसन, इत्यादि।{देखिये तालिका ३} प्राणायामों के वर्णन से चंद्राभ्यास कुम्भक तथा भुजंग कुंभक सम्मिलित हैं। भुजंग कुंभक सीत्कार कुंभक का दूसरा नाम है। आसनों के विषय में लिखा है कि आसनों का अभ्यास योगमार्ग पर अगला कदम है। कहा है–

आसनेन गतो {तं} जन्म प्राणायामं न कारयेत्।
योगधर्म परिभ्रष्टा गतो {तं} जन्म निरर्थकम्।। ह. पृष्ठ १११ – ८३ में।

विविध प्रकार के बने हुए आसनों का वर्णन भी दिया गया है।

तालिका १

जोधपुर पांडुलिपि क्र. ६७५६ में वर्णित अतिरिक्त विषय

१. गुरु के लक्षण
२. अच्छे तथा बुरे शिष्य के लक्षण
३. विहित धर्माचरण की आवश्यकता
४. मुद्रित ग्रंथों में वर्णित १३ आसनों के अतिरिक्त ८७ अधिक आसनों का वर्णन
५. आहार के नियम
६. प्राणायाम की प्रशंसा
७. कन्द, नाड़ी, कुण्डलिनि वर्णन। खेचरी का विस्तार से वर्णन.
८. तारक योग, अद्वैत योग का उल्लेख
६. मृत्युसूचक अशुभशकुन तथा उसके नियंत्रण के उपाय

तालिका – २

जोधपुर पांडुलिपि क्र. ६७५६ में विभिन्न विषयों पर पाये जाने वाले अतिरिक्त श्लोक

| उपदेश क्रमांक | अतिरिक्त श्लोक संख्या | विषय |
|---|---|---|
| १. | ११० | हठयोग की आवश्यकता, सिद्धों की नामावलि, गुरु के लक्षण, बुरे शिष्य के लक्षण, विहित आचरण की आवश्यकता। |
| २. | ५८ | यम, नियम, १०० आसनों का वर्णन, आहार के नियम |
| ३. | ७४ | प्राणायाम का महत्व और प्रशंसा |
| ४ | १६ | विभिन्न कुंभकों का वर्णन |
| ५. | ५१६ | कन्द, नाडी, कुण्डलिनी का वर्णन, १० मुद्राओं सहित खेचरी का विशेष वर्णन |
| ६. | ३६४ | समाधिवर्णन, नादानुसन्धान पर विशेष जोर, अद्वैत योग, अशुभ शकुन |

कुल अतिरिक्त श्लोक संख्या ११४४

## तालिका – ३

### जोधपुर पांडुलिपि क्र. ६७५६ में वर्णित आसन

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | स्वस्तिकासन | २. | वीरासन | ३. | अग्निकुण्डासन |
| ४. | योगिन्यासन | ५. | गोमुखासन | ६. | तुरासन |
| ७. | कंकणासन | ८. | गंधर्वासन | ९. | शिवासन |
| १०. | सावित्री–समाध्यासन | | | ११. | मणिबन्धासन |
| १२. | पद्मप्रकाशआसन | १३. | पद्मशंखासन | १४. | पद्मनाभबन्धासन |
| १५. | भैरवासन | १६. | मत्स्येन्द्रासन | १७. | मत्स्येन्द्रपीठबन्धासन |
| १८. | पश्चिमतानासन | १९. | कन्दोरकासन | २०. | योन्यासन |
| २१. | कुब्जिकासन | २२. | विभूषणासन | २३. | सप्तर्षि आसन |
| २४. | कदली आसन | २५. | पूर्वासन | २६. | भिंगासन |
| २७. | त्रिंबकासन | २८. | शेषासन | २९. | तीक्ष्णासन |
| ३०. | जैत्यासन | ३१. | भगासन | ३२. | कूर्मासन |
| ३३. | पंकजासन | ३४. | गोरक्षजंजाली आसन | | |
| ३५. | कपिलासन | ३६. | काकासन | ३७. | गरूड़ासन |
| ३८. | जामासन | ३९. | शरासन | ४०. | धातासन |
| ४१. | पुष्पबन्धासन | ४२. | विष्णुआसन | ४३. | गोप्यासन |
| ४४. | वैतालासन | ४५. | गणेशासन | ४६. | योगपदयोगासन |
| ४७. | प्रभाकरासन | ४८. | पार्वती आसन | ४९. | अजरासन |
| ५०. | सिंहमृगासन | ५१. | नागफणासन | ५२. | ब्रह्मासन |
| ५३. | कुरकलासन | ५४. | चक्रवाकासन | ५५. | वैशाखी आसन |
| ५६. | चकोरासन | ५७. | कोकासन | ५८. | शुकचकोरासन |
| ५९. | आकाशतानासन | ६०. | कुडी आसन | ६१. | किलकिलासन |
| ६२. | दंशासन | ६३. | सिद्धमुक्तावलि आसन | | |
| ६४. | कुक्कुटासन | ६५. | मयूरासन | ६६. | मशकासन |
| ६७. | आत्मारामासन | ६८. | मृत्तिकाभंजकासन | ६९. | फोट्यासन |
| ७०. | मंगलबन्धासन | ७१. | निद्रानाशासन | ७२. | वृश्चिकासन |
| ७३. | कूर्मासन{उत्तान} | ७४. | पक्ष्यासन | ७५ | अभिकासन |
| ७६. | अजगरासन | ७७. | पारथी आसन | ७८. | ऊर्णनाभी आसन |
| ७९. | गोही आसन | ८०. | कपालिआसन | ८१. | वृक्षासन |
| ८२. | तपासन | ८३. | संग्रामासन | ८४. | बलिजस्यासन |

| | | |
|---|---|---|
| ८५. विकटासन | ८६. कर्मासन | ८७. नागबोधासन |
| ८८. हंसासन | ८६. सर्पासन | ६०. मधुपासन |
| ६१ सिद्धासन {वज्र, गुप्त, मुक्त} | | ६२. पद्मासन |
| ६३. भद्रासन | ६४. शवासन | |

३. हठप्रदीपिका के विषय में सब से महत्वपूर्ण गुत्थी है हठप्रदीपिका सिद्धांत मुक्तावली सम्बन्ध जो कि उपर्युक्त पुष्पिका में बताया गया है। सिद्धान्तमुक्तावली और हठप्रदीपिका का अन्योन्य सम्बन्ध क्या है? क्या हठप्रदीपिका को सिद्धान्त से कर्तव्य है? सिद्धान्त शब्द से ध्वनित होता है 'आत्मज्ञान के निमित्त किया जाने वाला अभ्यास'। कहा है 'आत्मज्ञाननिमितं तु सिद्धान्तानि विचिंतयेत्' – बृ.याज्ञ.स्मृ. १२/३५। इस दृष्टि से स्वात्माराम अपने हठप्रदीपिका ग्रंथ को हठयोग सिद्धांत ग्रंथ समझते हैं। उन्होंने ग्रंथ में भी कहा हैं:

हठप्रदीपिकां श्रुत्वां सिद्धान्तग्रंथमुत्तमम्। {रा}
त्यक्त्वा भ्रान्तिमशास्त्राणि सतां सद्यः परां {परा} गतिः।।

इसलिए उन्होंने अपनी पुष्पिका में प्रत्येक उपदेश के अंत में कहा है–

'इति श्रीसहजनाथशिष्येण श्रीस्वात्माराम
योगीन्द्रेण विरचितायां हठप्रदीपिकायां सिद्धान्तमुक्तावल्यां ...
उपदेश।।

जिन प्रतिलिपियों में हठप्रदीपिका के साथ सिद्धान्तमुक्तावली का नाम पुष्पिका में जुड़ा हुआ है ऐसी कम से कम आठ प्रतिलिपियां उपलब्ध है जिसका ब्यौरा निम्न प्रकार से हैं–

| | |
|---|---|
| इ– २०३७/१३<br>टी – २४/३ | नेपाल पांडुलिपियों की मायक्रोफिल्म जो बर्लिन में संगृहीत है। |
| एच – ४६७<br>एच – १५६५ | हार्वर्ड युनिव्हर्सिटी में संगृहीत। |

| | |
|---|---|
| यू. पी. – १६३१<br>यू. पी. – १६३२ | फिलाडेल्फिया में पेन्सिल्वानिया युनिवर्सिटी में संगृहीत |
| १५१७१६७३२–३१<br>२३१०४६७६–१५ | रा. प्रा. प्र. जोधपुर में संगृहीत |
| ३४७१ | रा. प्रा. प्र. जयपुर में संगृहीत |

इनमें से कुछ खण्डित हैं। कुछ चार उपदेशों वाली प्रतिलिपि से मिलती है। केवल रा.प्रा.वि.प्र. में संगृहीत प्रतिलिपि ही पूर्ण हैं। मुद्रित प्रतिलिपियों की तुलना में रा.प्रा.वि.प्र. की पांडुलिपि में अंतिम भाग सुसंगत लगता है।

### 4. दस उपदेश वाली हठप्रदीपिका की प्रतिलिपि

कैवल्यधाम प्रतिलिपि के संपादक प्रस्तावना में लिखते हैं–

*"In Goraksasiddhantasangraha (p. 38) there is a reference to Hathapradipika having as many as ten chapters. But we have not yet come across any manuscript of this text covering more than five chapters. There is a crying need for further research aimed at finding a complete or differently arranged but exhaustive version of this important text."*

कैवल्यधाम प्रतिलिपि में Appendix - II में गोरक्षसिद्धान्त संग्रह से हठप्रदीपिका के १७ श्लोक दिये गये हैं जहां गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में पृ. ३८–४० में ३४ श्लोक उद्धृत हैं। हमें १० उपदेशवाली एक पांडुलिपि मिली है जो महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश जोधपुर में संगृहीत है। इस पाण्डुलिपि के दशमोपदेश में कुल श्लोक संख्या ४३ है। इससे स्पष्ट है कि १० उपदेशवाली हठप्रदीपिका की अन्य प्रतिलिपियां भी होंगी जिनकी श्लोक संख्या में अंतर है। दस उपदेशवाली हठप्रदीपिका के विषय तथा श्लोक संख्या कुछ अपवाद छोड़कर मुद्रित चार उपदेशवाली हठप्रदीपिका से साम्य प्रतीत होता है।

हठप्रदीपिका के जो विभिन्न संस्करण दिखायी देते हैं उनके आधार पर यह अंदाज लगाया जा सकता है कि रा.प्रा. वि.प्र. में संगृहीत क्र. ६७५६ की पांडुलिपि हठप्रदीपिका का मूल रूप होगा जिसे सिद्धान्तमुक्तावली भी कहा जाता था। धीरे धीरे उसका प्रारूप बदलता गया। उसका संक्षेप किया गया और बहुत सा भाग छोड़ा गया। यह संक्षेप स्वयं स्वात्माराम द्वारा किया गया अथवा अन्य किसी के द्वारा यह निश्चिम रूप से कहा नहीं जा सकता। इतना अवश्य लगता है कि कालज्ञान तथा विदेहमुक्ति जैसे विषंय मूल ग्रंथ में अनिवार्यरूप से रहे होंगे। वे आज की मुद्रित प्रतिलिपियों में नहीं मिलते। हठप्रदीपिका के साथ सिद्धान्तमुक्तावली का निर्देश कुछ काल तक चलता रहा। बाद में जैसा कि हम मुद्रित प्रतिलिपियों में देखते हैं; सिद्धान्तमुक्तावली का नामनिशान मिट गया। संक्षेप के साथ साथ विषयों का विभाजन तथा पुनर्रचना की प्रक्रिया भी घटी दिखायी देती है, जैसा कि महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में संगृहीत क्र. २२२७ की पांडुलिपि में पाया जाया जाता है। छः के बदले हठप्रदीपिका के उपदेशों की संख्या दस तक पहुंच गयी। इस प्रकार हठप्रदीपिका का संस्करण कम से कम तीन या चार अवस्थाओं से गुजरा सा लगता है। परन्तु विस्तृत वर्णन के लिए हमें क्र. ६७५६ का अवश्य विचार करना चाहिये।

# मुण्डकोपनिषद् टीका विद्वज्जनमनोरंजिनीः अनुशीलन

डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा

मुण्डकोपनिषद पर विद्वज्जनमनोरञ्जिनी नामक यह अप्रकाशित पाण्डुलिपि के रूप में उपलब्ध अपूर्ण टीका है। यह मात्र प्रथम मुण्डक के द्वितीय खण्ड तक ही उपलब्ध हुई है। अतः लेखक के देश काल के विषय में प्रकाश डालना संभव नहीं है। इसके लेखक उन्नीसवीं शती के महाराजा श्री मानसिंह हैं। यह नाथ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुरूप लिखी गई टीका है।

***नाथ सम्प्रदाय***

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आदिनाथ माने जाते हैं जो शिव स्वरूप ही हैं।[1] नाथ शब्द के अतिरिक्त भी अन्य अनेक नामों से इस सम्प्रदाय का परिचय मिलता है, जैसे सिद्धगत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, योगसम्प्रदाय, अवधूतमत, अवधूतसम्प्रदाय इत्यादि।

इस सम्प्रदाय का मुख्य धर्म योगाभ्यास ही है तथा नाथ ही इनके मत में सिद्ध पदवाच्य है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' इनका प्रमुख ग्रन्थ है। अपने मत को सिद्धमत या अवधूतमत के नाम से पुकारते हैं। किंवदंती है कि आद्यशंकराचार्य ने भी अन्तिम अवस्था में इस

सिद्धमत से प्रभावित होकर "सिद्धान्तबिन्दु" नामक ग्रन्थ लिखा था। इस सम्प्रदाय का मानना है कि वेदान्त का अद्वैतवाद, वैशेषिकों का द्वैतवाद, मीमांसकों का कर्मवाद तथा अन्यान्य दार्शनिक भी भेदबुद्धिजनित अपने अपने प्रपञ्चों से ग्रस्त हैं एवं तत्त्वज्ञान से वंचित हैं। केवल नाथ सम्प्रदाय का सिद्धमत ही तत्त्वज्ञान के लिए संसेवजीय है।[2]

***नाथ शब्द का निर्वचन***

नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'ना' को अनादि धर्म का तथा 'था' को भुवन-त्रय के स्थापक का द्योतक माना गया है- 'नकारो अनादिरूपं यस्थकारः स्थाप्यते सदा। भुवनत्रयमेवैकः श्रीगोरक्ष! नमोऽस्तुते।।[3]

श्रीनाथ शब्द के इसी आशय को रूपान्तर से भी निरुक्त किया गया है कि 'श्री' शब्द मोक्षदान का तथा 'नाथ' शब्द अज्ञाननिवृत्तिपूर्वक ब्रह्म के साक्षात्कार का सूचक है।

श्री मोक्षदानदक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात्।
स्थगिताज्ञानविभवात् श्रीनाथ इति गीयते।[4]

***मुण्डकोपनिषद शब्द की अन्वर्थकता***

छेदन अर्थ वाली मुडि धातु से आगे कर्त्ता में ण्वुल् प्रत्यय होने पर 'मुण्डक' शब्द निष्पन्न होता है। जो उपदेश के माध्यम से शिष्यों के अनिष्ट का परिहार करता है, वह मुण्डक है, वही नाथ सम्प्रदाय में 'अवधूत' कहलाता है। इस मुण्डक से सम्बन्धित उपनिषद् ही मुण्डकोपनिषद् है। उपनिषद् शब्द भी अन्तर्भावित णिजन्त है अर्थात् उप-निषीदति-योग बोधयति- इस व्युत्पति के आधार पर जिसके द्वारा वह अक्षर ब्रह्म सत्यनाथ अधिगत किया जा सके वह 'परा' विद्या ही उपनिषद् है। वही योग विद्या है, जिसका उपदेशक 'मुण्डक' है। यही विवरण विद्वज्जनमनोञ्जिनी टीका में मुण्डकोपनिषद् का प्रस्तुत किया गया है।[5]

यद्यपि उपनिषद् शब्द का अर्थ योग विद्या है तथापि इस विद्या का प्रतिपादक ग्रन्थ होने के कारण मुण्डकोपनिषद् ग्रन्थ में भी यह लाक्षणिक प्रयोग समझना चाहिए।

क) योग विद्या और नाथपद का वैशिष्ट्य:–

टीकाकार ने प्रारम्भ में श्रीनाथाय नमः लिखकर नाथसम्प्रदाय के प्रवर्तक के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है तथा प्रारम्भिक मंगल पक्ष में भी श्रीनाथजी को ही समस्त विश्व का कर्ता एवं गुरु कहा गया है तथा वेदान्तियों के अद्वैतवाद से विलक्षण नाथ सम्प्रदाय के 'द्वैताद्वैतविलक्षणसमतत्त्व' के प्रतिपादक प्रवर्तक श्रीनाथजी से प्रसन्नता की कामना की गई है।[6]

टीकाकार बड़ी विनम्र भावना से कहता है कि यद्यपि वैराग्य सम्पन्न तथा चित्तवृत्तियों को अवरुद्ध करने वाले उन सिद्धों के वचनों की थाह लगा पाना मादृश तरलमति वाले के लिए संभव नहीं है। तथापि अपनी वाणी को परिभाषित करने की दिशा में मेरा उसी प्रकार का प्रयास है जिस प्रकार गलियों का दूषित जल भी गंगा प्रवाह को प्राप्त कर निर्मल हो जाता है।[7]

टीकाकार ब्रह्मविद्या को योगविद्या का पर्याय ही मानते हैं तथा लक्ष्यवस्तु नाथ पद की प्राप्ति को। मुण्डक की प्रथम मन्त्र स्वरूपा पंक्ति 'ओं ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव' का अवतरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि– योग विद्या के निरूपण प्रसंग में 'ब्रह्म' पद से सिद्धस्वरूप श्री सत्यनाथ ही अभिप्रेत हैं। वे परमकारुणिक हैं, 'अतः दुःखरूपी पंक में निमग्न, आत्मा में अनात्मबुद्धि रखने वाले सामान्य जन का उद्धार करने की इच्छा रखते हैं। वे तो द्वैत स्वरूप हैं न वा अद्वैतस्वरूप, अपितु द्वैताद्वैत विलक्षण हैं जो सदानन्द स्वरूप है, अतः उन्हें सगुण निर्गुण भेदों से परे अनिर्वचनीय ही माना गया है। नाथ पद के लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली योगविद्या ही इस मुण्डक में निरूपणीया है।

***ऊँ तथा अवधूत पद का योगविद्या में स्थान–***

टीका के विश्लेषण से पता चलता है कि कुछ मुण्डकोपनिषद की मूल पुस्तकों में मन्त्रारम्भ से पूर्व ओं पद का उल्लेख नहीं है। अतः यह उन संस्करणों की न्यूनता ही मानी जायेगी। क्योंकि योगियों के सिद्धान्त में वेदों का आविर्भाव दो प्रकार से हुआ है– १. सूक्ष्मवेद अर्थात् तत्त्ववेद, तथा २. स्थूलवेद अर्थात् ग्रन्थवेद।

इनमें से सूक्ष्मवेदों का आविर्भाव ओंकार के रूप में ही हुआ जिसका साक्षात्कार मात्र अवधूत को ही हुआ था, उसी की सत्ता थी। ग्रन्थवेद 'स्थूलवेद' के आविर्भाव काल में तो अन्य जनों की भी सत्ता थी, फलस्वरूप स्थूलवेद तो सर्वजनसंवेद्य भी हो सकते हैं। अतः 'स मुनिर्नेत रो जनः, स मुनिर्नेत रोजनः' इस माण्डूक्य श्रुति में मुनि शब्द अवधूत का ही वाचक है। 'ओमित्येतदक्षरं सर्वम्' इत्यादि श्रुति के अनुसार भी सूक्ष्मवेद के साथ ओम् शब्द का तादात्म्य होने के कारण मनत्रपाठ के आदि में ओं शब्द का प्रयोग आवश्यक है।[८] यह विश्लेषण अन्य टीकाओं में उपलब्ध नहीं है।

टीकाकार ने प्रतिपादित किया है कि यह योगविद्या मात्र शास्त्रालोकण स्वरूप स्वकीय प्रयत्न से अधिगत नहीं हो सकी है इसके लिए तो सच्चे गुरु की ही तलाश करना आवश्यक है और वह गुरु अवधूत ही हो सकता है। जिसके प्रत्येक वाक्य में वेदार्थज्ञान भरा है, पदे पदे तीर्थों का पुण्य संचित है, दृष्टि मात्र में कैवल्य विराजमान है, एक तरफ भोग तथा दूसरी तरफ योग का एक साथ अस्तित्व होने पर भी जो सर्वथा निर्लिप्त है वही सद्गुरु अवधूत पद वाच्य है। टीकाकार ने श्रीनाथोक्त सद्गुरु का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है--

करुणाखड्गपातेन छित्त्वा पाशाष्टकं शिशोः।

सम्यगानन्दजनकः सद्गुरु सोऽभिधीयते।।[९]

टीकाकार ने मिथ्या गुरूत्व का दम्भ भरने वाले से बचने का ही संकेत किया है--

ज्ञानहीनों गुरुस्त्वाज्यो मिथ्यावादी विडम्बकः।

स्वविश्रान्तिं न जानाति परेषां स करोति किम्।[१०]

गुरु पद के प्रवृत्तिनिमित्त को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'गृणाति शमं सम्यक् चैतन्यविश्रान्तिमुपदिशति सः गुरुः अर्थात् सम्यग् रुप से जो चैतन्य विश्रान्ति हेतु मुहुर्मुहुः उपदेश देकर क्रियान्वित करने में समर्थ हो वही गुरु है।

१. सरह – शबरपा – लुईपा
{जालंधरपाद सरह की पांचवी पीढ़ी में}
२. जालंधरपाद – मत्स्येन्द्र, धर्मपाद, तंतिपा, कण्हपा
३. मत्स्येन्द्रपा – गोरक्षपा आदि
४. लुईपाद – दारिकपा, डेंगिपा, डोंबिपा आदि

इन सबके होते हुए भी तिब्बती सूची, जैसी राहुल जी ने उदृध् की है, निर्भ्रान्त नहीं कही जा सकती। वस्तुतः इसमें तिब्बती अनुश्रुतियों का योगदान अधिक है, जिसे राहुलजी ने प्रमाण मान लिया।

इसी से मिलता जुलता एक मत जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स का है जो गोरखनाथ और कानफटा योगियों के विषय पर पाश्चात्यों द्वारा प्रमाण पुरुष माने जाते हैं। वे यह मानते है कि नाथयोगियों द्वारा प्रयुक्त योगतंत्रसाधना बौद्ध और ब्राह्मण तत्वों का मिश्रण है तथा कानफटा योगियों का इतिहास बहुत से बौद्ध चिह्नों को प्रदर्शित करता है। बंगाल में मत्स्येन्द्र, गोरक्षनाथ, हाडी और अन्य बौद्ध सिद्ध के रूप में मान्य हैं। बंगीय परम्पराओं के अनुसार गोरखनाथ मूलतः बौद्ध वज्रयानी थे और उनका नाम रमणवज्र था। बाद में शैव धर्म में धर्मान्तरित किए गए और फिर गोरक्षनाथ नाम से प्रसिद्ध होकर कानफटा सम्प्रदाय के महान् अग्रणी नायक बने। फिर भी ब्रिग्स योगियों को तत्वतः शैव मानते हैं।[२] उपर्युक्त विचारों की प्रामाणिकता और असंगतियों को दार्शनिक, साधनात्मक और साहित्यिक कसौटी पर कसा जा सकता है।

बौद्ध सिद्धों ने शून्यता तत्व या प्रज्ञातत्व को शून्यवाद या माध्यमित मत से तथा चित्त तत्व या विज्ञान तत्व को विज्ञानवाद या योगाचार मत से ग्रहण किया। बौद्ध सिद्धों ने अपने तांत्रिक दर्शन के आधार के लिए प्रज्ञा तत्व को शक्ति के रूप में ग्रहण किया। सहजयानियों ने इसे अवधूती या नैरात्मायोगिनी या नैरामणि दारिका या आध्यात्मिक शक्ति {जिसे प्रकारान्तर से हम कुंडलिनी शक्ति कह सकते हैं। तांत्रिक मत अपने पिण्डब्रह्माण्डवाद के अनुसार ब्रह्माण्ड के सभी तत्वों, पदार्थो को पिंडस्थ मानता है जिनका दर्शन साधक स्वयम् अपने शरीर के भीतर कर सकता है। इस विचार से जीव की अपनी शक्ति की महत्ता बढ़ गयी।

विज्ञानवाद के तत्व को स्वीकार करने के कारण उन्हें यह भी स्वीकार करना पड़ा कि यह विश्व इस चित्त की सृष्टि है। चित्त ही मोक्ष और बंधन का कारण है। उसी मत के अनुसार उन लोगों ने यह माना कि संसार और निर्वाण में कुछ भेद नहीं है। दृष्टिभेद से ही इन दोनों में भेद दिखायी पड़ता है। योग में चित्त की महत्ता स्वतः सिद्ध है। उस पातंजल योग का प्रभाव बौद्ध योग के ऊपर पड़ा था जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोध को ही योग कहा गया है। तात्पर्य यह है कि दर्शन और साधना की दृष्टि से बौद्ध सिद्धों के मूलाधार भारतवर्ष की तांत्रिक धारा, शून्यवाद या माध्यमिक मत तथा विज्ञानवाद या योगाचार मत थे।[3]

इस दार्शनिक और साधनात्मक आधार को लेकर तांत्रिक बौद्धों का विकास हुआ। लेकिन हिन्दी के महापंडित राहुल सांकृत्यायन और आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने नाथों को बौद्ध सिद्धों की परम्परा में विकसित सिद्ध करने के लिए इन आधारों पर विचार नहीं किया। पं. रामचन्द्र शुक्ल ने 'बौद्ध गान ओ दोहा'' की रचनाओं तथा राहुल सांकृत्यायन के लेखों का अध्ययन कर उस नाथ सम्प्रदाय को वज्रयान की एक शाखा माना था जिसने कालक्रम में अपने को वज्रयानी साधना और सम्प्रदाय से पूर्णतया अलग कर लिया था। उन्होंने राहुल जी के आधार पर जालंधरपाद {नाथ} को आदिनाथ {शिव} माना और यह निश्चय किया कि जालंधर पहले बौद्ध थे, बाद में पश्चिमी प्रदेशों में आकर उन्होंने नाथ सम्प्रदाय का प्रचार किया।[4] शुक्लजी ने जालंधरपाद और आदिनाथ के अभिन्नत्व तथा नाथ सम्प्रदाय के बौद्धत्व के लिए न तो कोई ऐतिहासिक प्रमाण दिया और न बौद्ध मत और नाथ मत की दार्शनिक साधनात्मक समानताओं की ओर संकेत किया है। वज्रयानियों से विषमता की ओर उन्होंने कुछ संकेत अवश्य किये हैं।[5] शुक्लजी ने मत्स्येन्द्र और लुई के अभिन्नत्व पर विचार नहीं किया है। शुक्लजी के आधार वे ही हैं जो राहुलजी के हैं। राहुलजी की दृष्टि में 'रत्नाकर जोपम कथा' नामक वज्रयानी ग्रन्थ प्रामाणिक रचना है। इसमें लिखी बातें निराविल होंगी अथवा शुद्ध ऐतिहासिक प्रमाण दे सकेंगी, इसमें हमें संदेह है। यदि राहुल जी की दृष्टि में नाथपंथ बौद्ध उपयान है या वज्रयान का विकसित रूप है तो उसमें वज्रयान की कुछ विशेषताएँ भी होनी चाहिएं। राहुलजी ने

वज्रयान की चार चीजें मुख्य मानी हैं– मद्य, मंत्र, हठयोग और स्त्री; किन्तु उन्होंने इन तत्वों को नाथ पंथ में कहीं भी नहीं दिखलाया है।[६] उन्होंने यह भी नहीं लिखा कि नाथ मत ने कुछ अंशों में अपने को वज्रयान से अलग रखा। वे बौद्ध सिद्धों को निरीश्वरवादी तथा नाथपंथ को ईश्वरवादी मानते हैं।[७] नाथ पंथ की साधना पद्धति अथवा दर्शन में कौन–कौन से ऐसे तत्व हैं जो उसे बौद्ध स्रोत से निःसृत सिद्ध करते हैं, इसका कहीं भी संकेत नहीं मिलता। नाथ पंथियों की साधना में मद्य और स्त्री निषिद्ध हैं, जैसा आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। हठयोग और मंत्र विचारणीय हैं। राहुलजी ने वज्रयान और सहजयान में भेद नहीं किया है। बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश की रचनाओं की साधनाप्रणाली और दर्शन में तथा कुछ बौद्ध सिद्धों की संस्कृत रचनाओं में वर्णित साधनापद्धति और दर्शन में पर्याप्त अंतर है। वज्रयानियों के संस्कृतग्रन्थ 'गुह्यसमाजतंत्र' में अवश्य हठयोग का विधान है किन्तु बौद्ध गान ओ दोहा की रचनाओं में हठयोग का विरोध मिलता है।[८] मंत्र तो तांत्रिक साधना का सामान्य तत्व है।

कृष्णपाद जालंधरपाद के शिष्य हैं। कृष्णपाद सहजिया सिद्ध हैं जिनकी रचनाओं में तंत्र, मंत्र, हठयोग, कृच्छ्राचार का विरोध है। अर्थात्, यदि राहुलजी की दृष्टि से जालंधरपाद से ही नाथ पंथ का उद्भव माना जाय, तब भी हठयोग उनकी साधना प्रणाली में स्वीकार्य नहीं था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बौद्ध सहजिया सिद्ध जालंधरपाद हठयोगी नहीं थे। कृच्छ्राचार और काया–कष्ट–साधना के वे विरोधी थे; किन्तु अब तो यह भली–भांति प्रमाणित हो चुका है कि गोरक्ष द्वारा प्रचारित नाथ मत में हठयोग की साधना का महत्वपूर्ण स्थान था यद्यपि उसका लक्ष्य राजयोग था। नाथों के साधन में मुद्रा शब्द बहुत प्रचलित है। तांत्रिकों में मुद्रा शब्द देवार्पण के लिए निर्मित पक्वान्न, अँगुलियों से बनाये गये विभिन्न प्रकार के आकार, शरीर के हाथ–पैर आदि की विभिन्न स्थितियों को, बंधों को, इनसे युक्त श्वासनियंत्रणादि क्रियाओं को मुद्रा कहा गया है।[९] राहुलजी के वज्रयान में इनमें से कौन–सा अर्थ गृहीत है? तांत्रिक बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन से 'अँगुलियों के आकार' तथा 'साधिका', 'शक्ति' या 'विद्या' का अर्थ, वज्रयानियों को ग्राह्य मालूम होता है। इन दोनों में कोई भी अर्थ नाथपंथियों

को ग्राह्य नहीं है। नाथपंथियों में मुद्रा शब्द कान में पहने जाने वाले एक कुंडल के अर्थ में भी व्यवहृत होता है। यह कुंडल दीक्षा देते समय प्रायः पहनाया जाता है। साधना में विभिन्न शारीरिक स्थितियों का अर्थ भी उन्हें ग्राह्य है। इससे स्पष्ट है कि साधना की दृष्टि से भी नाथ लोग बौद्ध नहीं थे। उनमें जो तत्व, दूसरे विद्वानों के अनुसार, पाये जाते हैं, उनकी ओर राहुलजी ने कोई संकेत नहीं किया।

डॉक्टर प्रबोधचन्द्र बागची ने बौद्ध वज्रयानी सहजयानी सिद्धों की रचनाओं में तथा कौलज्ञाननिर्णय की रचनाओं में विचार, सिद्धान्त और दर्शन के आधार पर कई समानतायें स्थिर की हैं और उनका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि इनसे मत्स्येन्द्र और लुईपाद के अभिन्न होने की पुष्टि होती है। उनकी दृष्टि में १. सहज पर जोर देना, २. बाह्याचार का विरोध, ३. कुलक्षेत्रों और पीठों की चर्चा, ४. वज्रीकरण का प्रयोग, ५. पंचपवित्र आदि बौद्ध शब्द सूचित करते हैं कि इस साधना का सम्बन्ध बौद्ध साधना से अवश्य था। किन्तु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन बातों पर सतर्क विचार कर यह स्थिर किया है कि मत्स्येन्द्र ने जिस प्राचीन कौलमार्ग की चर्चा की है, वह निश्चय ही शाक्त मत था, बौद्ध नहीं। उनके अनुसार अकुलवीरतंत्र तो बौद्धों को स्पष्ट रूप से मिथ्यावादी और मुक्ति का अपात्र मानता है।[१०]

डॉ. कल्याणी मल्लिक के अनुसार मत्स्येन्द्र द्वारा प्रचारित कौलमत का 'सहज' वास्तव में शिवशक्ति का सम्मिलन है जो बौद्ध सिद्धों के सहज से भिन्न है। इसी आधार पर हम नाथयोगियों को बौद्ध नहीं कह सकते। नाथपंथियों के अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें शिवशक्ति, सहस्रार, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, नाद, बिंदु, प्रभृति शब्दों का प्रभूत व्यवहार किया गया है। नाथ मत शिवशक्ति के सामरस्य के द्वारा तथा बौद्ध सहजिया मत में शून्यता–करुणा के मिलन द्वारा चित्त की समता की प्राप्ति को उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। मत्स्येन्द्र अपने को कौल कहते हैं। कौल लोग शिवोपासक होते हैं, बौद्ध नहीं। नाथ लोग अपने परमपद को द्वैताद्वैतव्यतीत कहते हैं, नाथ–गुरु को 'नादबिन्दुकलात्मक' कहते हैं, जबकि बौद्ध लोग

द्वैत से अद्वैतत्व की प्राप्ति की साधना करते हैं तथा सहजिया गुरु को 'युगनद रूप' कहते हैं। लुईपाद और मत्स्येन्द्र के धर्म मत में वास्तव में कोई सामंजस्य नहीं है। गोरक्षसंहिता के कठोर नियमों से लुईपाद के सहजिया बौद्ध धर्म का कोई मेल नहीं बैठता।[11]

इसी प्रकार डॉ. शशिभूषण दासगुप्त ने भी विस्तार से बौद्ध सहजिया सिद्धों और नाथ सिद्धों की समताओं और विषमताओं पर विचार किया है। उनके अनुसार इन दोनों को अभिन्न मानना एक भ्रम है। यदि हम तान्त्रिक मतों का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट होगा कि उनके निर्णायक तत्व दो हैं। प्रथम विविध तांत्रिक–क्रियाओं की सामग्री और विभिन्न प्रकार के मिश्रित प्रकृति के कर्मकाण्ड, जो न मूलतः बौद्ध हैं, न हिन्दू। द्वितीय, विभिन्न रूपों में योग ग्रहण। इनके आधार पर प्रायः लोग बौद्ध सिद्धों और नाथ सिद्धों को एक मान लेते हैं, जो भ्रम है। इनमें जो समानताएं मिलती हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं। शिव शक्ति सिद्धान्त बौद्धों में उपाय और प्रज्ञा रूप में मिलता है। हिन्दू धर्मयोगियों में जिस प्रकार शिव योग के आदि उपदेष्टा हैं, उसी तरह बौद्धों में भगवान् बुद्ध या वज्रसत्व {हेरुक या हेवज्र} योग के आदि उपदेष्टा हैं। नाथों की परम्परा में जैसे सबसे पहले आदिनाथ को स्थान दिया जाता है और उन्हीं से सभी योग रहस्यों का निस्सरण माना जाता है उसी प्रकार बौद्धों में वज्रसत्व के रूप में बुद्ध भी माने जाते हैं। बौद्धों में नाथों के आदिनाथ के समान ही हेरुक या हेवज्र को आदिनाथ और भूतनाथ कहा जाता है। देवता और देवी के संवाद की शैली बौद्धों के तंत्रग्रन्थों में मिलती है। बौद्धों का सूर्यचन्द्र सिद्धान्त भी नाथयोगियों के समान ही है। बौद्ध सहजिया की सहजावस्था या सहज समाधि या शून्य समाधि भी नाथों के साहित्य में मिलती है। अकुलवीरतंत्र सहजावस्था का वर्णन है। नाथों के भाषा साहित्य में विशेषकर गोरख के नाम से प्रचलित गोरखबोध' में भी सहजावस्था का वर्णन है। हटयोग प्रदीपिका में बौद्ध सहजिया लोगों के समान ही चार शून्यों की कल्पना है। नाथों के साहित्य में नास्तिकता की प्रवृत्ति तथा आलोचना की प्रवृत्ति बौद्ध सहजिया लोगों के समान ही मिलती है। पीठ उपपीठ की कल्पनाएं भी समान रूप से मिलती हैं। उनकी योग की शब्दावली का स्रोत भी प्रायः एक ही मालूम पड़ता है।[12] आध्यात्मिक जीवन की परमोच्च अवस्था प्राप्त

करने के लिए दोनों ने कायासाधन को आवश्यक ठहराया है।[13]

किन्तु नाथसिद्धों और बौद्ध सहजिया सिद्धों में भेद भी कम नहीं हैं। नाथों का चमत्कार, सिद्धि, गूढ़ता आदि पर विशेष आग्रह उन्हें अन्य सहजिया सम्प्रदायों से अलग कर देता है। ये सहजिया मत हैं– बौद्ध सहजिया, वैष्णव सहजिया, बाउल आदि। इन सहजिया सम्प्रदायों में गूढ़ क्रियाओं, जादूगरी, चमत्कार–प्रदर्शन, कठोर कष्ट साधन, बाह्य प्रदर्शन आदि के प्रति तीव्र विरोधभाव था। किन्तु नाथमत का यह वैशिष्ट्य केवल बाह्य है, आंतरिक नहीं।[14] यद्यपि बौद्ध सहजिया लोगों ने नाथ सिद्धों के समान ही काया साधन को स्वीकार किया था तथापि उनका लक्ष्य था आत्म अनात्म का महासुखात्मक पूर्णज्ञान। इससे भिन्न नाथ सिद्धों की साधना का लक्ष्य था अमरता प्राप्ति तथा उससे प्राप्त शिवत्व या महेश्वरत्व की प्राप्ति।[15] इस प्रकार नाथों का लक्ष्य अमरता तथा उससे प्राप्त शिवत्व है और बौद्ध सहजिया लोगों का लक्ष्य था महासुख। नाथ सिद्ध लोग जन्म और मृत्यु की सत्यता में विश्वास करते थे तथा परिवर्तनशील भौतिक शरीर को सूक्ष्म वायव्य शरीर में द्रव्यांतरित कर तथा उसे भी पुनः दिव्य देह में रूपान्तरित कर उस जन्ममृत्युचक्र का निवारण करते थे, किन्तु बौद्ध परम्परा के विचारवाद {या प्रत्ययवाद} के अनुसार वे जन्म मृत्युचक्र को आत्म अनात्म के शून्य ज्ञान से साक्षात्कार कर निवारित करना चाहते थे। इस आत्म अनात्म के शून्यज्ञान के साक्षात्कार को केवल महासुख से साध्य माना। नाथों में जरामृत्युशील इस भौतिक शरीर के द्रव्यान्तर की यौगिक प्रक्रिया का आग्रह विशेष है। किन्तु बौद्ध सहजिया लोगों में उस यौन यौगिक साधना का आग्रह विशेष है जिससे सामान्य यौनसुख उच्चतर और गम्भीरतर आनन्द में परिणत हो जाता है। निश्चय ही, नाथों का कायासाधन बौद्ध सहजिया लोगों में है तथा दोहों और पदों में अमृतक्षरण तथा उसके पान के सन्दर्भ मिलते हैं तथा इस पान से स्कंधों की दृढ़ता तथा अजरामरता की प्राप्ति भी स्वीकार की गयी है किन्तु उनके कायासाधन में भेद हैं।[16]

इस भेद के कारण ही नाथ सिद्धों ने किसी भी प्रकार, साधना में, नारी संयोग का विरोध किया है और उसे बाघिन इत्यादि शब्दों से सम्बोधित किया है। इसके विरुद्ध बौद्ध सहजिया लोगों ने स्पष्ट रूप से, सभी प्रकार से, नारी को प्रज्ञा या शून्यता

का अवतार घोषित कर साधना के क्षेत्र में उसे सर्वथा ग्राह्य माना और बिना उसके अपने प्राप्य महासुखात्मक शून्यदान को असंभव माना। बिना उसके आध्यात्मिक जीवन में सिद्धि असंभव है। निश्चय ही, यह ध्यान रखने योग्य है कि प्रज्ञा या योगिनी या मुद्रा बौद्ध सहजिया लोगों में सदैव भौतिक शरीर की नारी के अर्थ में गृहीत नहीं रही है। वह नैरात्मा शून्यता या सहजसुंदरी भी है।[१७] यह भी स्पष्ट है कि बौद्ध सहजयानियों का महासुख शुद्ध शारीरिक अनुभव नहीं है, उसमें एक मनोवैज्ञानिक तत्व भी संनिहित है। नाथसाधना में यह दृष्टिकोण {कामावेग और कामानन्द} अभाव के कारण पूर्णतया स्पष्ट है।[१८] ऐसी स्थिति में कुछ लोग वज्रौली, सहजौली, अमरौली आदि साधनाओं की ओर संकेत कर कहते हैं कि नाथ साधना में ये तत्व बौद्ध साधना के अवशिष्ट चिह्न हैं। इन साधनाओं में नारी संपर्क अनिवार्य है। किन्तु ये सब शुद्ध रूप से यौगिक क्रियाएं ही हैं। इनमें नारी को दार्शनिक अर्थ नहीं दिया गया है और न उसे विचारात्मक तत्व ही माना गया है।[१९] ये साधनाएँ यह सिद्ध करने के स्थान पर कि नाथ लोग पहले बौद्ध थे बाद में वे शैव हो गये, अपेक्षाकृत यह सरलता से संकेत करती हैं कि समकालीन साधना होने के कारण किसी प्रकार से ये साधनायें नाथसाधना में प्रवेश कर गयी हैं। इस प्रकार इन्हें प्रक्षिप्त भी कहा जा सकता है। यदि परमार्थिक अर्थ में लिया जाय तो कोई बाधा भी नहीं और न नाथमत की मूल प्रकृति के विपरीत ही प्रतीत होता है। सिद्धसिद्धान्तसंग्रह में कहा गया है कि वज्रौली के केवल ज्ञानमात्र से सिद्धमार्ग प्रकाशित होता है।[२०] अर्थात् यह साधना केवल पारमार्थिक रूप में ग्राह्य थी। स्त्री–निस्संगता को नाथसाधन का वौशिष्ट्य स्वीकार करते हुए भी यह अनुमान किया जा सकता है कि ये साधनाएँ यदि बाद में प्रक्षिप्त हुई तो भी ये केवल गृहस्थ नाथ–योगियों द्वारा साध्य रही होंगी। ऐसा स्वीकार कर लेने पर नाथ मत के साधन ग्रन्थों में उनकी उपस्थिति से विचिकित्सा करने की कोई आवश्यकता न होगी। इन सब विचारों के विवेचन से यही स्पष्ट होता है कि नाथ और बौद्ध दोनों साधनों में तांत्रिक तत्व मिलते हैं, फिर भी भेद यह है कि दोनों ने अपने मत की मूल प्रकृति के अनुसार ही उन तत्वों को ग्रहण किया है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण बौद्धों के त्रिकायवाद पर

आधारित उनकी चार चक्रों की योजना है जबकि नाथों ने षट्चक्रयोजना स्वीकार की है।

इस साधनात्मक भेद का मूल उनके मूलाधार दर्शनों में भी दिखायी पड़ता है। विद्वानों ने सांख्य मत की पुरुष प्रकृति की विचारधारा, बौद्धों की उपाय प्रज्ञा की विचारधारा तथा शैव शाक्तों की शिवशक्ति की विचारधारा में स्पष्ट अन्तर कर लिया है। शैवों ने, नाथयोगियों ने भी, सांख्य मत के ३६ तत्वों को तो स्वीकार कर लिया है किन्तु उनकी व्याख्या अपने ढंग से दी है। यह तत्व विज्ञान बौद्धों में इस रूप में नहीं मिलता। बौद्ध सहजिया लोगों की दार्शनिक परम्परा में ही प्रज्ञा, जो शून्यता, नारी, शक्ति, निष्क्रिय आदि विशेषणों से व्यक्त की गयी है, सर्वथा ग्राह्य है। उनके वहाँ नर तत्व उपाय सक्रिय है। दूसरे, प्रज्ञा निर्वाण तत्व और पारमार्थिक सत्य का प्रतिनिधित्व करती है। नाथों में शैव परम्परा के अनुकूल शिव निष्क्रियता, स्थिरता, अचलता, अमरता और परमार्थ के प्रतीक हैं तथा शक्ति सक्रियता, चंचलता, परिवर्तन, संसार आदि का प्रतीक है। ऐसी अवस्था में नाथयोगियों ने अपनी प्रकृति के अनुकूल अमरता, विराग आदि के प्रतीक को ग्रहण किया तथा शक्ति को बलात् आक्रांत कर अपनी साधना के अनुकूल नियंत्रित कर लिया है तथा उस पर विजय प्राप्त कर ली है। यह भेद नाथ सिद्धों और बौद्ध सिद्धों में महान् अंतर उपस्थित करता है।

कौलज्ञाननिर्णय आदि रचनाओं के आधार पर तो यह निष्कर्ष निकलता ही है कि मत्स्येंद्र बौद्ध नहीं थे और न उनका योगिनी कौलमत ही बौद्ध था, साथ ही साथ नाथ योगियों की यदि मत्स्येन्द्रेतर रचनाओं की मीमांसा कर उनकी साधना पद्धति और दर्शन को उपस्थित किया जाय तो यह सप्रमाण सिद्ध हो जायेगा कि नाथमत न तो बौद्ध सिद्ध प्रवर्तित है और न उसके मूल सिद्धान्त ही बौद्ध हैं। इस प्रकार नाथ सिद्ध और बौद्ध सिद्ध भिन्न भिन्न हैं तथा उनके द्वारा प्रवर्तित प्रचारित सम्प्रदाय और धर्ममत समकालीन भिन्न भिन्न धर्ममत हैं। जो समानताएं मिलती हैं वे भारतीय तांत्रिक धर्म की विशेषताएं हैं जो एक साथ ही जैनों, बौद्धों, शैवों, शाक्तों, वैष्णवों सब में समान रूप से मिलती हैं। मत्स्येन्द्र और गोरक्ष के प्रचारित मतों में जो अंतर है उसका भी यदि भली–भांति विचार

किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलता है कि गोरक्ष मत्स्येन्द्र की शुद्ध नाथयोगी साधना के शिष्य थे। मत्स्येन्द्र की योगिनी कौल साधना अधिकांशतः शाक्त तथा वीराचारी प्रतीत होती है तथा वह बाद में मत्स्येन्द्र द्वारा प्रचारित की गयी थी। शाक्तों और तांत्रिकों की वीराचार साधना से प्रभावित होने के कारण उसमें प्रायः वैसी कुछ विशेषताएं प्रकट हुई हैं जैसी बौद्ध सिद्धों की विभिन्न रचनाओं में मिलती हैं। इस साम्य के कारण ही बौद्धों में मत्स्येन्द्र का सम्मान उपयुक्त प्रतीत होता है।[२१] इस प्रकार बौद्ध सिद्धों, नाथ सिद्धों और संतो के मत को एक ही स्रोत का मान लेना अनुचित है। तांत्रिक साधना और दर्शन, किसी न किसी मात्रा और रूप में सभी में सामान्य हैं। इस स्थापना का और अधिक विस्तृत प्रतिपादन प्रो. रामनरेश वर्मा ने 'हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास' के तृतीय खण्ड में किया है। इनके पार्थक्य के लिए बंगला लिखित डॉ. कल्याणी मल्लिक के ग्रंथ को तथा डॉ. शशिभूषण दासगुप्त के ग्रंथों को देखा जा सकता है।

## संकेताक्षरों और संदर्भ ग्रथों का विवरण


| | |
|---|---|
| आ. रे. क. – | आन्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स –डॉ. शशिभूषण दासगुप्ता, १६४६ ई. |
| का. ज्ञा. नि. – | कालज्ञाननिर्णय, सं. डा. प्रबोधचन्द्र बागची, कलकत्ता, १६३४ ई. |
| | गंगा पुरातत्वांक, राहुल सांकृत्यायन, १६३२ ई. |
| | गोरखनाथ एंड कानफटा योगीज. जी. डब्लू. ब्रिग्स १६३८ ई. |
| तां.बौ.सा.सा. – | तांत्रिक बौद्वसाधना और साहित्य, डॉ नागेन्द्रनाथ उपाध्याय १६५८ ई. |
| ना.स.इ.द.सा.प्र– | नाथ संप्रदाय इतिहास दर्शन ओ साधना प्रणाली डा. कल्याणी मल्लिक १६५० ई. |
| | पुरातत्त्व निबंधावली, राहुल सांकृत्यायन १६३७ ई. |
| सिद्ध प.अ.ना.पो.– | सिद्ध सिद्धांत पद्धति एंड अदर वर्क्स आव नाथयोगीज सं. डा. कल्याणी मल्लिक १६५७ ई. |
| ह.यो.प्र.– | हठयोगप्रदीपिका, स्वात्मारण्य योगीन्द्र {क्षेमराज कृष्णदास द्वारा प्रकाशित} सं. २००६ |
| हिं.सा.इ. – | हिंदी साहित्य का इतिहास, प. रामचन्द्र शुल्क सं. २००३ |

१ पुरातत्व निबन्धावली, राहुल सांकृत्यायन, १९३७. यह सामग्री इसके पूर्व गंगा पुरातत्वांक में १९३२ ई. में राहुल जी ने प्रकाशित करा दी थी।

२ गोरखनाथ एण्ड कानफटा योगीज, जी. डब्लू. ब्रिग्स. १९३८ई., पृ. १५०–५१.

३ तां. बौ. सा. सा. –'महायान दर्शन' 'वज्रयान और सहजयान' तथा 'सहजयान और लोकभाषा की रचनाएं' शीर्षक परिच्छेद द्रष्टव्य. पृ. ६७–७०, ७८–८५, १६३–१७१, १७५, १८३, १९५–९७ आदि

४ हिं. सा.इ.–शुक्ल, पृ. १४

५ वही, पृ. १३

६ पुरातत्व निबंधावली, राहुल सांकृत्यायन, पृ. १४३

७ वही, पृ. १६१

८ तां. बौ. सा. सा. –पृ. ११७, १२७, १५३, १९४

९ ह.यो.प्र., तृतीयोपदेश

१० डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची की स्थापना के लिए द्रष्टव्य– कौ. ज्ञा. नि. इंट्रो. पृ.५५–५७. ५७–५८, ५८–५९, ७६–७७, ८०; कौलज्ञाननिर्णय {मूल} – पटल ८ श्लोक. २४ पृ. २५, ८.१० पृ. ५५; अकुलवीरतंत्र {ए} आरंभ श्लोक, बी–आरंभवाक्य, श्लो. १५, १४०, पृ.९३, ९४, १०६, ८४; वही {बी} १२८–१३२, पृ. १०५, श्लोक ७ पृ. ८४; कौल ज्ञा.नि., ८.२७, १५.१० पृ. २५, ५५, नाथ संप्रदाय–डॉ. द्विवेदी, पृ ६१।

११ सिद्ध प. अ. ना. यो. – मल्लिक, इंट्रो. पृ. २६; ना. सं. इति. द. सा. प्र.– डॉ. मल्लिक–परिचायिका, पृ. १७. १८. तथा मूल पृ. ६७

१२ आ.रे.क – डॉ. शशिभूषण दास गुप्ता, पृ. २२३–२२८

१३ वही, पृ. २५२.

१४ आ.रे.क.– वही पृ. २४८–२५१

१५ वही, पृ. २६२–२६३

१६ वही, पृ. २८४–२८५

१७ वही पृ. २८६

१८ वही, पृ. २८६–२८७

१९ वही

२० नाथ संप्रदाय, पृ. ७१–७२, १२५–१२६

२१ तां.बौ.सा.सा, पृ. २२७–२३१

## राजस्थान के नाथ आसन एवं पंथ

डॉ. सोहन कृष्ण पुरोहित

नाथ सम्प्रदाय मध्ययुगीन धर्म साधनाओं में एक ऐसे प्रज्ज्वलित दीपक के समान है जिसका प्रकाश चतुर्दिक् विकीर्ण होता है।[1] भारत में नाथ सम्प्रदाय का उत्थान किस शताब्दी में और कब हुआ यह एक विवाद का विषय है। सामान्यतः इस सम्प्रदाय का उत्कर्ष काल ८वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य माना जाता है।[2]

नाथ सम्प्रदाय के जन्म के समय भारत में वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध और तान्त्रिक परम्पराएं विद्यमान थीं।[3] परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, नाथों ने जिस योग का प्रचार किया उसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है और उनके योग परक चिन्तन के प्रमाण वेदों में उपलब्ध हो जाते हैं।[4] किन्तु कालान्तर में अनेक प्राचीन सम्प्रदाय एवं परम्पराएं नाथ सम्प्रदाय में समाहित हो गईं।[5]

'नाथ' शब्द नाथ सम्प्रदाय के शैव उद्गम की ओर संकेत करता है। इस सम्प्रदाय को सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमत, योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत मत और अवधूत मार्ग कह कर पुकारा जाता है।[6]

राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय अपने प्रारम्भिक काल से ही लोकप्रिय रहा। किन्तु इसे सर्वाधिक राजकीय प्रश्रय मारवाड़ के महाराजा मानसिंह ने प्रदान किया। उन्होंने २३ सितम्बर १८०५ ई. को आयस देवनाथ का शिष्यत्व स्वीकार कर उनके प्रति श्रद्धा

प्रकट की।[७] एवं अपने गुरु हेतु १८०४ ई. में महामन्दिर का निर्माण करवाया।[८] बाद में आयस परिवार के आपसी झगड़ों से तंग आकर महाराजा मानसिंह ने १८२१ में आयस भीमनाथ हेतु अलग से उदय मन्दिर बनवाया।[९]

महाराजा मानसिंह के राज्यकाल में नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ रचे गये। उन्होंने स्वयं भी कई ग्रन्थों की रचना की जो मेहरानगढ़ स्थित महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में संगृहीत है।[१०]

महाराजा मानसिंह {१८०३–१८४३} ने नाथ सम्प्रदाय के प्रति अपनी भक्ति का परिचय दिया। उन्होंने अपने समकालीन सम्पूर्ण भारत के नाथ आसनों, पन्थों एवं उनके पीरों {मठाधीशों} के सम्बन्ध में राजकीय स्तर पर जानकारी एकत्र की जो एक बही में महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में सुरक्षित है। यह ३१ पन्नों की हस्तलिखित बही राजस्थानी {मारवाड़ी} भाषा और देवनागरी लिपि में लिखी हुई है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य इस बही के आधार पर राजस्थान के नाथ आसनों एवं उनके पन्थों पर विचार करना है।

विवेच्य बही में जोधपुर के महामन्दिर के पीर का नाम लाडूनाथ दिया हुआ है जो पाव पन्थ से सम्बन्धित थे।[११]

हम जानते हैं कि आयस देवनाथ की हत्या १० अक्टूबर १८१५ को मेहरानगढ के ख्वाबगाह में हुई थी।[१२] उसके बाद आयस लाडूनाथ मुख्य महन्त बना। लेकिन उसके युवा होने तक महामन्दिर के धार्मिक कृत्यों की देखभाल आयस भीमनाथ करता रहा।[१३] १८१८ से लाडूनाथ स्वतन्त्रता पूर्वक महामन्दिर के प्रधान मठाधीश के रूप में कार्य करने लगा।[१४]

अतः कहना अनुचित नहीं होगा कि विवेच्य बही की सामग्री १८२० ई. के लगभग एकत्र की गई। इस प्रकार, यह बही १९ वीं शती ई. का महत्वपूर्ण धार्मिक दस्तावेज है।

इस बही में तत्कालीन भारत के नाथ आसनों एवं पन्थों की चर्चा की गई है किन्तु अधिकांश सामग्री राजस्थान से सम्बन्धित है। इसमें नाथ आसनों को प्रस्तुत करने का क्रम इस

प्रकार हैः– कच्छ रा मुलक में, गुजरात रा मुलक में, मारवाड़ रा मुलक में, जैसलमेर रा मुलक में, बीकानेर रा मुलक में, मुलक मेवाड़ में, आसण बदनोर, अजमेरा में, किसनगढ़ रा मुलक में, हड़ौती रा मुलक में, ढूंढ़ाड़ रा मुलक में, दीखण रा मुलक में, सिन्ध रा मुलक में, पंजाब रा मुलक में, ढाका बंगाला रै मुलक में, मगध देस में पूरब में, हरियाणा रा मुलक में, परबत में श्री केदारनाथ जी कानी और आसण उजींण मालवा में। बही में विवेच्य सभी नाथ आसनों के पन्थों {सम्प्रदाय} एवं उनके पीरों {मठाधीशों} के नाम भी दिए गये हैं। नाथों के सम्बन्ध में इतना सूक्ष्म एवं विस्तृत विवरण अभी तक ज्ञात उनके साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, परशुराम चतुर्वेदी और जॉर्ज वेस्टन ब्रिग्स आदि विद्वानों का नाथ आसनों एवं पन्थों का विवरण इस हस्तलिखित बही के सम्मुख फीका है।

अब हम बही की सामग्री पर विस्तार से विचार करते हैं। महाराजा मानसिंह के संरक्षण में तैयार की गई इस बही में भारत के ६८५ नाथ आसनों, उनके पन्थों एवं पीरों का विवेचन है। उनमें से दो आसनों की जानकारी अधूरी है। इसके संकलन काल में कच्छ में ५, गुजरात में ३, मारवाड़ में १२५, जैसलमेर में ३, बीकानेर में १६, मेवाड़ में १७६, बदनोर में ११, अजमेर में १६, किशनगढ़ में १०, हाड़ौती में ३६, ढूंढ़ाड़ में ६०, करौली में ५, दक्षिण {भारत} में ३६, सिन्ध में ३, पंजाब में २३, ढाका बंगला तथा मगध के पूर्व में ४८, हरियाणा में ६२, केदारनाथ पर्वतीय क्षेत्र में ३० और उज्जैन मालवा में १२ नाथ आसन विद्यमान थे। बही से संकेतित है कि प्राचीन लकुलीश सम्प्रदाय के केन्द्र मेवाड़ में नाथ सम्प्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय था।[15] नाथ पन्थों में बैराग पन्थ ने लोगों को सर्वाधिक प्रभावित किया। महाराजा मानसिंह द्वारा संरक्षित पाव पन्थ, जालौर और जोधपुर के अलावा अजमेर, हाड़ौती, ढूंढ़ाड़ एवं करौली क्षेत्र में अपना प्रभाव फैला रहा था। नाथों की विवेच्य बही के सांख्यिकीय विवेचन के अनुसार राजस्थान में नाथ पन्थ के आसनों की संख्या इस प्रकार थीः–

| पन्थ का नाम | आसनों की संख्या |
|---|---|
| १. आईपन्थ | १० |
| २. कपल का पन्थ | २६ |
| ३. गंगनाथी पन्थ | ६ |
| ४. दास पन्थ | ३ |
| ५. धज पन्थ | ३ |
| ६. नाटेसरी पन्थ | ४३ |
| ७. धर्मनाथ पन्थ | २५ |
| ८. पागल पन्थ | ४ |
| ६. बैराग पन्थ | १२४ |
| १० बन पन्थ | १० |
| ११. भडंग पन्थ | १२ |
| १२. मननाथी पन्थ | १० |
| १३. रामका पन्थ | ६१ |
| १४. रावल पन्थ | ७१ |
| १५. सतनाथ पन्थ | ३१ |
| १६. पाव पन्थ | १८ |
| कुल आसन | ४६० |

महाराजा मानसिंह कालीन बही से संकेतित है कि बैराग पन्थ भारत में तो सर्वाधिक लोकप्रिय था ही, राजस्थान में भी उसका प्रभाव कम नहीं था। बैराग पन्थ के पश्चात् राजस्थान में रावल पन्थ और फिर रामका पन्थ ने लोगों को प्रभावित किया।

जहाँ तक मारवाड़ का प्रश्न है, यहाँ सर्वाधिक लोकप्रिय बैराग पन्थ था। बाद में राम का और नाटेसरी पन्थ भी यहाँ

लोकप्रिय हुए। किन्तु पाव पन्थ सर्वाधिक चर्चित रहा। इस पन्थ के प्रसिद्ध आसन सिरे मन्दिर, जालौर एवं महामन्दिर, जोधपुर थे।[१६]

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने महाराजा मानसिंह {मारवाड़} को माननाथी पंथ का माना है।[१७] किन्तु स्वयं मानसिंह द्वारा लिपिबद्ध करवाई गई बही से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वे माननाथी नहीं, अपितु पावनाथी थे। क्योंकि बही में पीर लाडूनाथ को पाव पन्थ का कहा गया है।

पं. द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय के १२ पन्थों का उल्लेख किया है जिनसे अनेक उपपन्थ निकले।[१८] मानसिंह कालीन बही में कुल १६ पन्थों का उल्लेख मिलता है।[१६] जो परम्परागत पन्थों एवं उपपन्थों से सम्बद्ध थे, यद्यपि इन सम्प्रदायों के मूल स्थान, प्रतिष्ठापक गुरु आदि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।

नाथ सम्प्रदाय में शिव द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों में कंठरनाथ पन्थ, पागल पन्थ, रावल पन्थ, रामका पन्थ, तथा बनपन्थ उल्लेखनीय हैं। इसी शाखा में सतनाथ पन्थ एवं धर्मनाथ पन्थ पंख पन्थ की ही शाखा माने जाते हैं। आई पन्थ वाले विमला के भक्त हैं। चांदनाथ द्वारा प्रारम्भ परम्परा से कपिलानी, गंगनाथी, कायनानी आदि सम्प्रदायों का उद्‌भव हुआ। नाटेसरी पन्थ माई पन्थ में से निकला। पावनाथ से पाव पन्थ और धज नाथ से धज पन्थ का आरम्भ माना जाता है।[२०] सत्यनाथ, सत्यनाथी पन्थ के, धर्मराज युधिष्ठिर धर्मनाथ पन्थ के, रामचन्द्र {या रामनाथ} रामका पन्थ के, लक्ष्मण नाटेश्वरी पंथ के, गणेश कन्हड़ पन्थ के, कपिल मुनि कपिलनाथी या कपिलानी पंथ के, भर्तृहरि बैराग पन्थ के, गोपीचन्द माननाथी पंथ के, भगवती विमला आई पन्थ की, चौरंगीनाथ {पूरनभगत} पागल पन्थ के, हनुमान जी धजपंथके, और भीष्म पितामह गंगनाथी पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं।[२१]

मानसिंह कालीन जोधपुर बही से ढूंढाड़ क्षेत्र में खण्डरा पंथ का उल्लेख आया है इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में दास पन्थ तथा भडंग पन्थ का प्रचार होना संकेतित है। क्या ये तीनों पन्थ परम्परागत नाथ पन्थों के उपपन्थ हैं अथवा नहीं, यह कहना कठिन है। सम्भवतः भडंगपन्थ, पंरव सम्प्रदाय से सम्बद्ध हाडी भरंग से

अभिन्न रहा हो।[२२] ब्रिग्स, द्विवेदी और शर्मा आदि विद्वानों ने दास पन्थ एवं खण्डरा पन्थ का उल्लेख नहीं किया है।

नाथ सम्प्रदाय की जोधपुर बही में आई पन्थ के मठाधीशों के नाम के पीछे आई, रावल पीरों के नाम के साथ रावल, दास पन्थी पीर के नाम के पीछे दास, पाव पन्थी पीर के नाम के पीछे पाव और बन पन्थ के पीर के साथ बन शब्द का प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ–

गांव मातासर आसण पन्थ आई पन्थी पीर श्री सुरताई जी।
गांव लाम्बे आसण पन्थ रावल पीर श्री सिंभु रावल जी।
गांव कोपर खेड़ा रौ आसण पंथ बन पंथी श्री संजाबनजी।

गांव सोपुर आसण पंथ पाव पंथी पीर श्री रंमी पाव जी।
गांव भम्भोर आसण पंथ दास पंथी पीर श्री खेतादासजी।

विवेच्य बही में ईडवा आसण का पीर आयस कहा गया है जबकि यह आसन बैराग पन्थ का था।

महाराजा मानसिंह कालीन नाथ बही को देखने से कई बार यह भ्रम होने लगता है कि उसमें दी गई नाथ आसनोंकी सूची कहीं अतिरंजना की शिकार तो नही हो गई? किन्तु जिन नाथ मठों का उल्लेख इस बही में संकलित है उनमें से अधिकांश गांवों एवं आसनों की पहिचान आसानी से की जा सकती है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महाराजा मानसिंह के प्रयासों से तैयार की गई बही से भारत के नाथ आसनों, उनके पन्थों एवं पीरों के सम्बन्ध में ठोस एवं प्रामाणिक सामग्री प्राप्त होती है। इस में राजस्थान सम्बन्धी जानकारी की प्रचुरता है। इस बही से राजस्थान के गांवों का परिचय भी मिलता है। उनमें से कुछ का स्वरूप अब बदल गया है। इसलिये विवेच्य बही का धैर्यपूर्वक, सूक्ष्मता से विवेचन करने की आवश्यकता है। हम इस हस्तलिखित बही को नाथ साहित्य की दुर्लभ एवं अनमोल कृति कह सकते हैं।

# महाराजा मानसिंह (जोधपुर) का नाथ भक्ति साहित्य

डॉ. रामप्रसाद दाधीच

वर्तमान राजस्थान की अत्यन्त ऐतिहासिक व सांस्कृतिक गौरव से सम्बन्धित एक पूर्व रियासत मारवाड़ के सूर्यवंशी राठौड़ राजकुल में माघ शुक्ला ११ वि.सं. १८३६ (तदनुसार १३ फरवरी, ई.स० १७८३) को जन्मे महाराजा मानसिंह असाधारण काव्य क्षमता व प्रतिभा के राजपुरुष थे। इनके शासकीय, राजनैतिक व पारिवारिक जीवन की आमृत्यु संघर्ष गाथा का निर्वचन यहां अप्रासंगिक है। इतिहास के विद्वान् अध्येता इससे परिचित हैं। इस निबन्ध में मेरा अभिप्रेत उनकी अद्भुत रचना प्रतिभा, उनकी कवि–मनीषा, उनका कला प्रेम, उनके पाण्डित्य, उनके नाथ दर्शन और भक्ति के ग्रन्थों का परिचय देते हुए, नाथ भक्ति व दर्शन को उनके मूल्यवान् प्रदाय का आकलन करना है।

महाराजा मानसिंह में प्रतिभा अर्थात् रचनाशक्ति जन्मजात थी। उनके प्रचण्ड व लम्बे जीवन संघर्ष ने उसे और भी प्रखर और धारदार बना दिया। एक साहित्यकार की व्युत्पत्ति (निपुणता) शक्ति भी उनमें अद्भुत थी। विचार और भावना क्षेत्र का उनका व्यापकत्व इस शक्ति का प्रमाण है। कला, साहित्य, इतिहास, धर्म, भक्ति, दर्शन और लोक जीवन के असीम सीमान्तों को छूता

उनका ज्ञान अत्यन्त विशद था। उनके द्वारा विरचित कृतियों के विषय–वैविध्य, विधा–वैविध्य, शिल्प, भाषा और विचार दर्शन की निगूढता पर जब दृष्टिपात करते हैं तो चकित रह जाना पड़ता है। यह आश्चर्यभाव तब और बढ़ जाता है जब जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियों में उलझा हुआ निरन्तर टूटता हुआ यह सरस्वती पुत्र राजपुरुष सृजन धर्म से एक क्षण को भी विरत नहीं होता। साहित्य की विविध विधाओं में, विविध भाषाओं में, विविध विषयों पर लिखे साठ से भी अधिक छोटे–मोटे ग्रन्थ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

मानसिंह द्वारा रचित साहित्य विपुल है– यह मैं ऊपर कह आया हूं। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में भी विवाद है। साहित्य के प्रारंभिक इतिहास ग्रन्थों में मानसिंह की कुछ रचनाओं का उल्लेख मिलता है। किन्तु मानसिंह के साहित्य की अन्वेषणा करने वाले प्रारम्भिक विद्वान् मूल रूप से इतिहासकार थे। मुंशी देवीप्रसाद, पं. रामकरण आसोपा, पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ, कर्नल जेम्स टॉड प्रभृति इतिहासकारों ने मानसिंह को एक उच्च कोटि का साहित्यकार सिद्ध किया और उनकी कुछ रचनाओं का उल्लेख अपने इतिहास ग्रन्थों में किया है। मैने अपने शोधकार्य के क्रम में जहां यह स्थापित किया है कि अपनी समस्त कृतियों के लेखक स्वयं मानसिंह ही थे, वहां उनकी प्रामाणिकता को भी अधिक रूप से सिद्ध किया है।

इस छोटे से आलेख में मेरा अभिप्रेत मानसिंह के केवल नाथ भक्ति और दर्शन के ग्रन्थों का परिचय देना ही है। मैंने मानसिंह रचित नाथ–भक्ति और दर्शन के जिन ग्रन्थों को विविध संग्रहालयों में पाण्डुलिपि रूप में देखा और पढ़ा है वे संख्या में कुल ३१ हैं। वे इस प्रकार है–

१ श्री जालन्धरनाथ जी रो चरित, २ ग्रंथ जालन्धर चन्द्रोदय ३ नाथचरित्र, ४ नाथ वर्णन, ५ मान पंडित संवाद, ६ मानदशा कथन, ७ अनुभव मंजरी, ८ सिद्ध सम्प्रदाय ६ सिद्ध सम्प्रदाय ग्रन्थ, १० तेज मंजरी, ११ प्रश्नोत्तर ग्रन्थ, १२ पंचवटी, १३ दूहा परमारथ, १४ सिद्ध गंगा, १५ सरूपा रा दूहा, १६ कवित्त श्री सरूपां रा, १७ नाथ कीर्तन, १८ सेवासार, १६ नाथजी री आरतियां, २० नाथ

स्रोत्र, २१ नाथ जी रा दूहा, २२ जालंधर नाथ जी निसांणी, २३ जालन्द्रीपाव स्तोत्र, २४ नाथ स्तुति, २५ नाथ जी रा पद, २६ जालंधर नाथजी रो अष्टक, २७ पुष्पांजलि, २८ अपराध क्षमा स्तोत्र, २६ षट्चक्र, ३० श्री जालन्धर ज्ञान सागर, ३१ कवित्त परमारथ रा।

इनके अतिरिक्त मानसिंह द्वारा संस्कृत में रचित दो ग्रंथ मिलते हैं– नाथ चरित्र प्रबन्ध ग्रन्थ और नाथ चन्द्रोदय। किन्तु इन दोनों का मानसिंहकृत होना संदिग्ध है।

इन ग्रन्थों की एक से अधिक पाण्डुलिपियां मेहरानगढ़ के मानसिंह पुस्तक प्रकाश संग्रहालय में विद्यमान् हैं। राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी; राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में ही इनमें से कई ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां विद्यमान् हैं। इनमें कई ग्रन्थ तो बड़े हैं और कुछ तो केवल दो चार पृष्ठों में ही हैं। फिर भी युग परम्परा के अनुसार इन्हें ग्रन्थ कहा गया है। प्रबन्ध, मुक्तक, पद सभी काव्यरूप इन ग्रन्थों में हैं। इन ग्रन्थों के काव्य–सौष्ठव, भाषाशिल्प आदि का विवेचन यहां अभिप्रेत नहीं है। इनका प्रतिपाद्य क्या है? नाथ दर्शन, नाथधर्म, नाथभक्ति का निर्वहन इनमें कितना हुआ है, अपने प्रतिपाद्य की अर्थवत्ता और उत्कृष्टता से मानसिंह ने नाथ दर्शन और भक्ति को क्या कुछ नया दिया है अथवा यह सब साधारण और पारम्परिक है। इन बिन्दुओं का समाहार और विवेचन उपयुक्त है।

नाथ सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि को दृष्टि में रखकर इन बिन्दुओं पर विचार किया जाना चाहिये। कौल, कापालिक; शाक्त, त्रिपुर–सम्प्रदाय आदि की मान्यताओं, आचारों और दर्शन सिद्धान्तों को अपने उत्संग में समेटे हुए विक्रम की दशवीं शताब्दी के अत्यन्त महिमान्वित धर्मगुरु गोरखनाथ तक आकर इस धर्म पद्धति ने गोरखनाथी नाथ सम्प्रदाय का रूप ग्रहण किया। इससे पहले भी नाथ सम्प्रदाय था – पर विछिन्न रूप में। नाथ सम्प्रदाय का एक विशिष्ट दर्शन और धर्मपद्धति है। इसके अनुसार परमशिव ही इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा, संचालक और नियामक हैं। सृष्टिनिर्माण की इस इच्छा अवस्था में परमशिव के दो तत्व हो जाते हैं– शिव और शक्ति। यह शक्ति तत्व कुछ अवस्थाओं में से अग्रसर होता हुआ कुण्डलिनी

में प्रादुर्भूत होता है। यही कुण्डलिनी समस्त विश्व में व्याप्त शक्ति हैं। इस शक्ति की सहायता से ही शिव इस विश्व–प्रपंच को संभाले हुये हैं। वेदान्तिक इसी शक्ति को माया कहते हैं। नाथ सम्प्रदाय में यह शक्ति माया से अधिक बलवती और अनन्त शक्ति स्वरूप मानी गई है।

शिव इसी शक्ति की प्रेरणा से ही कुछ कर सकते हैं। पिण्ड का निर्माण इसी से होता है। इस प्रकार स्वयं शिव प्रत्येक पिण्ड में अन्तर्भूत होते हैं। गोरखपंथियों का यह विश्वास है कि जो कुछ पिण्ड में है, वह ब्रह्माण्ड में है। इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय अद्वैतवादी है किन्तु इसके आचार्य शंकर वेदान्त से अपना भेद बताते हुए अपने को द्वैताद्वैत विलक्षणवादी कहते हैं। अर्थात् नाथतत्व द्वैत–अद्वैत दोनों से परे कुछ अद्भुत है।

शिवतत्व, शक्तितत्व, कुण्डलिनी, योग, सहज समाधि मुद्राएं आदि नाथदर्शन के मुख्य तत्व हैं। वेदपाठ, तीर्थव्रत, दान–पुण्य, मदिरा–मांस का सेवन, पुस्तकीय ज्ञान आदि इस सम्प्रदाय में वर्जित रहे हैं। "अनुभव के द्वारा ही परमशिव की प्राप्ति हो सकती है– इसे इस सम्प्रदाय में प्रमुखतः स्वीकृति मिली है।"

इस दार्शनिक पृष्ठभूमि में मानसिंह की नाथ भक्ति और नाथ–दर्शन के ग्रंथों पर जब विचार करते हैं तो कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। उन्होंने नाथ–सम्प्रदाय के उपरोक्त सभी तत्वों को अपनी कृतियों में अभिव्यक्ति दी है। ब्रह्म, जीव, माया, जगत्, मोक्ष आदि का विवेचन इन ग्रंथों में नाथ–सम्प्रदाय के दर्शन के परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है। नाथ–सम्प्रदाय में सद्गुरु को महत्व मिला है। धर्म के बाह्याचारों व अवतारवाद का खण्डन हुआ है। मानसिंह की इन सभी कृतियों में यह प्रतिश्रुति मिलती है। किन्तु एक विशेषता इन ग्रंथों में जो दिखाई देती है– वह यह है कि दर्शन की नीरसता के साथ सरस भक्ति की प्रबल भावना। मानसिंह ने अपने इन ग्रंथों में प्रायः अपने आराध्य नाथ की भक्ति सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में की है। निर्गुण की अपेक्षा उनका भक्त हृदय सगुण भक्ति के निवेदन में अधिक रमा है। इस सगुण भक्ति में अपने आराध्य की महत्वानुभूति, अनन्यता, निष्कामता के साथ नाम महत्व का अनुकीर्तन हुआ है। इतना ही नहीं उन्होंने नाथ की जो आरतियां

और स्तुतियां लिखी हैं– वे सगुणभक्ति की प्रमाण हैं। कुछ भक्ति पदों में मधुराभक्ति के दर्शन भी होते हैं, प्रियतम आत्मा की मिलनोत्कण्ठा, विकलता, अहर्निश वेदना और रुदन नाथभक्ति के पदों में देखने को मिलते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानसिंह के नाथभक्ति साहित्य की कृतियों में जहां नाथ सम्प्रदाय के दर्शन का विवेचन हुआ है वहां निर्गुण, सगुण और मधुराभक्ति के विशद रूप भी मिलते हैं। धर्म, कर्मकाण्ड और बाह्याचार की विकृतियों को भी इनके इस साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है। काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से भले ही इस साहित्य को अत्यंत उत्कृष्ट न कहें किन्तु मानसिंह का नाथभक्त हृदय अपनी पूरी समर्पणशीलता के साथ इनमें प्रकट हुआ है। इस काल में रचे गये नाथ साहित्य के क्षेत्र में मानसिंह की ये कृतियां निश्चित रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनका यह कृतित्व एक कीर्तिमान है।

– ६३, नैवैद्य, नेहरू पार्क

जोधपुर

# सिद्धराजसतसईः एक अनुशीलन

डॉ. शक्तिदान कविया

जोधपुर के महाराजा मानसिंह कां राज्यकाल (सं. १८६०–१६०० वि.) अनेक दृष्टियों से विशेष उल्लेखनीय रहा है। उनके विद्यानुराग का परिचायक एक दोहा प्रचलित है–

जोध बसायौ जोधपुर, ब्रज कीनौ विजपाल।
लखनऊ कासी दिली, मान कियौ नेपाल।।

अर्थात् राव जोधाजी ने तो जोधपुर बसाया, महाराजा विजयसिंह सं. (१८०९-१८५० वि.) ने (वल्लभ संप्रदाय की भक्ति के कारण) इसे ब्रज प्रदेश बनाया किन्तु उनके पौत्र महाराजा मानसिंह ने तो उसे एक साथ लखनऊ, काशी, दिल्ली और नेपाल बना दिया अर्थात यहां अनेक कत्थक, पण्डित, संगीतज्ञ एवं नाथ एकत्र हो गये थे। महाराजा मानसिंह स्वयं उच्च कोटि के कवि, विद्वान् एवं गुणग्राहक थे। उन्होंने ६१ वर्ष की उम्र पाई और ६१ गाँव कवि–कोविदों को जागीर के रूप में प्रदान किये थे। कहा भी है– उनसठ सांसण आपिया, मांनै गुमनांणी'' वस्तुतः महाराजा मान कवि रूपी हंसों के लिए तो मानसरोवर ही थे। यथा–

मांन सरोवर मान, जाहर भरियौ भलम जळ।
सुकवी .हंस समांन, लहरां मोताहळ लहै।।

(कविराजा बांकीदास)

महाराजा मानसिंह के राज्याश्रय में विविध विषयक साहित्य का विपुल मात्रा में सृजन हुआ। वे नाथपंथ के परम उपासक थे। उनके गुरु आयस देवनाथ का प्रभाव, राजसी वैभव एवं काव्यानुराग तो इतिहास प्रसिद्ध है। यही कारण था कि यहां के कवियों ने महाराजा मानसिंह की नाथ भक्ति से प्रभावित होकर डिंगल एवं पिंगल में अनेक ग्रन्थ रचे, जिनमें जालंधरनाथ के स्तव काव्य के अतिरिक्त आयस देवनाथ और उसके पुत्र आयस लाडूनाथ की प्रशस्ति में प्रणीत ग्रंथ भी पर्याप्त हैं। इस विषय का अधिकांश साहित्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। आलोच्य ग्रन्थ 'सिधराज सतसई' भी उसी श्रेणी की एक महत्वपूर्ण रचना है, जो अद्यावधि अज्ञात रही है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी (जोधपुर) में (ग्रन्थांक सं. ४०) उपलब्ध है और उसी के आधार पर यहां संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

'सिधराज सतसई' महाराजा मानसिंह के गुरु आयस लाडूनाथ की प्रशस्ति में रचित डिंगल भाषा की एक उत्कृष्ट काव्य-कृति है, जिसमें कुल ७०१ सोरठे हैं। संभवतः यह राजस्थानी साहित्य की एक मात्र ऐसी सतसई है, जिसमें आद्योपान्त सोरठा छन्द का प्रयोग हुआ है। सोरठे की लोकप्रियता तो सुविदित है। यथा- सोरठियौ दूहौ भलौ, भल मरवण री वात।' इस ग्रन्थ के रचयिता शिवदान मेहडू है, जो ज़ोधपुर जिलान्तर्गत गाँव बोरून्दा के निवासी चारण कवि थे। इनकी रचनाओं में आयस देवनाथजी रो रूपक, सिधराज सतसई' और डिंगल गीतादि मिलते हैं। पहले इन्होंने महामन्दिर के संस्थापक आयस देवनाथ का प्रशस्ति काव्य रचा था। संवत १८७२ वि. में देवनाथ की मृत्यु के पश्चात् उनकी गद्दी पर बैठे उनके पुत्र आयस लाडूनाथ के साहित्यानुराग से प्रभावित होकर इस कवि ने उनका आश्रय ग्रहण किया। उसी काल में 'सिधराज सतसई' का निर्माण हुआ और कवि को ख्याति प्राप्त हुई।

'सिधराज सतसई' के ग्रंथ नायक लाडूनाथ महामन्दिर नाथपुर के स्वामी और महाराजा मानसिंह के श्रद्धेय गुरु आयस देवनाथ (सं. १८३०–१८७२ वि.) के इकलौते पुत्र थे। संवत १८६६ में लाडूनाथ का जन्म हुआ तो जन्मोत्सव की खुशी में जोधपुर के प्रत्येक घर में पक्का एक सेर गुड़ बांटा गया था। आठ पहरी नौबतें बजी थीं और राजकुमार की भांति उस बालक का लालन पालन होने लगा था। राजस्थानी में लाड का अर्थ होता है दुलार और लाडू का अर्थ होता है मोदक। लाडूनाथ में इन दोनों ही शब्दों का समन्वित अर्थ (प्रियता एवं मधुरता) सन्निहित है। केवल ६ वर्ष की आयु में ही लाडूनाथ के पिता गोलोकवासी हो गये। उस स्थिति में महाराजा मानसिंह ने अपने गुरु पुत्र की शिक्षा दीक्षा एवं अन्य सुख–सुविधाओं की विशेष आत्मीय भाव से व्यवस्था की थी। संवत् १८८० वि. वैशाख शुक्ला ८ गुरुवार के दिन लाडूनाथ ने नाथपंथ की विधिवत् दीक्षा लेकर कर्णछेदन करवाया था। अगले महिने ज्येष्ठ शुक्ला १३ के दिन सिद्धयोग में स्नान कर महामन्दिर स्थित जालन्धरनाथ के देवालय में कानों में कुण्डल धारण किये थे। उस समय लाडूनाथ १४ वर्ष के थे।

शास्त्रोक्त विधि से दीक्षित होने के बाद आयस लाडूनाथ महाराजा मानसिंह के उसी प्रकार पूज्य गुरु बन गये, जिस प्रकार उनके पिता आयस देवनाथ थे। पिता की काव्यप्रियता एवं वदान्यता लाडूनाथ में भी कूट कूट कर भरी हुई थी। वे उच्च कोटि के कवि भी थे। सिद्धान्त सतक एवं 'ग्यानोदीपन पचीसिका' लाडूनाथ कृत आध्यात्मिक विषय की श्रेष्ठ काव्य कृतियां हैं। संसार की नश्वरता एवं कीर्ति की अमरता में उनका अटूट विश्वास था, ऐसा उनकी रचनाओं से लक्षित होता है।

आयस लाडूनाथ का विवाह नाथों की पालड़ी–निवासी किसनपुरी की कन्या लाछां के साथ बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। विवाह से पूर्व अन्य कई विशिष्ट व्यक्तियों की भांति महाराजा मानसिंह ने भी लाडूनाथ को बन्दोला देकर अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी। विवाह के पश्चात् राग–रंग, शास्त्र चर्चा एवं साहित्यिक संगोष्ठियों में ही वे मग्न रहते थे। कीर्ति अर्जित कर नाम अमर करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। यही कारण है कि उनकी

यशोगाथा दान की लहरों के साथ दिग्दिगन्त में व्याप्त हो चुकी थीं। उनके जीवन काल में यह सोरठा सर्वसाधारण की जिह्वा पर भी रमण करता था–

कागां धौळा केस, हथणी जाया हळ वहै।
जस थारौ जोगेस, लाखां (इ) कोसां लाडला।।

संवत १८८४ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन पच्चीस कवियों को लाडूनाथ ने एक ही दिन में २५ हाथी एवं रुपयों की थैलियां भेंट कर सम्मानित किया था। 'बांकीदास री ख्यात' में इसका स्पष्ट उल्लेख है। समकालीन कवि गोपालजी दधवाड़िया कृत एक डिंगल गीत में इस ऐतिहासिक घटना का चित्रण किया गया है। यथा–

केही थाट अहेवाळा धिखे रीह में पैमाल कीधा पीधा गीतां
रूपगां जीह सुधा पांन।
लंक लागै भूरा आडी लीह में दातार लाडू,
दीधा हेक दीह में पचीस हाथीदांन।।

इस ऐतिहासिक महत्व की घटना के अगले ही वर्ष आयस लाडूनाथ गिरनार की यात्रा पर गये और वहाँ से वापस लौटते समय ज्वर एवं अतिसार से पीड़ित होकर गुजरात के बामणवाड़ा गांव में केवल १६.५ वर्ष की आयु में ही संसार से चल बसे। उनका स्वर्गवास सं. १८८५ पौष शुक्ला ३ गुरुवार के दिन हुआ और सातवें दिन यह दुःखद समाचार जोधपुर पहुंचा तो सारा शहर शोकमग्न हो गया था। उनकी पत्नी लाछा अपने डेढ़ वर्ष के एकमात्र पुत्र भैरवनाथ को पीछे छोड़कर भूसमाधि लेंकर संती हो गई। सं. १८८५ पौष सुदी १० के दिन सती लाछां के दाहिने हाथ का कुमकुमयुक्त निशान, शिलालेख सहित महामन्दिर हवेली के मुख्य द्वार पर आज भी विद्यमान् है। लाडूनाथ की मृत्यु के छह महीने पश्चात् उनका वह बालक पुत्र भी चल बसा। इस प्रकार आयस लाडूनाथ के साथ ही उनके वंश का दीपक बुझ गया और शेष रह गई कीर्ति–सुरभि एवं सरस स्मृतियां। लाडूनाथ को अल्पायु में ही अपनी मृत्यु का पूर्वाभास होने लग गया था, इसलिए तो उन्होंने आत्म सम्बोधनात्मक दोहों में परलोक साधन की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में–

लाडू तूं परलोक रौ, कर साधन ततकाळ।
हालतां नह लागही, ताळी जितरी ताळ।।

ऐसे मानवीय गुणों के समुच्चय एवं कवि कोविदों के संरक्षक आयस लाडूनाथ की यशोगाथा ही सिधराज सतसई का मुख्य वर्ण्य विषय है। नाथों के लिए प्रयुक्त होने वाले आदर सूचक शब्दों में सिधराज, जोगेसर, पीर, बाबा, आयस इत्यादि प्रमुख हैं। जोधपुर के नाथपंथी गुरुओं के लिए 'सिधराज' शब्द का सर्वाधिक प्रयोग डिंगलकाव्य में मिलता है। इसीलिए कवि शिवदान महडू ने इस ग्रंथ का नाम सिधराज सतसई रखा। ग्रंथ का प्रारंभिक अंश इस प्रकार है–

।।श्री जलंधरनाथाय नमः।। अथ सिधराज सतसही लिखते।।

सर्वप्रथम मंगलाचरण में नाथ पंथ के आदि उपास्य देव शंकर की वन्दना की गई है। इसके पश्चात् गणपति, सरस्वती एवं जालंधरनाथ का स्मरण किया गया है। जालौर एवं जोधपुर के नाथ सम्प्रदायों के आराध्य देव जालंधरनाथ ही है, अतः मारवाड़ में उनकी भक्ति एवं चमत्कार–शक्ति के प्रसंग में आयस लाडूनाथ की सिद्धि का संकेत किया है। आयस की महानता व अपनी अल्पज्ञता को स्वीकारते हुए कवि ने यह कह कर ग्रंथ का निर्माण का निश्चय किया कि गरुड़ की तीव्र गति को देखकर भी कोई अचल डूबता थोड़ा ही है– वह अपनी जगह खड़ा रहता है। कवि के मतानुसार यद्यपि ग्रंथ नायक के गुणों का वर्णन करना उतना ही कठिन है, जितना किसी मानव द्वारा भुजाओं के बल पर समुद्र पार करना, तथापि गुण पूजा कवि कुल का धर्म है, अतः वह ग्रंथ रचना प्रारम्भ करता है। इसी क्रम में कवि ने जालंधरनाथ द्वारा मारवाड़ के भक्त कवियों सबळा लाळस, भीमा आशिया, दला आशिया और काना मोतीसर को दर्शन देने की लोकप्रसिद्ध मान्यता का उल्लेख किया है। यथा–

सबळा भीम सनाथ, कांन दला सरखा किया।
नमो जळंधरनाथ, निज जग व्यापक अवयनित।।

इसके पश्चात् आयस लाडूनाथ के पूर्वजों की सात पीढ़ियों का कालक्रमानुसार नामोल्लेख एक ही सोरठे में किया है। जालौर

की नाथ गद्दी पर क्रमशः मेळनाथ, थाननाथ, गोयंदनाथ, नाढ़ानाथ, केसरनाथ, महेसनाथ और देवनाथ हुए। देवनाथ महाराजा मानसिंह के गुरु बनकर जोधपुर आये और यहां नाथपंथ की उप–पीठ स्थापित की। सिधराज सतसई में उन सातों पीढ़ियों का परिचायक एक सोरठा पठनीय है–

मेळा थांन मुद्राथ, गोयंद नाढ़ा सम गिणां।
केहर मेस कृपाळ, जिण घर देवा जेहड़ा।।

यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि 'सिधराज सतसई' में आद्योपान्त डिंगल के लोकप्रिय अलंकार 'वैणसगाई' का निर्वाह हुआ है औ साथ ही अधिकांश सोरठों में चौकड़िया अनुप्रास' और अन्य शब्दालंकारों की सुरम्य छटा दीपायमान हुई है। अर्थालंकार भी प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। वैणसगाई, चौकड़िया अनुप्रास, यमक और रुपक की तो एक प्रकार से झड़ी लगी हुई है। कई सोरठे ऐसी भी हैं जहां मध्य में और अन्त में दुहरे तुकान्त का नाद सौन्दर्य प्रकट हुआ है। आयस लाडूनाथ के पिता देवनाथ के वर्णन में कर्ण के समान उसकी दानवीरता का उल्लेख एक अलंकृत सोरठे में देखिए–

देवा धन देवाह, जस लेवा जग जाहरां।
आचां क्रन एवाह, जेवा प्रतपै जाहरां।।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि आयस देवनाथ ने महाराजा मानसिंह से यह वचन ले लिया था कि पांच वर्ष तक मारवाड़ की सारी राज्य व्यवस्था दीवान इन्द्रराज सिंधी के हाथ में रहेगी और कोई भी व्यक्ति महाराजा को सीधे उज्र या फरियाद नहीं कर सकेगा। शासन में सुधार लाने ले लिए दीवान सारा राज्य काज आयस देवनाथ की सलाह से करने लगा। इससे कई सरदार नाराज हो गये अतः उन्होंने इन्द्रराज सिंधी के विरोधी मुंहता अखैचन्द के साथ मिलकर पिंडारी अमीरखां को उकसाया कि वह सिंधी और आयस दोनों को मरवा डाले तो उसकी चढ़ी हुई सारी रकम का भुगतान तुरन्त ही करवा देंगे। अमीरखां ने वह सलाह मान ली और अपने विश्वस्त कुतुबुद्दीन के नेतृत्व में २७ सैनिकों को किले पर भेज कर सं. १८७२ आश्विन शुक्ला के दिन खाबका (ख्वाबगाह) के महलों में उन दोनों की हत्या करवा दी। आयस

देवनाथ को तो महाराजा ने किले के अन्दर ही समाधि दिलवाई और दीवान को किले के बाहर मुख्य मार्ग पर रासोलाई के निकट दाह संस्कार करवा कर स्मारक बनवाया गया। तत्कालीन प्रथा के अनुसार इन दोनों की अन्त्येष्टि क्रिया विशेष सम्मान के साथ सम्पन्न की गई थी। 'सिधराज सतसई' में आयस देवनाथ और सिंधी इन्द्रराज की इसी मित्रता और एक साथ स्वर्गारोहण के प्रसंग को रेखांकित किया गया है। यथा–

सिंघवी हूंत सकाज, देवै दीधौ वचन द्रढ़।
कीरत राखण काज, सुरपुर बस कीधौ सही।।

इसके पश्चात् कवि ने महाराजा मानसिंह की उनके गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा और गुरु लाडूनाथ की द्वादश नाथपंथों में श्रेष्ठता दर्शायी है। उदाहरणार्थ दो सोरठे प्रस्तुत है–

देवा धर दातार, सिध द्वादस पंथा सही।
वड चित आंकणवार, औ लाडू प्रतपै अखी।।
सुबध भूप समराथ, विमळ चीत तव हुकम वस।
नित प्रत लाडूनाथ, कृपासिंध चाहत कृपा।।

यहाँ पर यह उल्लेख करना उचित होगा कि महाराजा मानसिंह के गुरु आयस देवनाथ और लाडूनाथ के पूर्वज मूलतः भाटी राजपूत थे। जैसलमेर जिले के गांव जीझणियाळी का रावळोत भाटी जूंझा (जूंझारजी) जो अपने भाईयों के साथ विवाद हो जाने पर जालौर के रतनगिर पर्वत पर आकर रहने लगा और जालंधरनाथ की भक्ति के प्रभाव से वह नाथ पंथ में दीक्षित हो गया था। उसी की वंश परम्परा में आयस लाडूनाथ हुए इसलिए कवि ने उन्हें चन्द्रवंशी माड़ेचा अर्थात् माड़प्रदेश जैसलमेर का निवासी कह कर सम्बोधित किया। चन्द्रवंश (यदुवंश) में सूर्य की भांति देदीप्यमान यह नाथ वस्तुतः जालंधरनाथ का ही अंश है। सिद्धत्व के इसी आधार का संकेत सतसईकार के शब्दों में–

अधपत गुर अवतंस, माड़ेचा सस बंस मह।
हव तूं हिज कुळ हस, जग जाळंधर अंस जत।।

यहां जत शब्द यती के लिए प्रयुक्त हुवा है। कवि शिवदान महडू ने अन्य डिंगल कवियों की तरह नाथों के लिए आयस, जोगी, जती, पीर, बाबा, सिध, सिधराज, सिधपत, भूपगुरु, नृपगुरु, सिद्धांतिलक प्रभृति नामों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है।

'सिधराज सतसई' में ग्रन्थ नायक लाडूनाथ की विद्वत्ता वदान्यता, प्रज्ञा एवं प्रतिभा का सविस्तार वर्णन किया गया है। निस्संदेह आयस लाडूनाथ उच्चकोटि के कवि, शास्त्रज्ञ एवं बहुभाषाविद थे। उनकी उदारता एवं काव्यप्रियता तो सर्वविदित है। कवि ने उनकी विद्वत्ता एवं शास्त्रज्ञता की सराहना करते हुए बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएं दी हैं। आगम, निगम, पुराण, षट्भाषा, योग, साहित्य, अलंकार, कोश, छन्द, प्रबन्ध, आदि में निष्णात आयस लाडूनाथ विषयक कतिपय सोरठे उल्लेखनीय हैं—

समझ निगम तंत सार, आगम धार उदार उर।
आयस उगत आधार, समझण खट भाषा सुगम।।
पहगुर सख प्रमाण, तूं जांणै देवा तणा।
जोगिद्र साहित जांण, अलंकार कोसां उचित।।
अवरां ग्रन्थ अपार, जोगारंभ रा अति जुगत।
सिधपत छंदा सार, लाडू प्रबंधो लीध लख।।

कवि का कथन है कि आयस लाडूनाथ विविध ग्रंथों के ज्ञाता होने के साथ ही महान् दानदाता भी थे। जिन कवियों के भाग्य में भिक्षुक होना लिखा था, उन्हें कुबेर की भांति बनाकर आयस ने विधाता के लेख पर मेख मारी है। इन्द्र तो केवल चातुर्मास में ही वृष्टि करता है, किन्तु लाडूनाथ की दान दृष्टि तो बारहों मास अनवरत होती रहती है। यथा—

नरां विधाता नाथ, कीधा भीखग लेख कर।
आयस तैं ब्रव आथ, कीधा धनपत जिम कवी।।
मह बरसे चत्रमास, सुरपत जळ आछे समै।
आयस पूरण आस, बारा मांसा धन ब्रवै।।

इसी क्रम में आयसजी द्वारा अनेक कवियों को प्रदत्त ऊँट, घोड़े, हाथी, पालकी, स्वर्णाभूषण, लाख पसाव आदि का वर्णन

करते हुए कवि ने यहां के ऊँट, घोड़े एवं गजराजों की सुडौलता को भी रेखांकित किया है। तीनों वाहनों का एक एक सोरठा देखिए–

खड़वा काज खतंग, गाजै ऊभा गड़गड़ा।
आया जूंग उतंग, दिल माया जे दूथियां।।
सखरोड़ा धर साज, उग्र कंध चोड़ा उरां।
ऊचकतोड़ा आज, देवावत घोड़ा दियै।।
दीध हसत दराज, दोय दोय लाख पसाव दत।
सिध थारा सिरताज, हूं बळिहारी हत्थड़ा।।

लाडूनाथ द्वारा दो लाख पसाव दिये जाने की महत्वपूर्ण सूचना के अतिरिक्त कवि ने उस ऐतिहासिक घटना का भी संकेत किया है, जब एक ही दिन में आयस ने पच्चीस हाथी कविवरों को भेंट किये थे और उन्हें गजारूढ़ करने हेतु सामने में स्वयं आगे चले थे। यह विशाल एवं विशिष्ट रीझ उस समय हुई जब लाडूनाथ की तरुणावस्थ थी और दाढ़ी भी नहीं आयी थी। हाथियों की अम्बारी को जरी एवं मोतियों से सजाकर कवियों को भेंट किये जाने सम्बन्धी समारोह के सूचक ये सोरठे पठनीय है–

साज जरी सिरतान, सज हवदा मुकत सरी।
कर अभरी जस काज, कविदां थें दीधा करी।।
हित सूं आगळ हाल, सुकन चढ़ाया सिंधुरां।
उण दिन रौ अवदाल, देखण जेहौ देव उत।।
डाढ़ी नायां दीह, दूथी गज चाढ़ी दिया।
लाडू काढी लीह, जस री गाढी जगत सूं।।

उपर्युक्त प्रथम सोरठे में सुन्दर भाव के साथ बैणसगाई और मध्य एवं अन्त में दुहरे तुकान्त का प्रयोग कौशल का परिचायक है। तीसरा सोरठा भी चौकड़िया अनुप्रास की छटा से खिल उठा है। इस ग्रंथ में आयस लाडूनाथ के जीवन के अनेक महत्वपूर्ण प्रसंग उद्‌घाटित हुए हैं जो साहित्य एवं इतिहास दोनों दृष्टियों से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। एक ही दिन में हाथी, घोड़े और ऊँटों की विपुल रीझ करने की घटना कवि के शब्दों में द्रष्टव्य है–

वड तक वाला बाज, दंताका मदझर दुरत।
रीझां गध सिधराज, दिन हेकण अतरा दिया।।

इसके पश्चात् सतसईकार ने आयस लाडूनाथ की गुणग्राहकता एवं उदारता का विशद वर्णन करते हुए विविध अलंकारों के माध्यम से अपनी कारयित्री प्रतिभा को प्रमाणित किया है। कवि का कथन है कि देवराज इन्द्र अपनी सवारी का ऐरावत हाथी कभी दान में नहीं दे सकता, जब कि आयस लाडूनाथ प्रायः हाथी देते ही रहते हैं। आयस को उज्ज्वल रंग की वस्तुएं विशेषप्रिय हैं। इसलिए काले हाथी देकर उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करते हैं। साथ ही काले गजराजों की रीझ से. कृपणों के मुंह काले कर रहे हैं। यथा–

म्हां जांणी महाराज, रुच ऊजळ वसतां रही।
ऊजळ जस कज आज, काळा गज रीझां कियै।।
मह सिर मुंदराळाह, दत चाळा राखण दूनी।
कर दत गज काळाह, क्रपणां मुंह काळा किया।।

लाडूनाथ की तो स्पष्ट मान्यता थी कि जिन्होंने अपनी सम्पति का उपभोग एवं सदुपयोग नहीं किया, उन्होंने उसे व्यर्थ ही गंवा दिया है। यथा–

नर देवांणी नाथ, आखै मुख वांणी अमळ।
अहळ गमांणी आथ, जिकां न मांणी जगत में।।

आगे कवि कहता है कि कृपणजन तो कवि कोविदों को देखकर उसी प्रकार छिप जाते है, जैसे ग्रीष्मकाल में मेंढ़क कीचड़ में अथवा शीतकाल में सांप पाताल में जा छिपते हैं। अन्य व्यक्ति तो अपनी स्त्री और बच्चों का भरण पोषण करने में ही गर्व अनुभव करते हैं जबकि यह उदारमना सब का पालन करते हुए भी लेशमात्र अहंकार नहीं करता। आयस की अनुकृपा का अरुणोदय होते ही दरिद्र्य की तमिस्रा तत्काल ही विलुप्त हो जाती है। कृपणों का संचित स्वर्ण तो भूमि में गड़ा ही रह जायेगा जबकि लाडूनाथ की यशोगाथा स्वर्णाक्षरों में अंकित होगी। यहाँ सुवर्ण का यमक में प्रयोग देखिये–

कृपणां रा विण काज, धरिया रहसी सुव्रण धर।
आयस थारा आज, जस रा सुवरण सुद्रढ़ जग।।

संसार में कई अदानी व्यक्ति एकत्र धन की काली धारा में डूब गये इसीलिए आयस उसे निरन्तर बांटता हुआ गंगा की धारा सदृश उज्ज्वल कीर्ति को अर्जित कर रहा है। वामन की देह की भांति सहसा संवृद्ध हुई सुकीर्ति का सौरभ पवन के साथ चतुर्दिक् प्रसरित होकर पृथ्वी के नौ खण्डों में व्याप्त है। इस उदारमना का यश रुपी सूर्य उदित होते ही गुणीजन रूपी भ्रमर तो गुंजार करने लगे किन्तु कृपणजन तो कुमुदिनी पुंज की तरह संकुचित हो गये। प्रत्येक दिशा में दूरस्थ कवि–पादपों को द्रव्य जल से सिंचित कर सुदृढ़ बनाते हुए आयस ने यश रूपी उपवन का निर्माण किया। इसके दातृत्व की असि–धारा ने लोगों के दारिद्‌य्र एवं मद दोनों को समाप्त कर दिया। आयस के द्वार पर कवि रूपी हंस मुक्ता–कण चुगते हुए सुख से जीवन यापन कर रहे हैं। यदि यह आयस दान का महार्णव नहीं रचता तो कवि रूपी मत्स्य की भला क्या दशा होती? उसके दिल रूपी दरियाव में उठती हुई दान की उत्ताल ऊर्मियों के समक्ष अदानी व्यक्तियों के मन की नौकाएं डाँवाडोल होने लग गई। जैसे प्रलयकाल का पानी ध्रुव को स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार अनास्था और नास्तिकता का नीर आयस के प्रसाद को कभी छू नहीं सकता, क्योंकि इनके आवास में कीर्ति का अमिट निवास है। कवि के ये शब्द कितने प्राणवन्त हैं–

आयस तव अेवास, थिर जग राजसथान रा।
मंडियौ जस मेवास, आज भरतखंड ऊपरा।।
चख सत रौ हरचंद, जग जत रौ गोरख जहीं।।
निज मत रौ सिवनंद, अधपत रौ गुर सिध अखी।।
काळौ विषधर काळ, जावै सह खाधां जगत।
मह पर हिक मुदराळ, अथ ब्रव थूं रहसी अमर।।
ऊंड़ी नीमां आज, दत लाखां ब्रच तैं दई।
रहसी द्रढ़ सिधराज, भू मंडळ जस भीतड़ा।।

वस्तुतः जो व्यक्ति सत्य में हरिश्चन्द्र, यतीत्व में गोरख और मति में गणपति के समान श्रेष्ठ हो, वह नृपगुरु लाडूनाथ

अवश्य ही अक्षय कीर्ति का अधिकारी होगा। काल रुपी काला नाग संसार में सबको खाये जा रहा है, किन्तु दानी, परोपकारी एवं मुद्राधारी सिद्धराज तो निश्चय ही अमरत्व प्राप्त करेगा। लाखों की सम्पति प्रदान कर जिसने अपने कीर्ति–महल गहरी नीवों पर खड़े किये हैं, वे 'गीतड़ा के भीतड़ा' कहावत के अनुसार चिरकाल तक अक्षुण्ण रहेंगे। इसी के साथ ग्रंथ का वर्ण्य विषय समापन की ओर अग्रसर होने लगता है। 'सिधराज सतसई' के अन्त में ग्रन्थकर्ता ने दो स्थलों पर अपने नाम का उल्लेख किया है। प्रथम तो सोरठा सं. ६७५ में, जहाँ कवि ने आयस लाडूनाथ की सतत कृपा–दृष्टि की मनोकामना व्यक्त की है। दूसरी बार सतसई की पूर्णाहुति के सूचक सोरठा सं. ७०१ में कवि ने गोत्र सहित अपने पूरे नाम के साथ ही रचना–स्थल 'सिधपुर (महामन्दिर, जोधपुर) का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। यथा–

दाखै कवि रिवदांन, अरज यती आ आप सूं।
मो ऊपर गुर मांन, सुप्रसन थूं रहजे सदा।। (६७५)
साबत वणी सकाज, मत माफका सिधपुर मही।
सतसही आ सिधराज, कण महडू रिवदांन क्रत।। (७०१)
''इति श्री सिधराज सतसही संपूर्णम्।।''

समग्रतः यही उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि 'सिधराज सतसई' जोधपुर स्थित महामन्दिर नाथ उप–पीठ के संस्थापक आयस देवनाथ के उत्तराधिकारी आयस लाडूनाथ के व्यक्तित्व से सम्बन्धित एक सुरुचिपूर्ण कीर्ति–काव्य है। इसमें उदारता, काव्यप्रियता, यशस्विता, शास्त्रज्ञता एवं आध्यात्मिकता जैसे उदात मानवीय गुणों की महिमा व्यक्त की गई है। कहीं पर भी अश्लीलता, विलासिता अथवा स्त्रीरुप वर्णन जैसी रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृति दिखाई नहीं देती। इसमें सर्वत्र गंगा की तरह निर्मल भाव–धारा के दर्शन होते हैं। आयस लाडूनाथ जैसे अल्पजीवी किन्तु बहुआयामी व्यक्तित्व वाले प्रज्ञ पुरूष के जीवन और साहित्य पर अनुसंधान कार्य अपेक्षित है। इसके साथ ही, डिंगल के प्रसिद्ध कवि रिवदांन महडू कृत 'सिधराज सतसई' जैसे इतिहास और काव्य के मणिकांचन–योग से विभूषित एवं अद्यावधि अज्ञात रहे ग्रंथ के प्रकाशन की महती आवश्यकता है। निस्संदेह यह राजस्थानी सतसई–काव्य की शृंखला में एक नव्य और भव्य कड़ी के रूप में अपनी सार्थकता सिद्ध करेगी ऐसा विश्वास है।

## जालंधरगुणरूपक

विक्रम् सिंह राठौड़

पांच सौ बतीस छन्दों में आबद्ध 'जलंधर गुण रूपक'' दौलतराम सेवग की राजस्थानी भाषा में लिखी रचना है जिसमें जलंधरनाथ के गुण और यश का वर्णन किया गया है। अपनी कृति में दौलतराम सेवग ने पारम्परिक रचनाकारों की भांति प्रारम्भ में सरस्वती (विद्या की देवी) और विघ्नहरण गणेश का वंदन किया है–

सरसत गुणपत द्यो सुतम, उकत अनंत उयदेस।
पत जग जलंधर पाव रौ, दाखु जस दरा देस।। (१)

विद्या की दात्री सरस्वती और मगंलकरण गणेश से सुमति ग्रहण कर जलंधरनाथ की कीर्ति गाथा 'जलंधर गुण रूपक' में सृजित की है। नवनाथों के नाम वर्णन से कवि ने जलंधर गुण रूपक का प्रारंभ किया है–

ओऊंकार जद अपनौ, आदनाथ जगआद।
उदैनाथ उमी आगम, जिण पत प्रथी जुगा़र।।३।।

सत्यनाथ वृहमा सदा, सब विध नाथ संतोक।

विसन सरूपी जग विचा, लछ पूरण तिहुंलोक।।४।।

नवनाथों के नाम वर्णन के बाद इस कृति के रचयिता ने 'बारै पंथ रा नाम' शीर्षक के अन्तर्गत बारह पंथों का नामोल्लेख किया है। तत्पश्चात् कवि ने जलंधरनाथ और उनके पंथ को ज्योतिस्वरूप बतलाया है। साथ ही जलंधरनाथ के व्यक्तित्व, वेशभूषा तथा पंथी विस्तार का उल्लेख करते हुए सुन्दर कवित रचे हैं–

वस कीनी सच वाच, आद इंद्रियां पांचू इल।

तपस्या अप्रबल तेज, जोग पंथ आद जलाहल।

आद पुरस अवतार, पार सिध अवर नमावै।

विसन सहत फिर वृंम, ध्यांन सब सकती ध्यावै।

स्रग मृत लोक पाताल सब, वात जुगां लग विसतरी।

पूजीआं पाव हेक चित प्रसन, जठै तठै सिध जलंधरी।।१५।।

दौलतराम सेवग ने जलंधरनाथ को सुख सम्पति का प्रदाता और मनवांछित फल प्रदान करने वाला बताकर उसकी पूजा अर्चना करने की बात कही है उनकी कृपा प्राप्त करना अहोभाग्य है–

ज्यांसू प्रसन जलंधरी जिकां सुख संपत जांणा

ज्यांसु प्रसन जलंधरी वडी घर रिध वखांणां

ज्यांसु प्रसन जलंधरी करे नह कुमण काई

ज्या मिलिया जलंधरी प्रतक ज्यां सदगत पाई

ज्यां हुआ प्रसन जलंधरी ऊंआ दुख कदै न आवसी

ऐह लोक सै हत परलोक लग पैह मनवंचत पावसी।।१८।।

इसके पश्चात् कवि ने उन लोगों का वर्णन किया है जो लोग जलंधरनाथ की कृपा से लाभान्वित हुए तथॉं उनसे वरदान प्राप्त कर इस जगत् में प्रसिद्ध हुए उसका बखान करते हुए कवि कहता है–

धर पर पाव जलंधरी किता अमर नर कीध।

गोपीचंद नृप गढ़पती, बुळ सिर अग्यालीध।।२०।।

पाव जलंधर परसीया युं मन धरै उकत

सुधा कमल जोगेसरां, अमर कीया अधपत।।२१।।

जलंधरनाथ जिन लोगों पर तुष्टमान हुए उनमें राठौड़ सुजन विनोद, जालौर का संस्थापक जालप मेणा, मेणों को परास्त कर जालोर पर आधिपत्य स्थापित करने वाला कान्हड़देव, कान्हड़ देव का पुत्र वीरमदेव प्रमुख हैं। राठौड़ सुजन विनोद को वर प्रदान किया और युद्ध में जलंधरनाथ की कृपा से उसने विजय प्राप्त की उसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् राठौड़ जळ खेड़ीया नाम से पुकारे जाने लगे–

खळ जळ बळ भाजे खरा, जे प्रताप जलंध्रेस।

जण दिन सुं जळ खेड़ीया, कहाणा कमधेस।।५८।।

पंवारों के नवकोटों के बीच जलंधरनाथ ने जहां शहर न था और मेणे आये दिन लूट पाट करते थे उस क्षेत्र में कलसागिर पर अपना निवास स्थान बनाया तथा मेणा जालप को वरदान देकर जालौर नगर बसाया इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है–

कोट नवां विच कनक गिर, नरखे जलंधरनाथ।

प्रज सुभ काज पधारीया, ईल समपण बौह आथ।।६१।।

सैहर न थो तिण समै, नांम तण साम नरेस

मैणां करधाड़ा मुदै, देखै सूनो देस।।६२।।

कणीयगिर जौड़ेकळस, परतक विषम पहाड़

जोगेसर वासै जठै, जंगी अणथग झाड़।।६३।।

जळ इमृत धारा झिलै, इळ तर भार अढार

अमर जड़ी तिण ऊपरां, सब चांनी संसार।।६४।।

कथ श्री पाव ऐकण कोर, जालप वसाई जालोर

मैणा बांध थय मे वास, जलंधरनाथ हुकमी जास।।७४।।

मेणों के अत्याचार जब अत्यधिक बढ़ गये उस समय सोनगरा कान्हड़देव जलंधरनाथ के पास जाता है। जलंधरनाथ ने कान्हड़देव को वहां आने का कारण पूछा और कहा मांग, तो उसने जालौर का राज्य मांगा। जलंधर पाव की सहायता, आशीर्वाद और उनकी बतायी हुई योजना के अनुसार कान्हड़देव ने मेणों को परास्त कर जालोर पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

कान्हड़देव के पुत्र वीरमदेव सोनगरा का प्रसंग व वर्णन काफी विस्तृत है। वीरमदेव के यश पराक्रम की चर्चा से प्रभावित होकर दिल्ली के बादशाह द्वारा उसे आमंत्रित करने, दिल्ली दरबार में पंजुपायक को पछाड़ने, शहजादी द्वारा वीरमदेव से विवाह करने का हठ, वीरमदेव द्वारा इन्कार करने पर जालोर पर चढ़ाई, १२ वर्ष तक जालोर का घेरा देना और निराश होकर शाही सेना का लौटना, लौटती शाही सेना को दगाबाज दहियों द्वारा आमंत्रण व दुर्ग की अभेद्यता का भेद बताना, वीरमदेव का शाही सेना से युद्ध करते हुए समरांगण में वीरगति प्राप्त करना व उसके कटे सिर के साथ शहजादी का सती होना इत्यादि प्रसंग सम्मिलित हैं। इसका उदाहरण यहां द्रष्टव्य है–

वीरमदेव को दिल्ली के बादशह का आमंत्रण–

पतस. तेउ सुण परमांण निध बुध हेम दुरंगन रांण

असपत तणां कागद आय, बलवंत कंवर वेग बुलाय।।१०१

दल सझ चढ़े वीरमदेव, अगर चंदण धूपऊ खेव

पेहली पूजकर धृबपांण, कीनौ चड़ानौ कुल भांण।।१०२

वीरमदेव ने बादशाह की शहजादी से विवाह करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया परिणामस्वरूप जालोर पर बादशाह ने चढ़ाई की और घेरा डाल दिया। १२ वर्ष के लम्बे समय तक जालोर का घेरा रहा और जब विजय हाथ नहीं लगी तो घेरा उठा लिया गया। जालोर किले के भीतर सारी जानकारी रखने वाले दहिया

लोग वीरमदेव की व्यंग्य पूर्ण बात से नाराज हो गये और बारह कोस लौट गई बादशाह की सेना को रातोरात वहां पहुंच कर लौटा कर लाये और जालोर के गढ़ पर उनका आधिपत्य करवा लिया। इस युद्ध में वीरमदेव युद्ध करता हुआ मारा गया और उसके पीछे शहजादी सती हुई–

साकौ कर गढ़ सोनगिर वीर कंवर जुधवार।
तिकण न परणी तुरकणी विध विध रखियो वार।।१४२
दुनियां कहै ता देवड़ा साकौ कर बळ सार
सोनगिरा कहीया सबै, साकां मझ सिणगार।।१४३

इसके अतिरिक्त पुरोहित बाहड़ वीजल को वर देकर राव सलखा को दिल्ली से लाना, गोगादेव को वर देना, संज्यानाथ और मेलनाथ को वरदान देना, मेलनाथ का जलंधरनाथ की आज्ञा से विवाह कर घरबारी जोगी बनना, रतनसिंह महेशदासोत को वर देना, चारणों के वंश में आसीया चारण व लालस सबलेस (गूंगा) पर कृपा करना, महाराजा अजीतसिंह पर प्रसन्न होना, जालोर में मानसिंह पर प्रसन्न होना तथा महाराजा मानसिंह का जालोर से जोधपुर आगमन का विस्तृत वर्णन कवि ने किया है। इन वर्णनों व घटना प्रसंगों से जलंधरनाथ के यश वर्णन व कीर्तिगान के अतिरिक्त यहां का ऐतिहासिक पक्ष भी उजागर होता है।

उपर्युक्त विवरणों के अतिरिक्त दौलतराम सेवग ने गढ़ पर तथा कणियागिर पर्वत पर जालोर में सिरै मंदिर बनवाया उसका भी वर्णन किया है। जोधपुर में गुलाबसागर पर निज मन्दिर बनवाया, महामन्दिर का निर्माण करवाया और बालसमन्द पर जो मन्दिर बनवाया गया उसका उल्लेख भी कवि ने 'जलंधर गुण रूपक' में किया है। बालसमन्द के मन्दिर वर्णन के साथ साथ कवि ने वहां स्थित बाग का वर्णन भी सुन्दर शैली में किया है तथा अन्त में 'फूलां री राजस्थान वर्णन' में फूल के गुणों का बखान व विविध राज्याधिकारियों तथा राजपरिवार के सदस्यों की गुण साम्यता का वर्णन किया है जो रोचक है–

रैणा सुरीत राज री आखुं सुक्रीत आदरी।
गुलाब पातसा गुण, सुरीत कान जे सुण।।५०८
चंपक सायजादय, मही सदा मृजादयं
कहा हुरम केतकी, वधे सुवास वैत की।।५०६

कृति के अन्त में कलस में कवि ने जलंधरनाथ विषयक पूर्ण कथ्य जो पूर्व मे भी प्रचलित था उसको अपने ढंग से सुनाने का प्रयास किया, यह इंगित किया है–

सध कारज कर सांम, कांम अणडग नृप कीधौ।
कमधजा बंध कीध, दान लाखां धृव दीधौ।
सुरतनाथ उपदेस, नाथ देवेस नृभै नर।
गुणियण समये ग्यांन, वाधार घणै वर।
कव सुण अगली कथ, बडी विध ग्रंथ वणायौ।
रेणुं दौलतराम, सुगुण कर सकल सुणायौ।
मयनंक सिख संसार में धर ईवचल वातां धरी
कर जोड़ खलक सारा करै, जय जय नाथ जलंधरी।।५३२।।

जलंधरनाथ के कीर्तिगान के अतिरिक्त इस कृति से कवि की इतिहास विषयक जानकारी का भीं हमें पता चलता है–

अजन सुत न राजा अमौ, बल नरपत बखतेस
पुनवंत अवतारी पुरस, दलथंभ मुरधर देस।।२७४
बखत सुत न राजा विजौ, प्रथमी धणै प्रताप
प्रतपे बो दिन जोधपुर, अजन जीसौ नृप आप।।२७५
प्रगटै जिण घर पोतरा, भीम मान कुल भांण
सुत फतमाल गुमांन सुत प्रथमी पत वढ़ मांण।।२७६

इसके साथ ही इस कृति में विविध छंदों का प्रयोग (दुहा, कवित्त, छंद बेअखरी, छंद अर्द्धनाराच इत्यादि) वर्ण्य वैविध्य तथा कवि का शिल्प विधान काव्य को सरस बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। जोधपुर के मेहरानगढ़ दुर्ग में स्थित महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोधकेन्द्र में संगृहीत (काव्य गु. २५, पत्र ५४) है। कृति में इसका लिपिकाल संवत १८६२ तथा लिपिकर्ता का नाम सेवग चैनराम उल्लिखित है। १८८ वर्ष पूर्व के मारवाड़ में नाथों व नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव को समग्र रुप से समझने में 'जलंधरनाथ गुण रूपक' काफी सहायक है।

## जलंधर जस वर्णन

डॉ. भगवतीलाल व्यास

जलंधर जस वर्णन शिवनाथ कृत एक उच्च कोटि का काव्य ग्रंथ है। काव्य की दृष्टि से यह अनूठा और बेजोड़ है। यह अस्सी छंदों का मुक्त काव्य है जिसमें प्रत्येक छंद में कवि ने अपना नाम जोड़कर अपने कृतित्व की छाप अंकित की है। इस काव्य ग्रंथ में कवि ने नाथों के परम्पराराध्य इष्टदेव जलंधरनाथ की महिमा का वर्णन आलंकारिक शब्दों में किया है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह रचना इतनी सशक्त है कि उत्तर मध्यकालीन कविता से किसी प्रकार से कम नहीं है। इसमें कल्पना की उड़ान वैविध्य एवं लालित्यपूर्ण वर्णन अलंकारों की छटा और ब्रज भाषा की कोमल कान्त पदावली– कुल मिलाकर एक उत्कृष्ट काव्य सौंदर्य का बोध कराती है।

इस काव्य की ऐतिहासिकता तो निर्विवाद रूप से सत्य है। महाराजा मानसिंह और उनके गुरु देवनाथ का समकालीन कवि शिवनाला है। संपूर्ण काव्य में जलंधरनाथजी का अलौकिक देवोचित सौंदर्य और प्रताप, देवनाथजी का वर्चस्व और महाराजा मानसिंह

की भक्ति, गुणग्राहकता और दानशीलता भी सर्वत्र परिलक्षित होती है। इस काव्य को विषय की दृष्टि से तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहले ३५-४० छंदों में तो जलंधरनाथ की स्तुति की गई है। भक्ति की दृष्टि से इसे भक्ति काव्य या स्तोत्र साहित्य के अन्तर्गत रक्खा जा सकजा है। कवि ने अपनी और महाराजा मानसिंह की भक्ति का मूर्तिमान् स्वरूप खड़ा किया है—

हमै जा दिन तै पद पंकज मिलै
जुग आनंद पुंज जगे सु जगै
सुख्र सज्जन आपु ही आये सबै
दुःख दुज्जन दूरि भगे सु भगे
नृप मान कहै मन ध्यान यहै
तन प्रेम के नेम पगे सु पगे
कोऊ साथ के संग रंगो न रगौ
हम नाथ के रंग रंगे सु रंगे।।

इस प्रेमाभक्ति में महाराजा मानसिंह का सर्वस्व समर्पित दर्शाया है। संपूर्ण राज्य और वैभव की प्राप्ति श्री नाथजी का प्रसाद ही है। महाराजा मानसिंह जलंधरनाथ की अनन्य भक्ति से ओत-प्रोत एवं गद्‌गद हैं। जलंधर नाथ के चरणारविंद के अतिरिक्त उनके जीवन में कुछ नहीं। वे उनके लिए सर्वस्व हैं और सच्चिदानन्द स्वरूप है—

ज्ञान क गहीर महाधीर ध्यानवंतन कौ
आनंद अनंत मय मोहन रतिय कौं
मलयज मालती क गर बगरन कर
कंज दुति दरन हरन अघरिय कों
कहै शिवनाथ रहै रिधि निधि नीति भरे
जीतन प्रकाश पुंज रजनी अधिप कों
नाथ श्री जालंधर के जुगल चरन गौर
मुनि चितचोर सिरमौर मान नृप कों

जलंधर जसवर्णन भक्ति की दृष्टि से तो अद्वितीय काव्य है ही। अध्यात्म की दृष्टि से भी अनुपम है। दार्शनिक तत्वों का भी सूक्ष्म विवेचन हुआ है और कवि की दार्शनिक पृष्ठभूमि भी

सशक्त हैं। शैव दर्शन की आधारशिला पर ही उन्होंने एकमात्र तत्व जलंधर को ही माना है, वही परमपद हैं। इह लोक और परलोक के सभी धर्म अर्थकाम और मोक्ष–पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन श्री जलंधरनाथ को ही बताया है।

एक आदिधाम की अनूप छवि देखियतु
दोउ मत पेखियतु बात कहत न है
तीन लोक सकल सुफल विचार और
पदारथ चार परमारथ जतन है
कहै सिवनाथ पांचो जग्य के परमपुन्य
षट् गुन क्षेम सुख के विसे खतन है
नाथ श्री जलंधर के चरनन हम देखे
जामै सातों सुख नोंह निधि तेरो ही रतन है।।

इसके अतिरिक्त नाथों की योग साधना और योगाभ्यास की ओर भी स्पष्ट संकेत मिलता है। जलंधरनाथ की ध्यानावस्थित योगमुद्रा का चित्रण भी कवि का स्तुत्य प्रयास रहा हैं। जहाँ नाथजी की कृपा भौतिक सुखों की प्राप्ति का साधन है वहीं पर भोगों से विरति और वैराग्य भावना का भी प्राबल्य है। उन्होंने चित्त की वृतियों का निरास भी योग अर्थात् जलंधरनाथ के साथ योग अर्थात् जुड़ने से बताया है–

संपती साज भये भय राज को
राज भये भय रीति बिना ही
भूखे रहै भय धीरज जाय
अजीरन को भय भोजन मांही
भोग में रोग लगैं सिवनाथ
वियोग में छीजति देह वृथा ही
रे चित्त चंचळ क्यों न रहैं
जो एकऊँ नाथ बिना सुख नाही

काव्य में जळंधरनाथजी का रूप सौंदर्य, चौकी का वर्णन उनके देवोचित सौंदर्य और उसकी भव्यता, प्राकृतिक सौन्दर्य, षट् ऋतु वर्णन काव्य की दृष्टि से अत्युत्तम हैं। शरद् ऋतु का वर्णन द्रष्टव्य है। शरद् पूर्णिमा में जलंधरनाथ की छवि श्वेतमय है–

उज्जल अखंड चारों खंभ अटा आंगतनु
विसद पटान छवि अमित सुखद की
रजत सिंघासन पै राजै नाथ जलंधर
मालती के हार हीर भूषनता हद ही
भरि गज मोतिन के थार औ कपूर चार
आरती करत नृप मान सुख सद की
सकृत अभिलाषै शिव नाथ हे रि भाखै हिय
दरद न राखै यह पूनम सरद की।।

जलंधरनाथ के स्तुति वर्णन के पश्चात् कवि ने महाराजा मानसिंह के गुरु देवनाथ के वैभव और वर्चस्व का वर्णन किया है। उनके भव्य भवनों, उद्यानों और जलाशयों का सजीव वर्णन किया है। नाथजी महाराज के राजसी ठाट बाट और वैभव के वर्णन इतने सजीव हैं कि उन्हें पढ़कर विश्वास नहीं होता। अंतिम पदों में कवि ने आश्रयदाता की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है। वह जलंधरनाथ में साक्षात् देवनाथ में दर्शन करता है। महाराजा की दानशीलता का वर्णन तो जबरदस्त ही है। कवि को सिरोपाव, हाथी, गांव, जागीरें भी समय--समय पर दी गई थीं उसका भी उल्लेख हुआ है। उन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि शायद अतिरंजित एवं अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है परन्तु ऐसी बात नही है, वह यथार्थ चित्रण ही पस्तुत हुआ है जैसा कि—

फिरि आये जोधपुर श्री जलंध्रनाथ क्रि
आये गिरिकंचरन पै कंचन की वरषा।

अंततोगत्वा यह कहना निर्विवाद है कि जलंधर जस भूषण एक उच्च कोटि का काव्य है और अंत में कवि की भक्ति भावना के इस पद को प्रस्तुत करना भी आवश्यक मानता हूँ—

जन धरत है जे ध्यान तिनकौ तुरत सब सुख साज ही
सुभ चरण परसत पुन्य सरसत पाप डरपत भज ही।
कंदर्प वृन्द समान जिन तन दुपति निदान उदकरंग
सुभ सिद्धिदायक जन सहायक जयति नाथ जलंधरम्।

व्याख्याता, हिन्दी विभाग,
ज. ना. व्या. वि. वि. जोधपुर

# जलंधरनाथ रूपग : एक अनुशीलन

डॉ. मनमोहन स्वरूप माथुर

राजस्थान में रचित नाथ साहित्य से सम्बन्धित रचनाओं में से एक महत्वपूर्ण रचना सेवग दौलत राम के सुपुत्र सेवग संतोकी राम द्वारा रचित 'जलंधर नाथ रूपग (क) हैं।[1] यहां कवि ने स्वयं को अपने पिता से भी सवाया मानते हुए इस कृति की रचना करने की बात कही है–

सिध कारज कर सांम काम अणडग नृप. कीधौ
कमध धजा बंध कीध दांन लाधां ध्रव दीधौ
कव सुण प्रयथगी क५ बड़ी वीध ग्रंथ बणायौ
रैण दौलतराम सुकव संतोक सवायौ
गयनक सीष संसार में घर अवचल वातां घरी
कर जोड़ खलक सारा करै जय जय पाव जलंधरी।।५४५।।

महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश जोधपुर के गुटका संख्या ११ की क्रम संख्या २०/२१ पर यह रचना संगृहीत है। सम्पूर्ण रचना ५४५ छंदों और ३७ पत्रों में लिपिबद्ध है। रचना का आकार 6 x 9½ है। प्रत्येक पृष्ठ में २२–२३ पंक्तियां हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में ६–७ अक्षर लिखे हुए हैं। कुछ पृष्ठों पर कुछ पंक्तियों को

मिटाया गया हैं। जिससे कथाक्रम को हानि पहुंची है। यह भी संभव है कि लिपिकर्ता ने उन पंक्तियों को प्रभावी बनाने के लिये उन पर स्याही का आलेप किया हों (वैसे यहां लिपिकर्ता का नाम वर्णित नहीं है) 'कलस' छंद में कवि (काव्य रचयिता) का ही नाम लिखित है लिपि पूर्णतः स्पष्ट एवं सुवाच्य है।

इस रचना की विषय वस्तु नाथ पन्थ के चौथे और महत्वपूर्ण नाथ (पाव) जलंधरनाथ के यशस्वी चरित्र से संबन्धित है। कृति के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कवि ने जलंधरनाथ का यशोगान मुख्यतः दो रूपों में प्रस्तुत किया है– १. जालोर के अधिपति कान्हड़देव को वीरमदेव जैसे वीर पुत्र को प्रदान कर युद्ध में जलंधरनाथ के प्रताप से जालोर दुर्ग की रक्षा करवाना तथा २. महाराजा मानसिंह को युद्ध में जलंधरनाथ के आशीर्वचन द्वारा जोधपुर का राज्य दिलवाना। ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों ही घटनाओं में दीर्घकालीन अन्तराल है। इसलिये ग्रंथ की कथा कहीं कहीं उलझी हुई प्रतीत होने लगती है। वस्तुतः कवि का मूल उद्देश्य कथा संयोजन की अपेक्षा नाथ गुरु जलंधरनाथ पाव के प्रताप को अपनी श्रद्धानुकूल नाथ भक्तों के समक्ष प्रस्तुत करना ही अभीष्ट था।

रचना के आरंभ में कवि सेवग संतोकीराम ने सरस्वती की वंदना करते हुए जलंधर पाव के यशगान की बात कही है। जलंधरनाथ की स्तुति से पूर्व नवनाथ की परम्परा का परिचय देते हुए नाथ पंथ के बारह पन्थों का उल्लेख किया है। साथ ही कंथड़नाथ, पागलनाथ, चौरंगीनाथ के सुकृत्यों का वंदन किया है (छंद १–१२)। इस भूमिका के उपरान्त सेवग संतोकीराम ने जलंधरनाथ के स्वरूप का भक्तिमय वर्णन इस प्रकार निरूपित किया है–

जलंधरनाथ जोत सरूप अधभूत विराजै
सेली जटा सचुप चूप सुर सींगी चाजै
कनक मुद्रा कसमीर मेखला भगवी मो है
केसर षोल कहेस साच बाघंबर सौहै
खडाड़ पाव कर पावड़ी घनौ रूप अण विध धरी
अह नाथ नवां द्वादस पंथा जोत सरूपी जलंधरी।।१७।।

इसके पश्चात् २२वें छप्पय तक कवि ने जलंधरनाथ के प्रताप का वर्णन किया है। यहां उसने यह भी स्पष्ट किया है कि गिरनार और आबू पर्वत में रहकर जलंधरपाव ने तपस्या की तथा उन्हीं के प्रताप से सागर, पवन आदि का संचालन संभव है। जिस पर वे प्रसन्न हो जाते हैं वह सुख–समृद्धि से सम्पन्न हो जाता है। राठौड़ों पर जलंधरपाव की कृपा हुई, उसी के परिणाम स्वरूप उन्हें जोधपुर का राज्य प्राप्त हुआ। यह राज्य उन्हें दीवानवेश में जलंधर पाव ने दिया। उनके आदेश से मानसिंह ने जालौर में जालपनगर बसाया।

> धर रूप माध अधभूत धारइल कांन कुंडल सोभा अपार।
> दीवांण जोग जद दरस दीध कर जोड़ कमध प्रणाम कीध।।३७।।
> कथ श्री पाव एकण कोर जालप वसाई जालोर।
> बसतली नथी उण री कार कल पर हुती सुना कार।।८०

इस प्रसंग के उपरांत नाथ साहित्य की पूज्या एवं भरथरी की बहिन तथा गोपीचंद की माता मैणावती (गैनावती) का कवि ने चमत्कारिक वर्णन किया है (छंद ८१–६६)। वीरमदेव ने जलंधरपाव की अर्चना से दिल्ली के बादशाह अल्लाउद्दीन को हराया और जालोर दुर्ग को काबीज किया। (छंद १८० तक)।

यहां कवि ने बादशाह द्वारा अपनी शहजादी के विवाह प्रस्ताव को वीरमदेव के पास भिजवाने और वीरमदेव द्वारा उसकी अस्वीकृति पर युद्ध करने तथा शहजादी द्वारा स्वयं को मन ही मन वीरमदेव से विवाह कर अग्नि में जल मरने की घटना क भी वर्णन किया है (छं. ११८–१४४)। युद्ध में वीरमदेव की विजय को जलंधरपाव का प्रताप कहा गया है।

छंद १८१ से २१६ तक पुनः राठौड़ वंश की स्तुति, नाथों और उनके बारह पंथों का वर्णन हुआ है। तदुपरान्त कवि ने रचना की समस्त विषय सामग्री को शीर्षकों द्वारा प्रस्तुत किया है। ये शीर्षक हैं–

१. अथ राठोड़ गोगादेजी नु प्रसन्न हुआ तेनो वरणण (छं. २१६–२४६),

२. अथ संज्यानाथ जी मेलनाथजी नु वर हुऔ सो वरणण (छं. २२४–२३६),

३. अथ मेलनाथ जी ग्रह चार कीनौ सो वरणण (छं. २४०–२४६),

४. अथ राजा रतन सती देषायौ तिण रो वर्णन (छं. २५०–२६५),

५. अथ चारण आसीया काना नु अमर कीओ सो वरणन (छं. २६२–२६५),

६. अथ महाराज जसवंतसिंहजीरै विग नौ श्री माहाराज अजीतसिंग जी नु प्रसन्न हुआ सो वरणन (छं. २६६–३०६),

७. अथ महाराज भीमसिंग जी री फौज जालोर ऊपर आई तद माहाराज श्री मानसिंग जी री श्री जलंधरनाथ जी साय करी सो वरणन (छंद ३१०–४८४),

८. अथ महामिंदर करायौ सो वरणन (छं. ४८५–५६४)।

वस्तुतः यही अंश रचना का मुख्य आख्येय है। इन कथ्यों में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश हुआ है। संभवतः इसी आधार पर सूची निर्माता ने इस रचना को इतिहास वर्ग में रखा। आलोच्य रचना की कतिपय ऐतिहासिक घटनायें हैं–

१. कान्हड़ देव द्वारा ज़ालोर दुर्ग की तलहटी का गांव भाट को दान में देना (छं. १५४–१५५)

२. सोनगरा वीरमदेव (कान्हड़देव का पुत्र) और दिल्ली पति अल्लाउद्दीन की सेना का युद्ध (छं. १५७) एवं जालोर दुर्ग की प्राप्ति (छं. ३०१)

३. महाराजा जसवंतसिंह एवं महाराजा अजीतसिंह के समय में मरूधरा पर औरंगजेब के आक्रमण का उल्लेख (छं. २६७–२६६),

४. भीनमाल सांचोर में महाराजा भीमसिंह की बड़ी सेना के साथ महाराजा मानसिंह का सामना करना (छं. ३१८),

५. दो वर्ष के सतत युद्ध के उपरान्त महाराजा भीमसिंह की अचानक मृत्यु के पश्चात् वि. सं. १८६० में महाराजा मानसिंह का गद्दीनशीन होना (छं. ४०६)

६. महाराजा मानसिंह द्वारा महामंदिर का निर्माण (छं. ४८५–५४५)।

जैसा कि आरंभ में ही कहा जा चुका है कि कवि का उद्देश्य जलंधरनाथ का यशोगान करना रहा है, जिसका वर्णन कवि ने यथा स्थान और यथा प्रसंग पूर्ण सामर्थ्य के साथ किया है। ऐसे प्रमुख प्रसंग हैं–

१. राठौड़ गोगा दे के प्रसंग में जलंधर नाथ का बीकानेर महाराजा को वरदान देना (छं. २२१),

२. संज्यानाथ और मेलनाथ प्रसंग में जलंधरनाथ की कृपा से मेलनाथ द्वारा कुआ खुदवाना (छं. २३६–२३८),

३. ब्राह्मणी को चमत्कारिक रूप से मेलनाथ द्वारा अपनी चेली बनाना (छं. २४६),

४. स्वप्न में जलंधर नाथ का मेलनाथ को परचा देना (छं. २५६),

५. चारण आशिया कांना को जलंधरनाथ द्वारा अमरत्व प्रदान करना (छं. २६३),

६. जलंधरनाथ का महाराजा जसवंत सिंह और अजीतसिंह जी के युद्ध कौशल पर प्रसन्न होना (छं. २६६, २८६) एवं राठौड़ों को इतनी शक्ति प्रदान कर मुगलों को मार भगाना तथा हासिल का सहज रूप में इकट्ठा होना (छं. २६८),

७. महाराजा मानसिंह को जलंधरनाथ द्वारा मारवाड़ की सत्ता की प्राप्ति का आश्वासन मिलना (छं. २६०),

८. वि.सं. १८६० के दशहरा के दिन मानसिंह को जलंधरपाव के दर्शन और इनके आशीर्वाद के अनुसार वि. सं. १८६० की कार्तिक शुक्ला चौथ को राज्य प्राप्ति (छं. ३६०, ३६२, ३६७ पत्र २६–२७),

६. आयस देवनाथ के साथ मानसिंह का जोधपुर आगमन और महामंदिर का निर्माण (छं. ४२४, ४२८, ४८४–४६४)।

महामंदिर निर्माण सम्बन्धी वर्णन नाथ भक्ति परम्परा, भवन निर्माण (वास्तु) कला के इतिहास एवं महाराजा मानसिंह जी के समय के जोधपुर के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण दस्तावेज कहा जाना चाहिये। इस मंदिर का निर्माण महाराजा मानसिंह ने जलंधरनाथ को जोधपुर में विराजमान करने की दृष्टि से किया (छं. ४८६)। इसमें जालीदार झरोखे, बारियां, परकोटा, सामने पोल, पास ही में बाल संमंद और उस के ऊपर सिद्ध नाथ मंदिर का निर्माण कराया गया (छं. ४६१, ५०६)। महामंदिर में जलंधरपाव के चरणों को माघ सुद पंचमी वि. सं. १८६१ को पधराया।

इसी दिन आयस देवनाथ को भी निमंत्रित किया गया (छं. ४६३) तथा गांव वालों ने ताम्रपत्र चढ़ाया (छं. ४६४)

सम्पूर्ण रचना में कवि ने अपनी कृति का भी रचना तिथि के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है और न ही किसी लिपि कर्ता द्वारा कोई लिपि काल का ही उल्लेख है। इससे यह निष्कर्ष दिये जा सकते हैं कि–

१. यह रचना स्वयं कवि की लिपि में ही लिखित है। यद्यपि इस प्रकार का भी कवि ने कोई संकेत नहीं दिया है। किन्तु अन्त में कवि की उक्ति ''इति मा जलंधरनाथ जी रो रूपक संपूर्ण।। जालोर रा सेवग दौलत राम रो बेटो।। श्री।। श्री।। श्री।। संतोकी राम क्रत'' द्वारा इसकी कल्पना की जा सकती है।

२. ग्रंथ में वर्णित महाराजा मानसिंह से सम्बन्धित घटनाओं से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रचना का निर्माण काल कवि ने महामंदिर के निर्माण के उपरान्त ही किया है। तभी तो महामंदिर का समग्र वर्णन कवि प्रस्तुत कर पाया है।

इसी प्रकार कवि ने रचना के शीर्षक में 'रूपक' पद का प्रयोग भी सामान्य अर्थ में ही किया है। मध्यकाल में चरित सम्बन्धी काव्य रूपक नाम से ही लिखे गये हैं।

इस प्रकार कवि सेवग संतोकी राम ने इस ऐतिहासिक (नाथ भक्ति परक) रचना को अपनी वर्णन शैली द्वारा सरसता प्रदान की है। वीरमदेव सोनगरा एवं बादशाह के मध्य हुए युद्ध वर्णन, मैणावती का चमत्कारिक वर्णन, महाराजा भीमसिंह और महाराजा मानसिंह के मध्य हुए युद्ध वर्णन, मानसिंह जी के जोधपुर आगमन का वर्णन, जलंधरनाथ के बालरूप दर्शन का वर्णन, महामंदिर वर्णन आदि में कवि की इतिवृत्तात्मक शैली के दर्शन किये जा सकते हैं। वर्णनों में अप्रस्तुत योजना स्वतः ही अपनी शृंगार दरशा रही है। कवि ने अपनी बात कहने के लिए भक्ति से सम्बद्ध उदाहरण और अलंकारों का सहारा लिया है। कहीं भी इनका प्रयोग चमत्कार हेतु दिखाई नहीं देता।

रचना का ग्रथन कवि ने दूहा, पद्धड़ी, नाराच, अधेरंग, छप्पय, कवित्त, ताटक और माणकतुल छन्दों में किया है। इनमें से अधोरंग और माणकतुल छंदों के अतिरिक्त शेष छंद राजस्थानी काव्य में प्रचलित रहे हैं। राजस्थानी प्रचलित रूप प्रयोग ने इस रचना को संप्रेषणीय बनाया है। भाषा प्रयोग में अल्प प्राण की अपेक्षा महाप्राण प्रयोग की बहुलता है, यथा--

अद्‌भुत > अधभत, द्रव्य > ध्रव।

इस प्रकार सेवग संतोकी राम कृत जलंधरनाथं रूपग' राजस्थानी की एक उल्लेखनीय नाथ भक्ति सम्बन्धी रचना है। इसमें नाथ भक्ति और महाराजा मानसिंह के समय के मारवाड़ राज्य की सामाजिक स्थिति और उस समय राजस्थान में नाथ भक्ति की स्थिति का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। उस समय भी मकराणे का पत्थर भवन निर्माण हेतु प्रयुक्त होता था। महामन्दिर में महाराजा ने इसी पत्थर का प्रयोग करवाया। बोर सांगरी का वर्णन कर कवि ने अपनी धरती प्रेम को मुखरित किया है। साथ ही मारवाड़ की साधन विहीनता की ओर भी संकेत किया है। किन्तु यह साधन हीनता जलंधरपाव की कृपा से तनिक भी नहीं खलती।

असिस्टेंट प्रोफेसर राजस्थानी
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर

# संदर्भ सूची


1. इति गा जलधर नाथ जी रौ रूपक संपूरण।।
   जालौर रा सेयक दौलत राम रो बेटो।।श्री।।श्री।।
2. बही, छं. 192-241
3. कथनाथ देवेरा प्रमाण कीऔ दलराज जोधाणा श्री नाथ दीऔ।
   खुद कातीय चोथवणौ सभीऔ कल भीम सुरापुरवांरा कीऔ।।3172।।
   हठयोग प्रदीपिका पर कौल सम्प्रदाय का प्रभाव

# गोरखवाणीः क्षेपक, प्रतिपाद्य और उल्टी चर्चा के संदर्भ में

डॉ. रमेशचंद्र मिश्र

आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में गोरखनाथ के सम्बन्ध में जो परिचय (–बिन्दु–) सूत्र मिलते हैं, वे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।[१] उन्होंने लिखा है कि ''देश भाषा में लिखी गोरखपंथ की पुस्तकें गद्य और पद्य दोनों में हैं और वि.सं. १४०० के आसपास की रचनाएँ हैं। इनमें साम्प्रदायिक शिक्षा है। जो पुस्तकें पाई गई हैं, उनके नाम ये हैं– गोरख–गणेश गोष्ठी, महादेव गोरख संवाद, गोरखनाथजी की सत्रह कला, गोरख बोध, दत्त गोरख संवाद, योगेश्वरी साखी, नरवै बोध, विराट पुराण, गोरख सार, गोरख नाथ की बानी सिद्ध–योगियों की वाणी के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का यह कथन और भी विचारणीय है कि उनकी रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई सम्बन्ध नहीं। वे साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र हैं। अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती।''[२]

दूसरी ओर ,डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने 'गोरख–बानी' सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य आचार्य शुक्ल के निकट रहते हुए ही किया है। पर उसका प्रकाशन, आचार्य शुक्ल के बाद सन् १९४२ में हो पाया। 'गोरख–बानी' का सम्पादन, आठ हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर हुआ है, जिनमें एक–दो को छोड़कर प्रायः सभी राजस्थान

से प्राप्त हुई हैं। गोरख–बानी की तीन हस्तलिखित प्रतियां तो जोधपुर से ही विद्वान् सम्पादक को हस्तगत हुई थीं। प्रकाशित 'गोरख–बानी' के प्रारम्भ में संकलित १३ ग्रन्थ भाषादि आधारों पर गोरख कृत बताए हैं। शेष परिशिष्ट १ व २ में संकलित ग्रन्थ एवं कुछ अन्य (कुल ४०) गोरख के नाम से प्रचलित हो गए हैं, जबकि उनकी भाषा बहुत बाद की है। बड़थ्वालजी को गोरख की रचनाओं की सब से प्राचीन हस्तलिखित प्रति पुरोहित हरिनारायण शर्मा से प्राप्त हुई थी, जो संवत् १७१५ की है। इस सम्बन्ध में विद्वान् सम्पादक का यह कथन भी विचारणीय है– ''हिन्दी के ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ बहुत प्राचीन नहीं मिलतीं। जो कुछ मिलती हैं, विक्रम की सत्रहवीं–अठाहरवीं शती के इधर की ही हैं। रमते जोगियों की बानी के प्राचीन हस्त लेखों का न मिलना भी कोई अचरज की बात नहीं। क्योंकि, वे चेलों और अनुयायियों के जीभ–कान से होती हुई आई हैं। आखिर बानी ही ठहरीं। श्रुति–परम्परा से होती आई हुई इन बानियों के सम्बन्ध में दो तथ्यों की ओर ध्यान जाता है। एक तो नाथ गुरुओं की बानी के प्रति उनके शिष्यों में जो प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास की भावना होती है, वह उसे नष्ट होने से बचाती है और दूसरी ओर स्मृति के कारण उसमें कुछ परिवर्तन या छूट हो जाती है।[3]

डॉ. बड़थ्वाल ने 'गोरख–बानी' में 'सबदी' रचनाओं को गोरख की सबसे प्रामाणिक रचना कहा है। क्योंकि, वह सब प्रतियों में मिलती है। किन्तु, सर्वाधिक परिचित और प्रचलित 'गोरख बोध' को बताया है। विद्वान् सम्पादक ने बानियों के कर्त्ता गोरखनाथ के समय आदि के सम्बन्ध में 'हिन्दी काव्य की योगधारा' में विस्तार से विवेचन किया है और निष्कर्ष दिया है कि ''नाथ–परम्परा में बानी–कर्ता प्रसिद्ध गोरखनाथ से भिन्न नहीं समझे जाते। गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती में हुए। ये रचनाएँ जैसी हमें उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसी ही उस समय की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु, इनमें भी प्राचीनता के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती में हुआ हो। जो भी हो, हमारे सामने कर्त्ता की कीर्ति रूप यह कृति है।[4] इस आलेख में हमारा प्रयास कृति से व्यक्ति और व्यक्ति से उसके व्यक्तित्व तक पहुंचने का है।

'गोरख सिद्धान्त संग्रह'[५] में 'नव नाथ' गुरुओं को ('गुरु नवात्मकं भद्रे नवभावैर्विभावयेत्') नमन अर्पित है और इस क्रम से नव नाथों का उल्लेख है– १. आदिनाथ, २. मत्स्येन्द्रनाथ, ३. उदयनाथ, ४. दण्डनाथ, ५. सत्य नाथ, ६. सन्तोष नाथ, ७. कूर्म नाथ, ८. भवनार्जि, ६. गोरखनाथ। और इन नव नाथों की परम्परा में जिस–जिस मूल देवता का ध्यान विहित बताया है, वे क्रमशः इस प्रकार हैं–

| | | |
|---|---|---|
| १. आदिनाथ | – | महादेव |
| २. उदयनाथ | – | पार्वती |
| ३. सत्यनाथ | – | ब्रह्मा |
| ४. सन्तोष नाथ | – | विष्णु |
| ५. अचलनाथ | – | पतंजलि |
| ६. कन्थड़ि नाथ | – | गणेश |
| ७. चौरड़िगनाथ | – | चन्द्र (पूर्ण कला) |
| ८. मत्स्येन्द्रनाथ | – | मत्स्यावतार |
| ६. गोरक्ष नाथ | – | सदाशिव |

यहाँ सम्प्रदाय में ध्यान देने की बात यह कि 'महादेव' को शिव या सदाशिव से पृथक् तत्व माना गया है। दूसरा महत्वपूर्ण संकेत यह है कि 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ में नव नाथों को नव नारायण रूप में अवतीर्ण तो बताया गया है। पर, नव नाथों में गोरख नाथ का नाम नहीं है। वहाँ नव नाथों की उत्पत्ति के बाद महादेव ने स्वयं गोरखनाथ को उत्पन्न किया, ऐसा बताया गया है आर उन में शिव–सदाशिव देवता की ध्यान–स्थिति को समाहित किया है। 'महार्णव' तन्त्र में गोरक्षनाथ का नाम प्रथम एवं मत्स्येन्द्रनाथ का अन्तिम है। यहाँ परम्परा में नामोल्लेख क्रम से बताने का तात्पर्य यह है कि ८४ सिद्धों और नव नाथों की व्यक्तिवाचक परम्परा कोई सुनिश्चित परम्परा नहीं है, जिसमें तत्व–भेद करके दोनों को पृथक्–पृथक् करके देखा जा सके। चर्या–भेद के आधार पर वज्रयानी सिद्धों की परम्परा में से ही, विचार के

आधार पर नाथ–विचारधारा का विकास हुआ है। इन नाथों की कृति और कृतित्व के आधार पर गोरखनाथ जन–मानस में विशिष्ट शलाका–पुरुष के रूप मे विद्यमान हैं।

ऐसे गोरखनाथ के आविर्भाव के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इसलिए विद्वानों ने ७वीं शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक, अलग–अलग आधारों पर काल–निर्धारण किया है। डॉ० भवानी शंकर त्रिवेदी जहाँ गोरख को ७वीं शती का [६] मानते हैं, वहीं आचार्य शुक्ल [७] और डॉ. रामकुमार वर्मा [८] इन्हें १२वीं शती और उसके बाद का मानने के पक्षधर हैं। इसी बीच की चार शताब्दियों में गोरख को मानने वालों में डॉ. शहीदुल्ला ८वीं शती [९], पं. किशोरीदास वाजपेयी ९ वीं शती[१०], १०वीं शती मानने वालों में महापंडित राहुल सांकृत्यायन[११], डॉ. रांगेय राघव[१२] और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी [१३] के नाम उल्लेखनीय हैं। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल गोरखनाथ का समय ११वीं शती निर्धारित करते हैं।[१४]

जिस प्रकार गोरखनाथ के आविर्भाव–काल–निर्धारण में विद्वानों में मतैक्य नहीं हैं, उसी प्रकार 'गोरख–बानी' के मूल एवं क्षेपक विषय पर भी विद्वान् एक सा निष्कर्ष नहीं दे पा रहे हैं। 'बानी' में क्षेपक विषय पर विचार करने वालों में तीन विद्वानों का नामोल्लेख आवश्यक है। यह हैं– डॉ. कमल सिंह ( गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन, शोध प्रबन्ध सन् १९७५), श्री अगरचन्द नाहटा ('योग वापी' पत्रिका : गोरख विशेषांक, जनवरी १९७७ तथा 'सप्त सिन्धु' पत्रिका) तथा डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। इन विद्वानों ने वाणी की भाषायी प्रकृति के आधार पर गोरख की रचनाओं में क्षेपक– निर्धारण करने का प्रयत्न किया है। किन्तु, अकेले डॉ. बड़थ्वाल ने हस्तलिखित प्रतियों को भी आधार बनाया है। डॉ. कमल सिंह का एक लेख 'गोरख–बानियाँ' : मूल और क्षेपक' शीर्षक से 'सम्मेलन पत्रिका' (पृ. १२४–३२ : आषाढ़–मार्गशीर्ष : शक संवत् १९०४, सन् १९८२ ई.) में छापा था, जिसमें उन्होंने गोरख की मूल भाषायी प्रकृति 'खड़ी बोली' निर्धारित की है। इसी प्रकार श्री अगरचन्द नाहटाजी ने 'गोरख–बानी' के प्रकाशन (सन् १९४२ ई.) से सन् १९७७ तक उपलब्ध अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का हवाला देते हुए 'योग वाणी' पत्रिका के गोरख विशेषांक

में 'योगेश्वर गोरखनाथ की हिन्दी वाणी और दो जैन ग्रन्थों में उद्धृत उनके पद' शीर्षक लेख में हस्तलिखित स्रोतों से प्राप्त ऐसे चार पद्यों का उल्लेख किया है, जो १५वीं शती के शुभशील रचित 'विक्रम चरित्र' में भी उल्लिखित हैं। साथ ही १७ वीं शती के जैन कवि बनारसी दास कृत 'बनारसी विलास' में उद्धृत चौपाईयों का भी उल्लेख है। उक्त लेख में यह भी बताया गया है कि डॉ. बड़थ्वाल द्वारा गोरख की कही जाने वाली १३ रचनाओं में भी अन्य सन्तों की बानियाँ मिली हुई हैं। इसके लिए उन्होंने राहुल जी की 'पुरातत्व निबन्धावली' ('नाथों के, चौरासी सिद्धों का उत्तराधिकारी सिद्ध हो जाने पर, फिर कबीर से सम्बन्ध जोड़ने में दिक्कत नहीं रहती। कबीर स्वयं चौरासी सिद्धों को भूले न थे। '–पृ. १६४) का उल्लेख किया है। वास्तव में सन्त कवियों ने विषय–वस्तु के साथ ही साथ अपनी पूर्ववर्ती लोक–प्रचलित रचनाओं की प्रतीक शैली और कथन–भंगिमा से बहुत कुछ ग्रहण किया है। कहीं–कहीं तो ज्यों–का–त्यों, वाक्य और उपवाक्य तक समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार भाषा के आधार पर क्षेपक सिद्ध करने के लिए गोरख–बानी के ४ पदों का उल्लेख किया गया है। ये हैं–

'छांटै तजौ छांटै, तजौ लोभ माया।
आत्मा परचै राषौ गुरूदेव सुन्दर काया।।'

– १४ पंक्तियों का पद, संख्या २

'गुरु कीजै गहिला निगुरा न रहिला,
गुरु बिन ग्यांन पायला भाईला।'

– १२ पंक्तियों का पद, संख्या ३४

'कैसे बोलौं पंडिता देव कौंनै ठांई।
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नांहीं।।

– १० पंक्तियों का पद, संख्या ३७

'थांन दे गोरीए गोरख बाला माई बिन प्याले प्याला।

गिगांन ची डाल्हीला पालषूं गोरष बाला पौढ़िला।।'

— ८ पंक्तियों का पद, संख्या ४६

इन उदाहरणों के सम्बन्ध में यही कहना है कि गोरख नाथ रचित वाणी में से प्रक्षिप्त अंश ढूँढ़ने के लिए कुल ६२ पदों में से ४ पदों को तो छाँटा गया है, लगभग ३७५ सबदियों में से कोई उदाहरण नहीं चुना गया। जबकि डॉ. बड़थ्वाल सबदी–रचना को गोरख की मूल प्रामाणिक रचना के अधिक निकट मानते हैं। पदों के उक्त उदाहरणों में भी, कारक–चिह्नों के प्रयोग की दृष्टि से, सम्बन्ध कारक 'के लिए' १२ है, जो चा – ची – चे चिह्नों से अभिव्यक्त हुए हैं। तर्क यह है कि ये १२ प्रयोग इन उदाहरणों के अतिरिक्त गोरख–बानी में अन्यत्र नहीं मिलते। मूल गोरख–बानी के सम्बन्ध कारक तो का–की–के और ना–नी–ने हैं, जिन में राजस्थानी क्षेत्र का स्पष्ट प्रभाव है। अतः रचना में बिखरे पड़े ना–नी–ने वाले सम्बन्ध चिह्नों वाली 'बानी' को प्रक्षिप्त नहीं कहा जा सकता। वैसे भी, चा–ची–चे कारक चिह्न मराठी भाषा क्षेत्र के हैं और कहीं–न–कहीं गोरख–बानी के व्यवहार–प्रभाव क्षेत्र से जुड़े रहने के कारण रचना में आए हैं। 'गुरू–ग्रन्थ साहब' में संकलित वाणी की प्रकृति को देखते हुए इस समाहिति में कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

कारक–चिह्नो की तरह ही, उक्त पदों में 'ईला' प्रत्यय के प्रयोग को देखा जा सकता है। इस प्रत्यय का प्रयोग भी राजस्थानी के प्रभाव–क्षेत्र को ही द्योतित करता है। किन्तु, यह प्रत्यय भी गोरख की भाषा की मूल प्रकृति नहीं लगती। मराठी–क्षेत्र का ही प्रभाव जान पड़ता है। मराठी में 'ईला' प्रत्यय भूतकाल के लिए तो प्रयुक्त होता ही है, वर्तमान और भविष्यत् काल के लिए भी प्रयुक्त होता है।[१५] 'ईला' प्रत्यय प्रयोग की प्रवृत्ति को विद्वानों ने गोरख की सहज भाषा प्रयोग प्रवृत्ति से अलग बताया है।[१६] ऐसा बताते हुए भाषा पारखी यह भूल जाते हैं कि गोरख–बानी का मौखिक प्रभाव–क्षेत्र, जन–भाषा–ग्रहण –क्षेत्र होने के कारण बहुत व्यापक था। वैसे भी, हिन्दी–भाषा प्रयोग का वह संधिकाल था। सन्त–वाणी में प्रयुक्त 'साधुक्खड़ी'[१६] जो संस्कृत के 'सर्वभाषाप्रयोग–सिद्धान्त'[१७]

से देसी–भाषा प्रयोग के षड्भाषा सिद्धान्त' की परम्परा में विकसित 'हिन्दुस्तानी' प्रयोग की व्यावहारिक व्यंजना कराता है। आचार्य राजशेखर ने भी अपने 'काव्य मीमांसा' ग्रन्थ में भाषा के मिश्रित रूप को, अपने काव्य–पुरूष के हृदय स्थान पर प्रतिष्ठित बताया है–

'शब्दार्थौ ते शरीरं संस्कृतं मुखं प्राकृतं बाहुः।

जघनमपभ्रंशः पैशाचं पादौ उरो मिश्रम्।।'

यह 'उरो मिश्रम्' रूप भाषा ही मध्यदेशी 'षड्भाषा' प्रयोगाधार रूप में विकसित हुई है। 'सधुक्कड़ी' या 'सधुक्खड़ी' शब्द की सधुक्कड़ >सधुक्खड़ > साधुक्खड़ > साधुखड़ > साधुखट > साधुखड़ रूप में निष्पन्न होने की पूरी सम्भावना है। इस 'षड़भाषा' विचार का उल्लेख, भाषा–काव्यों में मध्य काल से ही मिलता है। कवि चन्द ने 'षड्भाषा' पुराणं च कुरानं कथितं मया' कहकर भाषा के मिश्रित स्वरूप की ओर ही संकेत किया था। शेख कुतबन अपने कथा–काव्य 'मृगावती' में इसी 'खटभख' (षट भख अहही ऐहो मद्ध। पंडित बिन बूझत होई सिद्ध।।'..... 'खट भाखा आहही एहि मांझा। पंडित बिन बूझत होई सांझा।।' – उपसंहार खंड ४२६) का उल्लेख किया है। खेमदास ने सन्त कवि रज्जब की भाषा के सम्बन्ध में कहा है -- 'षड् भाषा स्वर सप्त लै, पिंड ब्रह्मांड ब्यौरे किये।' (र.बा., पृ. ४५१)। आचार्य भिखारी दास ने अपनी 'काव्य निर्णय' (–रचनाकाल सन् १८४६) ग्रन्थ में इस 'षड्भाषा' का स्वरूप निर्धारित करते हुए इस प्रकार व्याख्या की है–

'ब्रज मागधी मिलै, अमर नाग यमन भाखानि।

सहज पारसी हू मिलै, षट विधि कहत बखानि।।'

इस प्रकार यह मिश्रित भाषा प्रयोग शैली, मध्यकाल की काव्य–भाषा बन चुकी थी। यहाँ छः भाषाओं का अर्थ 'केवल छः भाषाएँ ही नहीं हैं। अपितु भाषाओं का समन्वित रूप है। ऐसी भाषा किसी कृत्रिमता का परिणाम अथवा किसी प्रान्तीय भाषा के कारक–प्रत्ययों के प्रयोग के कारण, क्षेपक की शंकाओं को उभारने वाली नहीं कही जा सकती। ऐसी भाषा का प्रयोग तो, काव्य–भाषा के रूप में प्रयोक्ता का (भाषा विषयक मान्यता के रूप में) भाषा–सिद्धान्त

ही मानना चाहिये। भिखारीदास ने ऐसी मिलीजुली भाषा के प्रयोक्ता के रूप में तुलसी और गंग कवि का उदाहरण दिया है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' की भाषा का उदाहरण पहले दिया जा चुका है। भाषा–प्रयोग के विचार को इस परिप्रेक्ष्य में देखते हुए जब हम गोरख–बानी की भाषा पर विचार करते हैं और विद्वान् सम्पादक डॉ. बड़थ्वाल के भाषा विषयक निष्कर्षों को देखते हैं [१८], तो कुछ कारक चिह्नों, प्रत्ययों अथवा हिन्दी–क्षेत्र में थोड़ी अटपटी लगने वाली शब्दावली के आधार पर अथवा नाथ–परम्परा में गोरख के परवर्ती नामों का उल्लेख या फिर एक बात की कई बार आवृत्ति को देखकर ही गोरख–बानी के अधिकांश हिस्से को 'क्षेपक' के खाने में डालना उचित नहीं लगता। गोरख–बानी में भाषाई अन्तर या पाठ–भेद के पाए जाने का मुख्य कारण 'बानी' का वाचिक–परम्परा में प्रचलित और प्रसिद्ध होना माना जाना चाहिए। अपने समय के लम्बे अन्तराल में गोरख–बानी पश्चिम और उत्तर पश्चिम भारत में बहुत लोकप्रिय रही है। इसीलिए हस्तलिखित प्रतियों में भी बहुत अधिक पाठ–भेद होना स्वाभाविक है। ऐसी वाचिक–परम्परा में मूल की खोज दुस्साध्य प्रयास ही कहा जा सकता है। बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित कबीर अथवा मीरा की वाणी भी तो कबीर या मीरां की भाषा के रूप में पढ़ी या विवेचित होती ही है। यद्यपि, डॉ. पारसनाथ तिवारी द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' के प्रकाशन को तीस से अधिक वर्ष हो गए हैं। पर अभी भी आ. श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' का कम महत्व नहीं है। वैसे भी, अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में एकसे शब्द रूपों का होना, प्रयोक्ता के मूल शब्द–प्रयोग को प्रमाणित ही करता हो, यह आवश्यक नहीं है। और गुरु–शिष्य परम्परा में. तो गुरु–वाणी को, गुरु–पद का सम्मान मिलने से रचना को यथावत् रखने का आवश्यक प्रयत्न करना होता ही है। हस्तलिखित प्रतियों में गोरख–बानी की भाषाई भिन्नता, कालावधि से अधिक प्रचार–क्षेत्र के विस्तार के कारण हुई है। इसलिए ऐसे पाठ–भेद के सभी अंश 'क्षेपक' मान लिए जाएँ यह उचित नहीं है। डॉ. बड़थ्वाल की 'गोरख बानी' की 'मूल भाषायी प्रकृति में मेल' जैसी शोध–अवधारणा को लेकर ही डॉ. कमल सिंह ने 'गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन' प्रस्तुत किया है।

'गोरख बानी' में संकलित रचनाओं की प्रकृति 'मुक्तक' है। मुक्तक रचनाओं में कथित पुनरुक्ति का मिलना स्वाभाविक ही है। अतः यह 'पुनरुक्ति' क्षेपकत्व निर्धारण का आधार नहीं बन सकती। वैसी भी, सर्वसम्मति से गोरख की सबदियों की भाषा अधिक परवर्ती नहीं मानी गई। दूसरी ओर, यह भी मुनासिब जान पड़ता है कि सन् १६४२ के गोरख–बानी के प्रकाशन के बाद जो नए खोज–निष्कर्ष अथवा नई हस्तलिखित प्रतियों की सूचना मिली है, उनको समक्ष रखकर, तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर, गोरख–बानी का संशोधित सम्पादन तैयार किया जाए। उपलब्ध रचनाओं का गंभीरता से अवलोकन करने पर पता लगता है कि इनमें प्राचीनता एवं प्रामाणिकता के सम्यक् तत्व विद्यमान हैं। भाषा और बानी–साहित्य साधना में प्राचीनता के ये तत्व स्वतः निर्वाहित होते रहे हैं। इस बीच उन विद्वानों एवं उनके निष्कर्षों के पक्षधर विद्वानों की, जो गोरखनाथ और उनकी वाणी को सर्वथा अप्रामाणिक तो मानते ही हैं, योगजागृति अथवा योग प्रसारित करने वाले गोरख–विचार को, किसी एक कथन के आधार पर 'भक्ति–विरोधी' के रूप में, बिना जाने–समझे, उद्धृत करते रहे हैं, पुनर्विचार करना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में हमें अब यहाँ गोरख के प्रतिपाद्य पर संक्षेप में विचार करना अपेक्षित है।

**सामाजिक विचार–परिप्रेक्ष्य में गोरख का अवदानः–** यह सर्वमान्य अवधारणा है कि शलाका पुरुष गोरखनाथ के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विचार–निर्देशन में नाथ–पन्थ, १०वीं के उत्तरार्द्ध एवं ११वीं शती के पूर्वार्द्ध तक प्रतिष्ठित हो चुका था।[१९] तब तक आचार्य शंकर के वर्चस्व से संबल पाकर ब्राह्मण धर्म पुनः प्रभावी होने लगा था। तब तक आ. शंकर की मनीषा ने, बौद्ध धर्म के प्रभाव–ध्वंसावशेषों को भी निरस्त कर दिया था। इसीलिए साधना के क्षेत्र में नाथ–पन्थ ने और ज्ञान–भावना के क्षेत्र में आचार्य शंकर और आचार्य रामानुज ने भक्ति की नई ऊर्जा–चेतना को, सामाजिक धरातल पर नए विचारालोक में, प्रस्फुटित करना प्रारम्भ कर दिया था। तत्व–चिन्तन की दृष्टि से देखें तो कह सकते हैं कि यह कोई नई विचार–चेतना नहीं थी। अपितु, पूर्ववर्ती पातंजल–योग–दर्शन एवं भगवत्–धर्म का ही एक विकसित एवं युगानुरूप संवर्धन था। आलोचकों ने तो नाथ–सम्प्रदाय को सहजयानी या

तान्त्रिक सिद्ध–साधना अथवा शैव–तन्त्र–साधना का ही परिवर्तित, विकसित एवं व्यावहारिक रूप बताया है, जो बाद में सन्त–साहित्य के रूप में पल्लवित एवं पुष्पित हुआ है।[२०]

नाथ–सम्प्रदाय के आदि प्रर्वतक शिव अथवा सदाशिव मान गए हैं। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शैव–साधना तथा बौद्ध–तन्त्र के दबाव–प्रभाव में ही नाथ–पन्थ का प्रारम्भिक विकास हुआ होगा।[२१] वैसे विद्वानों ने नाथ–पन्थ के शास्त्र पक्ष को कमज़ोर बताया है। आचार्य शुक्ल का तो कहना ही है कि 'नाथ–पन्थ में शास्त्रज्ञ विद्वान् नहीं थे।[२२] पर, ऐसे कथन, ब्राह्मण गोरखनाथ के, संस्कृत ग्रन्थों (–गोरक्ष पद्धति, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह आदि) में निहित योग सम्बन्धी शास्त्र पक्ष को न समझने के कारण ही दिए गए लगते हैं। गोरख के विचार–सिद्धान्त एवं उनकी बानी में निहित, विवेकपूर्वक दिए गए भाव–विचारों को समझने पर लगता है कि गोरख ने नाथ–पन्थ को सुगठित एवं सुविचारित रूप प्रदान किया है। उनकी वाणी में दार्शनिक चिन्तन के साथ–साथ आत्मानुभूति एवँ समाज–सन्दर्भ के पक्ष भी उतने ही महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए पातंजल योग जहाँ सिद्धान्त परक अधिक रहा है, वहीं गोरख का योग व्यावहारिक भूमिका से अधिक जुड़ा हुआ है। इस सम्बन्ध में आचार्य द्विवेदी का यह कथन उदाहरणीय है–

'गोरखनाथ अपने काल के इतने प्रसिद्ध महापुरुष हुए थे कि उनका नाम अपने पंथ के पुरोभाग में रखे बिना उन दिनों किसी को गौरव मिलना सम्भव नहीं था। जो लोग वेद विमुखता और ब्राह्मण विरोधिता के कारण समाज में अगृहीत रह जाते, वे उनकी कृपा से ही प्रतिष्ठा पा सकते थे।'[२३]

वास्तव में गोरखनाथ ने नाथ–सम्प्रदाय एवं तत्कालीन समाज जीवन को एक प्रभावशाली विचारधारा एवं आन्दोलनकारी दृष्टिकोण प्रदान किया है। वे ग्रन्थ–गत ज्ञान प्राप्त करके ('पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मूवा, कथि कथि कहा कीन्हा।' –गो.बा., सबदी २४८) संतोष कर लेने वालों के विरुद्ध थे। वे साधना–पथ पर चलने वाले होते हुएं भी 'उन क्रांतिकारियों में से थे, जिन्होंने ब्राह्मणवाद और सामन्तवाद में मनुष्य की बराबरी का दावा किया था।' (गोरखनाथ और उनका युग, भूमिका, पृ. ६)। उनके प्रतिपादित

विचार–सिद्धान्तों में एक ओर तो ईश्वरवाद की प्रतिष्ठा है, तो दूसरी ओर वज्रयानी साधना से उत्पन्न विकृत रुढ़ियों के प्रति विरोध का स्वर प्रमुख है।[२४] यही कारण है कि नाथ–पन्थ में हमें व्यक्तिनिष्ठ इन्द्रिय–संयम के साथ ही साथ समाजोन्मुख नैतिकता पर विशेष बल दिखाई देता है। गोरख के विचार जानने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत गोरख–बानी ही है, जिस पर भाषा के परवर्ती रूप के समाहित होने के कारण, क्षेपक या अप्रामाणित होने का सन्देह होता रहा है। जो भी हो, गोरख को लगा कि उनके तत्कालीन समाज–जीवन में सात्विक भावना एवं ब्रह्मचर्याचरण, विलास–वृत्ति एवं व्यभिचरण की निम्नतम सीमा तक पहुँच चुका है। इसलिए गोरखनाथ ने विचार और व्यवहार के 'निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण–विचूर्ण किया है' (दे.–नाथ संप्रदाय, पृ. १६६)। योगी अवधूत के आचरण, काज़ी–मुल्ला के रूढ़ विश्वास, साध की चर्या एवं साधक जीवन में वाणी के संयम पर गोरख की ये सबदियाँ उदाहरणीय हैं–

'जोगी सो जे मन जोगवै। बिन बिलाइत राज भोगवै।।
कनक कामनी त्यागै दोइ। सो जोगेसर निरभै होई।।

– सबदी १०२

'कदे न सोभै सुन्दरी सनकादिक के साथि।'

–सबदी २५०

'महंमद महंमद न करि काजी, महंमद का विषम विचार।
महंमद हाथि करद जे होती, लोहै घड़ी न सारं।।''

– सबदी ६

'यंद्री का लड़बड़ा, जिभ्या का फूहड़ः। गोरष कहै तो पर्तर्षि चूहड़ा।।
काछ का जती मुष का सती। सो सतपुरूष उतमो कथी।।'

–सबदी १५२

'पाषाणां ची देवली पाषांण चा देव।
पाषांण पूजिला कैसे पाटीला सनेह।।'

–पद ३७

गोरख–बानी में कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि के अन्धानुसरण का विरोध तो है ही, शास्त्र के जड़ता जन्य विधि–निषेधों को भी गोरख ने निरर्थक बताया है।[२५] इनके स्थान पर नैतिक पक्ष की प्रधानता वाले शारीरिक संयम–शुद्धि के साथ ही मानसिक शक्तियों के विकास तथा चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए 'अष्टांग योग' की प्रतिष्ठा को महत्व दिया है। योगानुशासन, अवधूत–साधक के लिए ही नहीं, गृहस्थ को भी 'सहज शील' के मार्ग को प्रशस्त करने वाला बताया है। देखिए–

'धूंतारा ते जे धूतै आप। भिष्या भोजन नहीं संताप।।
अहूंठ पटण मैं भिष्या करै। ते अवधू सिवपुरी संचरै।।
गिरही सो जो गिरहै काया। अभिअंतर की त्यागै माया।
सहज शील का धरै सरीर। सो गिरही गंगा का नीर।।'

– सबदी ४३, ४५

सहज जीवन–चर्या प्राप्ति में गोरख ने आहार–विहार, खान–पान और मन की सात्विकता पर विशेष ज़ोर देते हुए शरीर सन्तुलन के साथ आत्म–संयम को अपनी वाणी में प्रमुखता दी है। उनकी मान्यता है कि इन्द्रिय–व्यभिचरण में ज्ञान–विचार–विवेक की चेतना भी विचलित बनी रहती है। इसीलिए अधिक खाना एवं मद्य–मांस–भक्षण का परिणाम चेतना का विश्रृंखलित होना है। प्राण–साधना करने वाला व्यक्ति, मद–होशी की स्थिति में अपनी साधक–विचार–चेतना को गुलाम या परतन्त्र नहीं बनाना चाहता। गोरख के शब्दों में देखिए–

'अति अहारी यंद्री बल करै। नासै ग्यांन मैथुन–चित धरै।
व्यापै न्यंद्रा भांपै काल। ताके हिरदै सदा जंजाल।।'

–सबदी ३६

'भरि भरि खाई ढरि ढरि जाइ। जोग नहीं पूता बड़ी बलाई।।'

–सबदी ४५

'अवधू मांस भषत दया धरम४ का नास।
मद पीवत वहां प्रांण निरास।।
भांगि भषत ग्यांन ध्यांन षोवंत।
जम दरबारी ते प्राणी रोंवत।।'

– सबदी १६५

'धोतारां न पीवौ रे अवधू, भांगि न षावौ रे भाई।
गोरष कहै सुणो रे अवधू, या काया होयगी पराई।।'

– सबदी २४१

गोरख की मान्यता है कि मानसिक सन्तुलन के लिए घर–बार छोड़कर 'बनखड' (–बनवास, सन्यास) में जाने की आवश्यकता नहीं। मानसिक अनुभव–प्राप्ति के लिए 'नगर वास' (नागरिक जीवन) भी किसी प्रकार वर्जित नहीं। इसके लिए तो आत्म चेतना पूर्वक 'दृष्टि' विशेष जागृत करने की आवशकता है। इसीलिए वे वज्रयानी बौद्ध–विचार की तान्त्रिक साधना 'युगनद्ध' (सहवास) क्रिया, जो बौद्ध–सिद्धों को अमरता का मार्ग उद्घाटित करती रही थी, गोरख को वृद्धावस्था लाने का कारण जान पड़ी (और इसका आवश्यक अनुशासन बताया है)। विचार–साधक की सुधि–बुद्धि (स्मरणशीलता) ही उनकी दृष्टि में सामाजिक का लक्षित लक्ष्य है। तभी तो अनुयायी विचार–साधकों को समझाते हुए गोरख कहते हैं कि 'जैसे सरोवरों और वृक्षों से नगर शोभित होता है, पंडितों से भी सभा शोभित होती है, सेना के बीच सेनापति–राजा शोभायमान होता है, वैसे ही साधक अपनी सुधि–बुधि से शोभायमान होता है।[२७] 'चरैवैति' की धारणा वाले योग–विचार साधक के लिए 'एकला' चल ने की प्रेरणा देते हुए गोरख दस–बीस की मण्डली को साधक समुदाय न मानकर 'लश्कर' की संज्ञा देते हैं। उनकी दृष्टि में तो योगानुशासन का अनुवर्तक, विचारक ही होता है। [२८] निरन्तर परिचित गन्तव्य की ओर गतिशील बने रहने वाले योग मार्ग पर उपंरमित होकर बैठे रहना साधक का स्वभाव नहीं।[२९] इस परिचित गन्तव्य की ओर चेतना को अग्रसरित करने के लिए गोरख किसी गुह्य–साधना–मार्ग की ओर दिशा निर्देश नहीं करते। वे हर प्रकार की लक्षित गढ़ी

मूर्ति के विचार को अतिक्रान्त करते हुए असीम में व्याप्त अखण्ड 'अनगढ़ देव' की ओर साधक के क्रान्त करते हुए, असीम में व्याप्त जान पड़ते हैं। ऐसे ही अनगढ़ देव पर बलिहारी जाते हुए वे कहते हैं –

'तुझि परि वारी हौं अणधढ़िया देवा।
घढ़ी मूरति कूं सब कोई सेवै, ताहि न जाणै भैवा।।'

– पद ५८

उक्त अमूर्त्त अनगढ़ देव की मानसिक प्राप्ति के लिए गोरख साधना–मार्ग की दुरूह–निगूढ़ बीथियों में साधक की चेतना को विथकित–विभ्रमित करते हुए नहीं दिखाई देते। अपितु, साधक– 'रहनी' के लिए आत्मानुशासननिष्ठ सन्धान की प्रेरणा देते हैं। यह प्रेरणा भी स्वानुभूति जन्य 'अनुभौ' से प्रेरित है।[३०] इसीलिए वे शास्त्र प्रतिपादित 'कथनी' को 'तोतारटन्त' कहते हुए आचरण प्रधान 'रहनी' की महत्ता को सर्वोपरि बताते हैं।[३१] व्यक्ति के जीवन की समग्रता को देखते हुए, 'करनी' के साथ 'रहनी' में सुगन्धि भरने के लिए, गोरख ने 'गुरु–भाव' की प्रतिष्ठा की है। इस प्रतिष्ठा–भाव के पीछे उनका विश्वास रहा है कि 'निगुरी पृथ्वी' (पृथ्वी के लोग) आस्थाहीन होती है। उसी अनास्था से बचाने के लिए जीवन में गुरु–प्रतिष्ठा आवश्यक है। इस गुरु–भाव को समर्पित होते ही जीवन को जो विशेष सार्थकता मिलती है, वही जीवन को मूल्यवान बनाती है। इस मूल्यवत्ता से व्यक्ति की जो 'जागृति' मिलती है, वही अन्तर्यामी से परिचय कराती है और अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त करती है। चेतना में गुरु–भाव की प्रतिष्ठा होते ही अत्याचार–बलात्कार, भोग–विलास जन्य दुष्कर्मों की वृति पर अंकुश तो लगता ही है, प्रमाद–निद्रा–आलस्य के प्रति तितीक्षा भाव भी जागृत होता है।[३२] लोक–चेतना से प्रेरित होकर गोरख ने जन को, भुजा उठाकर भोग से योग की ओर उत्प्रेरित करते हुए जो उद्बोधन दिया है, वह आज के आस्थाहीन परिवेश में कितना सार्थक लगता है। देखिए–

'चारि पहर आलिंगन निंद्रा संसार जाई बिषिया बाही।
ऊभी बांह गोरषनाथ पुकारै भूल म हारौ म्हारा भाई।'

– पद १

'जागो हो जोगी अध्यात्म लागौ,
जागतड़ा मूल म हारौ म्हारा भाई रे।
अंदरि बैठौ अपणौ साहिब, देषै सोधै सकल कमाई रे।'

– पद ५५

गोरख ने अपने सिद्धान्त–प्रतिपादन में मनुष्य के 'आत्म–बोध–जागरण' पर विशेष बल दिया है। इस आत्म चैतन्य की व्याप्ति में गुरु–भाव की प्रतिष्ठा विशेष रूप से सहायक होती है। क्योंकि गुरु, अतीत के अनेक पोषक तत्वों को अपने में सँजोए रखकर, परम्परा की जीवन्तता को स्वस्थ बनाए रखता है। 'उसके अपने आचरण से सामाजिक मूल्यवत्ता को, आदर्श की कसौटी पर व्यावहारिकता भी मिलती रहती है। हमारे समाज में यह गुरु–भाव एक ऐसा सेतु रहा हे, जो साधना और समाज के बीच तारतम्य बनाए रखकर, परम्परा को 'वर्तमान' में सन्तुलित एवं सार्थक दिशा–निर्देश करता रहा है। उसका यह निर्देश, व्यक्ति–समाज और देश–विशेष में रहते हुए भी, पूरे मानव समाज के लिए ग्राह्य बना रहता है। वास्तव में यह 'गुरु' मात्र शरीर न होकर आन्तरिक विचार का आदर्श है। यह अनुभव–विचार की जीवन्त परम्परा है। गुंरु रूप यह जीवन्त परम्परा परलोक सुधारने से अधिक यह लोक सुधारने के लिए उत्तरदायी है। इस सम्बन्ध में गोरख[३३] का विश्वास बोलता रहा है कि गुरु (आदर्श) विहीन जीवन में कोई प्रतिबद्धता नहीं रह पाती और 'निगुरी पृथ्वी' आत्म–विस्मरण के गर्त में समा जाती है। इसीलिए गोरखनाथ 'उत्तरभाव' (उत्कृष्ट भाव, उत्कर्ष भाव) से अनुप्रेरित होते हुए 'धरती' (भूमि के प्रति पूज्य भावना) से बहिन–भानजी जैसा पवित्र रिश्ता जोड़ते हुए कहते हैं–

'पछिम देस स्यूं आये जोगी, उतर हमारा भाव।
धरती हमारी बहण भाणजी, पापी के सिरि पाव।।'

– सबदी २६७

गुरु–भाव में जीने वाला ही ऐसी समरस भावना को जीवन का आदर्श–भाव मान सकता है। मात्र लोकाचार निभाने वाला वाचक ज्ञानी गुरु का गुरुत्व भाव नहीं निभा पाता। अतः गुरु तो एक अन्तर्यामी भाव है। इसी गुरु–रुप 'रहता भाव' को स्वयं

समर्पित गोरखनाथ।[३४] ऐसे गुरु–उद्बोध से जो आत्मबोध जागृत होता है, उसके रहते समाज–सन्दर्भ में आडम्बर–पाखण्ड–बाह्य पूजा–विधान स्वतः निरर्थक लगने लगते हैं। तब हिन्दु–मुस्लिमों के मन्दिर–मस्जिदों के आग्रह अथवा साधक–जीवन के बाह्याडम्बर सारहीन से लगने लगते हैं। ऐसा जीवन जीने वाले गोरख की दृष्टि में 'अभागे' हैं।[३५] गोरख के 'योग' में हमें निरम्तर वैचारिक सूक्ष्मता का अनुभव होता है। इसलिए वे शरीर को नहीं, मन को योगी बनाए रखने की प्रेरणा देते हैं–

'मनवा जोगी काया मढी। पंच तत ले कथा गढ़ी।।
षिमा षड़ासण ग्यान अधारी। सुमति पावड़ी डंड विचारी।।'
– सबदी ४८

नाथ–पन्थ के विकास में परवर्ती नाथ–योगी रचनाकारों ने भी गोरख प्रतिपादित पाखण्ड विरोधी तेवर को और अधिक धार दी है। चरपट नाथ ने ऐसे पाखण्डी योग दिखावे को 'नट का स्वांग' बताते हुए तिरस्कार किया है।[३६] वास्तव में गोरखनाथ और उनके अनुयायियों का साधनात्मक सामाजिक अवदान, अपने युग पर तो स्पष्ट रूप से पड़ा ही था, आगे आने वाले निर्गुण रचनाकारों की काव्य–धारा पर भी स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। कबीरादि सन्तों ने, नाथ–सिद्धों से बहुत कुछ ग्रहण करते हुए भी हठयौगिक अनुशासन को, अपनी रचनाओं में यथावत् स्वीकार नहीं किया। क्योंकि, सहज जीवन–साधना की प्रवृत्ति के कारण, नाथ–योगियों जैसा अनुशासन, सन्तों के समय तक आते–आते उतना उपयोगी नहीं रह गया था। गोरख की सीमाओं को जानते हुए भी कबीरादि सन्तों ने बड़े सम्मान से उनका स्मरण किया है।[३७]

गोरख की 'उलटी चर्चा' शैलीः विचार एवं शिल्प की विकासयात्रा में सन्तों ने, नाथ–रचनाओं से बहुत कुछ ग्रहण किया है। यहाँ तक भाषा की पृष्ठभूमि में अनेक सूक्तियों, मुहावरों एवं कथन–भंगिमा के साथ ही, उलटवाँसी पद–रचना का सुदृढ़ आधार भी कबीरादि सन्तों को वहीं से प्राप्त हुआ है। वास्तव में ऋग्वेद से ही जन्म लेकर लौकिक संस्कृत, पालि प्राकृत एवं अपभ्रंशादि अनेक भाषा–तीर्थों का स्पर्श करती हुइ और नाम–रुप

से परिवर्तित होती हुए साधनाश्रयी, प्रतीकजीवी, विरोधगर्भिता वाणी 'उलटवांसी', युगीन सामाजिक सन्दर्भों को अपने में समेटे हुए, 'उलटी चर्चा' के रूप में गोरखनाथ के साहित्य में पल्लवित ही नहीं, प्रतिष्ठित भी हो चुकी थी। आगे चलकर यह शैली ही उलटवाँसी पद–रचना होकर मध्ययुगीन हिन्दी–साहित्य में प्रचारित हुई है। अपने विकास–क्रम में ही गोरख की इस वचन–भंगिमा को, शब्द–रूपान्तर से कबीर ने अपनाया है।[३८] अतः गोरख–वाणी के प्रतिपाद्य के साथ, गोरख की प्रतिपादन शैली 'उलटी चर्चा' की संक्षिप्त चर्चा यहाँ अपेक्षित है। वास्तव में निगम–परम्परा से भिन्न मार्ग अपनाने, साधना–रहस्यों को प्रतीकों में निहित बनाए रखने एवं लोक की विसंगतियों को उजागर करने के कारण ही शायद गोरख ने उलटवाँसी पद–रचना को अपनाया होगा। इस विपरीत क्रम वाली अपनी 'उल्टी स्थापना' के सम्बन्ध में उनका यह स्पष्ट कथन भी है कि 'गुरु' के अभाव में यह 'निगुरी' पृथ्वी अनास्था के गर्त्त में समा जाती। इसलिए हमने 'ईश्वर' (शिव) को चेला के रूप में और मत्स्येन्द्रनाथ को 'नाती' के रूप में, स्थापित किया है।[३९]

'उलटी चर्चा' अथवा उलटवाँसी पद–रचना के समान ही तब राजस्थान में 'हियाली' संज्ञक रचनाएँ होती थीं। बुद्धि–परीक्षा के रूप में 'हियाली' को 'पहेली' के समकक्ष काव्य शैली माना गया है। इस शैली का प्रयोग, १२–१३वीं शती के राजस्थानी जैन–साहित्य में सम्यक् रूप से देखने को मिलता है।[४०] इन हियाली–संज्ञक रचनाओं में 'आड़िये', 'गूढ़ा', 'सउस्तरा', 'अन्तर्लापिका' एवं 'बहिर्लापिका' आदि कई रूप तब प्रचलित थे। हिमयालियों की रचनाओं के लिए तब राजस्थानी हिन्दी में धर्मसी (धर्मवर्द्धन) एवं समयसुन्दर (१७वीं शती) के नाम उल्लेखनीय है। गोरख–बानी में भी 'हियाली' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में देखने को मिलता है–

'भणत गोरषनाथ मछिंद्र नां पूता। मार्‌यौ मृगभया अवधूता।।
माहि हियाली जे कोई बूझै। ता जोगी कौ तृभुवन सूझै।।
–पद २६

जीवन क्रम में अनुभवों को ओर अधिक प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए ही गोरख ने 'वाणी' (क्रियाओं के

विरोधी तेवर या विसंगतिपूर्ण योजनाओं के साथ) के पलटने की बात अर्थात् लोक प्रचलित क्रम को विपरीत क्रम से प्रस्तुत करने की बात कही है।[४१] अव्यक्त को व्यक्त करना, अरूप–सूक्ष्म को रूप देना ही तो कलाभिव्यक्ति का उद्देश्य माना गया है। क्योंकि, जो अनुभवगम्य है वह यथावत् अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। वैसे भी, 'वाणी' (बैखरी वाणी) की गति से 'मन' की गति–व्याप्ति असीम मानी गई है।[४२] वाणी की ऐसी असामर्थ्य के कारण ही तो 'ब्रह्मानुभूति' को अनिर्वचनीय कहा गया है। वास्तव में कवि को अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति में उतनी कठिनाई नहीं होती, जितनी कि साधक कवि को। क्योंकि, साधक की मानसिक परिस्थिति, साधनानुभूति की सूक्ष्मता एवं गहनता के कारण भिन्न प्रकार की रहती है। इसीलिए वह बैखरी भाषा के उपादानों से अपनी सत्वमय अनुभूति को निरूपित करने में कठिनाई का अनुभव करता रहा है। क्योंकि, वह अनुभव में आई 'पर' जगत् की जागतिकता को, 'अपर' जगत् के उपादानों द्वारा व्यक्त करता है। अपनी अन्तर्मुखी चेतना में जब साधक रचनाकार विषय–गोचरता की विविधता को परखता है, तो वह अपनी इन्द्रियों की हिंसित हुई वृत्ति का भी अनुभव करता है। अन्यथा वह बाह्य विषयों की दृश्य गोचरता में निरन्तर आत्मसाक्षात्कार का भी अनुभव करता ही है। वैसे, कोई–कोई साधक शूरवीर तो उस 'प्रत्यगात्मा' का साक्षात्कार करता ही है।[४३] बुद्धिजीवी ज्ञान के प्रसाद से, विशुद्ध चित्त होकर ऋषित्व अथवा मनीषित्व को प्राप्त कर लेता है। तब उसकी अनुभूति 'अनुभव केरी सरकरा' या 'गूंगे का गुड़' होकर, सारे लोक के सुख को 'स्वान्तः सुखाय' की भूमिका में अनुभव करने लगता है।[४४] तब साधक रचनाकार भाषा के प्रतीक–रूपकों का सहारा लेने के साथ–साथ वक्रोक्तियों–विरोधात्मक उक्तियों में विधि एवं प्रकृति विरोधी स्वभाव के प्रतीकों की संयोजना वाली अभिव्यक्ति में अपने अनुभव को तुष्ट करने का प्रयत्न करता है। तब उसकी उक्तियाँ अनुभव–सागर की गहराई एवं व्यापकता की थाह–सी लेती जान पड़ती हैं। आचार्य शंकर ने शायद ऐसी सूक्ष्मानुभूति की दशा में 'मौन व्याख्यान' द्वारा ही वृद्ध शिष्यों के, युवा गुरु द्वारा सम्पूर्ण संशय उच्छेद करनी की बात कही है।[४५]

गोरखनाथ भी साधना–मार्ग के समर्थ साधक रचनाकार हैं। वे जब कहते हैं कि 'कुएं' का 'पानी' (घट–कलशों में भर कर) 'नगर' में तो जाता ही है, नगर का पानी 'कुई' में भी आता है! 'अर्थात् सागर'विश्वात्मा का बोध बिन्दु जीवात्मा में अथवा नगर (विश्व) की व्याप्ति कुई–चेतना की गहराई में भी समाहित होती है। ऐसी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए ही गोरख ने 'उलटी चर्चा' शैली में पद–ज्ञान किया है।[४६] इसी चर्चा क्रम में उन्होंने 'ईश्वर' को शिष्य और मत्स्येन्द्र को 'नाती' बताया है। अर्थात् ब्रह्मानुभूति में ब्रह्म पदस्थ गोरख के लिए 'ईश्वर' (महादेव), ब्रह्म के शिष्य ही हुए और उसी अनुगामी क्रम में मत्स्येन्द्र, ब्रह्म–गोरख, के 'नाती' कहलाए। वास्तव में लोक–रीति की 'भेड़चाल' भागे जा रहे लोगों को ऐसी विपरीत क्रम वाली चमत्कार भरी वाणी ही लोक–चेतना को रोक कर, अपनी बात समझाने के लिए विवश कर सकती है। ऐसी रचना में प्रतीकों एवं क्रियापदों की ऐसी विपरीत मुखी वृत्ति का विशेष सहारा लिया जाता है। ऐसी वाणी में प्रयुक्त प्रतीक, चिन्तन रूप 'प्रस्तुत' के लिए अभिव्यक्ति रूप 'अप्रस्तुत' का काम करते हैं। गोरख–बानी में प्रयुक्त प्रतीक दो प्रकार के कहे जा सकते हैं– १. पारिभाषिक प्रतीक–शब्द, २. सांकेतिक प्रतीक–शब्द।

पारिभाषिक प्रतीक शब्दावली: सम्प्रदाय विशेष की मान्यता अथवा व्यवहार में रूढ़ होने के कारण ऐसी शब्दावली को शास्त्रीय, रूढ़ अथवा पारिभाषिक कहा जा सकता है। किन्तु, सांकेतिक प्रतीक, शब्दावली में वैसी प्रयोग रूढ़ि देखने को नहीं मिलती। यद्यपि, सांकेतिक प्रतीकों में भी प्रयोग–परम्परा का प्रभाव देखने को मिलता है। पर, सांकेतिक प्रतीकों के प्रयोगों में प्रयोक्ता का रचना–व्यक्तित्व ही अधिक प्रतिबिम्बित रहता है। गुण–क्रियादि के आधार पर, वर्ण्य विषय का संकेत प्रदान करने में प्रयोक्ता अपने सुपरिचित संसार से ही सांकेतिक प्रतीकों का चयन करता है। सांकेतिक प्रतीक चयन में उसकी कल्पना का भी विशेष योग रहता है। इसीलिए सांकेतिक प्रतीकों में प्रयोक्ता की प्रतिभा और मौलिकता भी देखने को मिलती है। सांकेतिक प्रतीकों में जहाँ एक ही अर्थ का निर्धारण निश्चित नहीं रहता। वहीं, पारिभाषिक प्रतीकों में सम्प्रदाय विशेष में रूढ़–अर्थ प्रायः निश्चित रहता है। सांकेतिक प्रतीकों के

द्वारा रचनाकार प्रत्यक्ष और पर–प्रत्यक्ष अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है। ऐसे सांकेतिक प्रतीकों के प्रयोग में गोरख नाथ ने 'प्रस्तुत' के साम्य एवं औपम्य का विशेष ध्यान रखा है। इसीलिए सांकेतिक प्रतीकों में उन्होंने आदि वर्ण साम्य, धर्म साम्य, क्रिया साम्य, लिंग साम्य, रूपक साम्य, संख्या साम्य अथवा रूढ़ि साम्य का भी विशेष ध्यान रखा है। गोरख द्वारा प्रयुक्त रूढ़ पारिभाषिक शब्दावली में हठयोग के प्रचलित शब्दों की बहुलता है। इन शब्दों के अर्थ, रूढ़–अर्थ से हट कर, एक सीमा से बाहर जाकर अर्थ की संभावना प्रकट नहीं कर पाते। ऐसी शब्दावली सहजयानी बौद्ध–सिद्धों की रचनाओं में से होते हुए नाथ योगियों की रचनाओं में आकर भी अपनी रूढ़िता को प्रायः यथावत् बनाए रहे हैं। ऐसे शब्द प्रायः साधनमाला, प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि, अद्वयव्रज, हेवज्रतन्त्र, शिव संहिता, घेरण्ड संहिता, हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष पद्धति, महार्थ मंजरी, तन्त्रालोकादि में अपने अर्थ की निश्चित अवधारणा बना चुके थे। ऐसे अजपाजाप, अनहदनाद, अरध–उरध, अवधू, औधा कुआँ, त्रिवेणी संगम, नाद बिन्दु संयोगादि के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन हो चुका है।[४७]

पारिभाषिक शब्दावली के समान ही गोरख–बानी के उलटी–चर्चा विषयक पदों में प्रयुक्त सांकेतिक शब्दों का चयन–क्षेत्र एवं व्यंजना–व्यापार समझना भी कम महत्व का नहीं है। प्रायः ये सभी सांकेतिक प्रतीक शब्द जीवन के अति परिचित परिवेश से ही चुने गए हैं। उदाहरण के लिए अंगीठी, अबिला, ऊँट, काँटा, कागा, कोइल, खाट, खेत, गावड़ी, गरूड़, चोर, चंदवा, चातक, दीपक, पीपल आदि ऐसे ही अनेक सांकेतिक प्रतीक शब्द हैं,[४८] जिनका बहुतायत से गोरख–बानी में प्रयोग मिलता है। अब यहाँ 'उलटी चर्चा' शैली में रचित गोरख के एक–दो पद–प्रयोगों की चर्चा आवश्यक है, जिनमें प्रतीक संकेतों की विसंगति पूर्ण योजना को देखा जा सकता है। मुझे लगता है कि कथनों की असम्बद्ध–विरोधमुखी प्रस्तुति एवं उन प्रतीकों की दुरूहता में सेंध न लगा पाने के कारण ही वैसी वाणी को 'गोरख–धन्धा' नाम दे दिया गया होगा, जिसका सिर–पैरं समझ में न आए। वास्तव में गोरख–वाणी की मूल प्रकृति को समझे बिना और उनके योग की साधनात्मक–सामाजिक परिस्थितियों को जाने बिना इन प्रतीकों की तह में जा पाना कठिन ही है। गोरख–युग की परिस्थितियों को जानने के लिए तत्कालीन भाषा–काव्य और

उनके स्रोतों को परखना भी आवश्यक है। वास्तव में तद्‌युगीन 'वाणी' के 'टैक्सच्यूल क्रिटिसिज्म' और अर्थ–सन्धान का तो हिन्दी–समीक्षा में अभाव ही रहा है। सन्त–साहित्य की मूल वाणियों को पढ़ते हुए मुझे लगता रहा है कि बानी–काव्यों में तत्कालीन समाज के साहित्य–साधना में आश्वस्त आम आदमी के भीतर काव्य–तत्वों के संस्कार विद्यमान थे। आम–आदमी के भीतर ऐसे संस्कारों की शोध को लेकर हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य को बहुत कम निरखा परखा गया है। कारण स्पष्ट है कि दरबारी संस्कृति और उनमें पोषित कवि–कलाकारों की 'रचना' को, आचार्यत्व से निसृत सिद्धान्तों के आलोक में, समीक्षक–व्याख्याकार के दायित्व का निर्वाह करना ही कृति आलोचकों द्वारा अपने कर्तव्य–कर्म की 'इति श्री' माना जाता रहा है। अब पुनः 'माटी' में रचे–बसे वाणी–काव्यों की अमोघ शक्ति को समाज–सन्दर्भ में पहचानने का समय आ गया है जिससे. गोरख जैसे जन–रचनाकारों की अपनी काव्य–कसौटी को पहचान कर उनकी अपने वाणी में निहित प्रतिमानों की शोध हो सकेगी। इसके लिए गोरख की तरह भारी दायित्व का पर्वत अपने सिर पर उठाना पड़ेगा। तभी वाणी–नाद में 'बिन्दु' गर्जेगा और तभी शताब्दियों से व्याप्त गहन 'अमावस्या' के घर पूर्णिमा–चन्द्र के झिलमिलाने का सुयोग बन सकेगा।'[१] आत्म–बोध जागरण की मानसिकता में 'उलटी चर्चा' शैली में रचा गया गोरख का एक पद देखिए–

'चली रे अबिला कोईल मोरी। धरती उलटि गगन कूं दौरी।।

गईयां बपड़ी सिंघ नै घैरै। मृतक पसू सूद्र कूं उचरै।।

काटे ससत्र पूजै देव। भूप करै करसा की सेव।।

तलि करि ढकणी उपरि करि झाल। न छीजैगा महारस बंचैगा काल।।

दीपक बालि उजाला कीया। गोरख के सिरि परबत दीया।।'

– पद ५६

इस पद का अविद्या में अर्थ करें तो कह सकते हैं कि 'अरे ओ आम्र वृक्ष, तू लच कर देख कि कोकिला मंजरीयुक्त हो गई है।' यही नहीं, 'पृथ्वी (अपनी स्वभाव के विरुद्ध) आकाश

की ओर दौड़ लगाने लगी है। अब तक विचारी (निरुपाय) बनी हुई गायों ने अब सिंह को घेर लिया है। मृतक पशु भी अब 'शूद्र' शासक का (तर्जनी से) वर्जन कर रहा है। शस्त्र (शास्त्र) अब स्वयं कट रहा है। देवता अब (आत्मदेव को) पूज रहा है। राजा (जो प्रजा की सेवा कराता था) अब प्रजा की सेवा में प्रवृत्त हो गया है। (सावधानी पूर्वक साधक जीवन की रहनी में( 'ढकनी' नीचे और झाल (लौ, लपट) उर्ध्वमुखी करनी चाहिये। ऐसा करने से (जीवन का) अमृत निःशेष नहीं हो पाता और काल (सीमा में) स्वयं ही वंचित बना रहता है। इस प्रकार गोरख ने स्वयं दीपक प्रज्वलित किया है, जिसका प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। (भगीरथ प्रयत्न के रूप में ऐसा करके) गोरख ने स्वयं अपने शीश पर पर्वत ही उठा लिया है।'

उक्त पद में प्रयोक्त का तात्पर्य समझने में प्रतीकों की व्यंजना–शक्ति और उसकी संभावना को सीमित करके नहीं देखा जा सकता। प्रतीक–संकेतों के सहारे ही अर्थ–सागर को थोड़ा–बहुत थाहा जा सकता है। ऐसी साधना–नुभूति की असीमता अथवा विचार की प्रखरता में हुई अभिव्यक्ति को सन्त–वाणी में 'ज्ञान–विरह' अथवा 'भाव–विरह' कहा गया है। ऐसी अनुभूति, जन–सामान्य के सोच का व्यतिक्रम करती हुई अनुभव की असीमता में समाहित हो जाती है। वैसी मानसिकता में साधक कवि को लोक–व्यवहार की समूची व्यवस्था विसंगतिपूर्ण लगने लगती है। उस भाव–बोधमयी मानसिकता का अनुमान करते हुए उक्त पद की व्यंजना का अवगाहन कुछ इस प्रकार किया जा सकता है– 'तन्मयावस्था वाली वसन्त ऋतु में बौराई हुई आम्र मंजरियों को देखकर अन्तर्मुखी मस्ती में मंजरित कोकिला रूप मनसा कूकने लगती है। यह 'कूकना' उसका आन्तरिक नाद से उत्प्रेरित होना है। विचार–दशा की आनन्दमय अनुभूति में भी, ज्ञान–प्रसाद से साधक की चित्तवृत्ति अन्तःसत्व में निमग्न होकर आप्लावित बनी रहती है। तब वह मनसा (चेतना), स्व–आनन्द के कारण, बाह्याकर्षण रूप मंजरित आमों की ओर न दौड़कर, स्वयं में ही समतानन्द की सुगन्धि में तन्मय बनी रहती है। 'मनसा' का यह आनन्दित स्वभाव ही 'कोकिला का मंजरित होना' है। तब मन रूप आम्र वृक्ष की विकल्पात्मक वृत्तियां भी, अन्तर्मुखी होने के कारण, समता सुख का अनुभव पाने के लिए उत्सुक दिखाई

देती है। इसीलिए तब 'धरती' रूप मूलाधारिता कुण्डलिनी, 'गगन' रूप ब्रह्मरन्ध्र की ओर अथवा भूमा-सत्ता को अपनी चेतना में समाहित करते हुए, शरीर की भौतिक शक्तियाँ भी, आकाश की व्याप्ति और निसंगता की ओर अग्रसर होने लगती है। तब वह अहंकारी मन, जो अन्य इन्द्रियों को अपने आधीन बनाए रखकर 'सिंह वृत्ति' पूर्वक बाहर ही बाहर घूमा करता था, विवेकानुशासित होकर साधना जन्य मानसिकता में, सात्विका बोध-वृत्ति रूप गायों के द्वारा परिसीमित बना रहता है। यही गायों द्वारा सिंह का घेरा जाना है।

यही नहीं, शैव विचारधारा में साधना विमुख जीव 'पशु' कोटि के माने जाते हैं। ये ही पशु-जीव यमराज के द्वारा मौत के घाट उतारे जाते हैं। अर्थात् इनको निरन्तर मृत्यु-भय बना रहता है। साधना-विचारोभ्यास से जीवन-मुक्ति दशा में 'मरजीवा' होकर मृत्यु (भय) की सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं। अर्थात् शरीर-निपात का भय ऐसे संकल्पी विचारकों को नहीं सताता। यही मृतक (जीव, मरजीवा जीवात्मा) द्वारा शूद्र रूप यमराज को वर्जन करने-कराने की अनुभूति है। विचार की ऐसी अग्निमयी ओजस्वी अवस्था में किसी देवता विशेष की पूजा अपेक्षित नहीं रहती। यही नहीं, सीमित शक्तियों वाले देवता ऐसे विचारक की पूजा में निरत दिखाई देने लगते हैं। वैसी, ऊष्मामयी सात्विक 'रहनि' में राग-द्वेष के सारे बन्धन शिथिल दिखाई देने लगते हैं। अर्थात् वैसी विचाराग्नि में सभी प्रकार के विकल्प-कल्मष भस्मीभूत होते जान पड़ते है। तब कारण या साधन रूप शस्त्र (शास्त्र) स्वयं ही प्रभावहीन होकर, कट कर पड़े हुए दिखाई देते हैं। तब शम-समता भाव की मानसिकता वाला राजा रूप मन प्रजा मनसा अथवा अनुगामी की सेवा में स्वयमेव निरत हो जाता है। अर्थात् मन सात्विक वृत्तियों के अधीन होकर कार्य करने लगता है। शरीर रुप राज्य या राष्ट्र में इससे अधिक समता वाला प्रभावशाली प्रजातंत्र और क्या हो सकता है? कुण्डलिनी जागरण-काल में साधक को जो शीर्षासनादि करने में शिरोभाग रूप ढकनी को नीचे (अधस्थ) करनां पड़ता है। अर्थात् लोक-आसामान्य को सामान्य करना पड़ता है। योग के इस विपरीत करणी मुद्रा से 'महारस' रूप अमृत क्षय को प्राप्त नहीं होता। अर्थात् समता-विचार-भावना कभी शिथिल नहीं होती।

वैसी चेतना में मरण के भय का सीमित (अल्प) बने रहना स्वांभाविक ही है। क्योंकि, अल्प हमेशा सीमित अथवा 'मृत्यु' (रूप) ही होता है। और जो असीम–भूमा (वर्तमान) होता है, वही चेतना का अमृत या अमरता–भाव होता है। गोरख ने ऐसे ही विचार (ज्योति) दीपक को प्रज्वलित किया है। ऐसा करना सर्वसामान्य की चेतना में संवाहित कर पाने के रुप में, दुष्कर या दुर्वह होने के कारण, पर्वत उठाने के समान कठिन है। इस प्रकार गोरख की 'उलटी चर्चा' में निहित विरोधाभासों के अटपटेपन को, प्रयुक्त प्रतीक–संकेतों की सन्धि से प्राप्त करना, भाषा की अभिसंधियों को उद्‌घाटित करने के समान ही हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आज गोरख–बानी ही नहीं, समूचे वाणी–साहित्य के 'टैक्शचर' की व्याख्या–समीक्षा के पुनर्मूल्यांकन की महती आवश्यकता है।

डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र
रीडर, हिन्दी विभा,
आर.एल.ऐ.सी
दिल्ली विश्वविद्यालय

## सदंर्भ

1 गोरखनाथ 'नाथपंथ' का मूल भी बौद्धों की यही वज्रयानी शाखा है। चौरासी के सिद्धों में गोरखनाथ (गोरक्षपा) भी गिन लिए गए हैं। पर यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपना मार्ग अलग कर लिया। ..... गोरख ने पतंजलि के उच्च लक्ष्य, ईश्वर-प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया। वज्रयानी सिद्धों का लीला-क्षेत्र भारत का पूरबी भाग था। गोरख ने अपने पंथ का प्रचार देश के पश्चिमी भागों में - राजपूताने और पंजाब में किया। गोरखनाथ के समय का ठीक पता नहीं। राहुल सांकृत्यायन जी ने वज्रयानी सिद्धों की परंपरा के बीच उनका जो स्थान रखा है, उसके अनुसार उनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी आता है। '-हि. सा.इति, संस्क. 11 वा, पृ.13

2 हि. सा. इति. पृ. 20

3 गोरखबानी भूमिका, पृ. 15-16

4 वही पृ. 10

5 गो. सि. सं. 24/13

6 दे. - हमारी हिन्दी और भाषा परिवार, पृ. 38

7 दे. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 13

8 दे. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 104

9 दे. हि. सा. आ. इति, पृ.107

10 दे. हिन्दी शब्दानुशासन, पृ. 12

11 दे. पुरातत्व निबन्धवली, पृ. 161

12 दे. गोरखनाथ और उनका युग, पृ. 29

13 दे. नाथ सम्प्रदाय, पृ. 108

14 दे. गोरख-बानी, भूमिका, पृ. 30

15. दे. शास्त्रीय मराठी व्याकरण, मोरा केशव दामले, पृ. 238

16. उन्हें मुसलमानों को भी अपनी बानी सुनानी रहती थी, जिनकी बोली अधिकतर दिल्ली के आसपास की खड़ी बोली थी। इससे उसका मेल भी उनकी बानियों में रहता था। इस प्रकार नाथ पंथ के इन जोगियों ने परंपरागत साहित्य की भाषा या काव्य भाषा से, जिसका ढांचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक सधुक्कड़ी भाषा का सहारा लिया, जिसका ढांचा कुछ खड़ी बोली

लिए राजस्थानी था। गोरख के समय जो भाषा लिखने पढ़ने में व्यवहृत होती थी, उसमें प्राकृत या अपभ्रंश शब्दों का थोड़ा बहुत मेल अवश्य रहता था। पुरानी हिन्दी की व्यापक काव्य भाषा का ढांचा शौर सेनीप्रसूत अपभ्रंश अर्थात् ब्रज और खड़ी बोली (पश्चिमी हिंदी) का था।'

- हि.सा.इति., पृ. 17-19

17. गौडाद्याः संस्कृतस्थाः परिचितरुचयः प्राकृते लाटदेश्याः
सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च।
आवन्त्याः पारियात्रः सह दशपुरजैर्भूत भाषा भजन्ते
यो मध्ये मध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्ण।' -काव्यमीमांसा, अध्या 10

18. 'नाथ परंपरा में इनके कर्ता प्रसिद्ध गोरखनाथ से भिन्न नहीं समझे जाते। ये रचनाएं ऐसी हमें उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसी ही उस समय की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु, इनमें भी प्राचीनता के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि संभवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती में हुआ हो।'
-गो.बा.भूमिका, पृ. 20

19. हि.सा.बृ.इति0 प्रथम, पृ. 406.

20. क) जिस प्रकार की सामाजिक साम्प्रदायिक दृष्टि ज्ञानाश्रयी निर्गुण मार्गी संतों की तथा नाथ सिद्धों की थी, प्रायः उसी प्रकार की दृष्टि बौद्ध सिद्धों या तान्त्रिक बौद्ध सिद्धों की थी। भक्तिकाल की निर्गुण धारा का विवेचन करते समय प्रायः सभी साहित्येतिहासकारों ने बौद्ध सिद्ध साहित्य तथा नाथ सिद्ध साहित्य का विवेचन किया है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि बौद्ध सिद्धों के समाज, धर्म, साधना, दर्शन सम्बन्धी दृष्टिकोणों का विकास नाथ सिद्धों में हुआ तथा उनके माध्यम से यह सम्पत्ति निर्गुण मार्गी सन्तों को मिली।' - नाथ और संत साहित्य, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ. 18
ख) - पुरातत्व निबन्धावली, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 18.
ग) - योग प्रवाह, पृ. 217.

21. - उत्तर भारत की संत परंपरा, पृ. 57

22. 'नाथ संप्रदाय में भी शास्त्री विद्वान् नहीं आते थे। इस संप्रदाय के कनफटे रमते योगी घट के भीतर के चक्रों, सहस्रदल कमल, इला-पिंगला नाड़ियों इत्यादि की ओर संकेत करने वाली रहस्यमयी बानियां सुनाकर अपनी सिद्धाई की धाक जनता पर जमाए हुए थे।' -हि.सा. इतिहास, पृ. 57

23. नाथ संप्रदाय पृ. 199

24. योगियों की इस हिंदू शाखा ने वज्रयानियों के अश्लील और वीभत्स विधानों से अपने को अलग रखा। — नाथ संप्रदाय के सिद्धांत ग्रंथों में ईश्वरोपासना के बाह्य विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई, घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है, वेद शास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है, तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गए हैं। -हि.सा.इति. पृ. 13, 15.
'हिंदू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद, जहाँ देहुरा न मसीत।।' - सबदी 68

25. 'थोड़ा बोले थोड़ा पाइ। तिसि घटि पवना रहे समाई।।' -सबदी
'धापै न पाईबा, भूषै न मरिबा, अहि निसि लेबा ब्रह्म अगनि का भेंव। - सबदी 32
'भग मुषि ब्यंद अगनि मुषि पारा। जो राषै सो गुरु हमारा।' -सबदी 142
'भग राकसि लो, भग राकसि लो, बिण दंता जग पाया लो।
मयानी हुता सु म्यांन मुष रहिया, जीव लोक आपै आप गंवाया लो।' -पद 48

26. इस मार्ग में कठोर ब्रह्म धर्म, वाक् संयम, शारीरिक शौच, मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्याचरणों के प्रति अनादर, आंतरिक शुद्धि और मद्य-मांसादि के प्रति पूर्ण बहिष्कार पर जोर दिया है।' - नाथ संप्रदाय, पृ. 227

27. नग्री सोभत बहु जल मूल बिरषा। सभा सोभत पंडिता पुरषा।।
राजा सौभंत दल प्रवाणी। यूं सिधा सोभंत सुधि बुधि की बांणी।।' -सबदी 7
'मूरिष सभा न बैसिबा अवधू, पंडित सौ न करिबा बादं।
राजा संग्रामे झूझ न करिबा, हेलै न षोइबा नादं।।' -सबदी 121

28. एकलो वीर दूसरो धीर, तीसरो षट पट चौथो उपाध।
दस पंच तहा बाद विवाद।
एकंकी सिध नाउं, दोइ रमत ते साधवा।
चारि पंच कुटुम्ब नाउ, दस बीस ते लसकरी।।'' सबदी 178-79.

29. सूरा का पंथ हारया का बिसराम, सुरता लेहु बिचारी।
अपरचै पिंड भिष्या षात है, अति कालि होयगी भारी।।' -सबदी 216

30. 'पढि देषि पंडिता रहि देखि सार। अपणी करणीं उतरिबा पार।।
बदंत गोरषनाथ कहि धू साषी। घटि घटि दीपक पणि पसू न (पेषै) आंषी।।' - सबदी 59

'बेद कतेब न षांणी बाणी, सब ढंकी तलि आणी।
गगनि सिषर महि सबद प्रकास्या, तहं बूझै अलष बिनांणी।।' -सबदी 264
'बूझौ पंडित ब्रह्म ग्यान।' -पद 18
सबद हमारा षरतर पांडा, रहणि हमारी साची।
लेषै लिपी न कागद मांडी, सो पत्री हम बाची।। --सबदी 264

31. 'कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुंण्या सूवा बिलाई षाया, पंडित के हाथि रह गई पोथी।।'
कहणि सुहेली रहणि दुहेली, बिन षाया गुड़ मीठा।
खाई हींग कपूर बषाणै, गोरष कहै सब झूठा।' --सबदी 119-20
'कथणी कथै सो सिष बोलिये, बेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहता का साथी।।'' --सबदी 270

32. 'दासी नैं नारी अरु घरवारी, तम्हें बेस्या न करन कीज्यौ रे।
विधवा नारी नौ संग करेस्यों, तो रोमि रोमि नरक पड़ीस्यौ रे।।
एक बूंदि के कारणि आप सवारथि, तम्हें बाल हत्या फल लेस्यों रे।
नर नारी दोन्यूं नरकि पड़िस्यौ, षाणी घालि पड़ेस्यौं रे।। -पद 55

33. अवधू ईश्वर हमारै चेला भणींजै, मछींद्र बोलिये नाती।
निगुरी पिरथी परलै जाती, तार्थै हम उलटी थापना थापी।।' --सबदी 144

34. बड़े बड़े कूले मोटे मोटे पेट। नहीं रे पूता गुरू सों भेंट। -सबदी 109
सांच का सबद सोना का रेख। निगुरां को चाणक सगुरा कौं उपदेश।।
गुर का मुंडिया गुण में रहे। निगुरा भ्रमै औगुण गहै।। --सबदी 149
गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला,
गुर बिन ज्ञान पायला रे भाईला।' -पद 34
गुर देव स्यंन देव सरीर भींतरियै।
आत्मां उत्तिम देव, ताही की न जाणौं सेव, आनदेव पूजि पूजि गरियै।। -पद 9
रहता हमारै गुरु बोलिए हम रहता का चेला।' --सबदी 271

35. 'पावड़िया पग फिसले अवधू, लोहै छीजत काया।
नागा मूनी दूधाधारी, एता जोग न पाया।।
दूधाधारी परधरि चित, नागा लकड़ी चाहै नित।
मौनी करै म्यौत्र की आस, बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसाय।।' --सबदी 39-40
'रांड मुवा जती, धापै भोजन सती, धन त्यागी।
नाथ कहै ये तीन्यौं अभागी।। --सबदी 247

36. बाकर कूकर किकर हाथ। बाली भोली तरणीं साथ।।
दिन कर भिष्या रात्यूं भोग। चरपट कहै बिगोवै जोग।।
पहरि मूंदड़ी कंकन हाथि। नकटी बूची जोगणि साथि।।
जटा बिटंबन आंगै छार। मोटी कंथा बहु बिस्तार।।
बिचित्र बानी अंगा चंगा। बंटवा सीवै बहु विध रंगा।।
डड कमंडल भगवां भेस। पाथर पूजा बहु उपदेस।।
सांधु कहावै भूगते भग। ता का काला मुष बीला पग।।
कूटै चमड़ी धरै धियान। ता पसुवा में कहा गियान।।
मन नही मूडै मूडे केस। केसां मूंड्या क्या उपदेस।।
जउलउ नहीं चीन्है उलटि घाटा। तब चरपट सगले स्वांग नटा।।' -ना.सि.बा., पृ25-34

37. साषी गोरखनाथ ज्यूं, अमर भये कलि माहि। -क.ग्रं., 29/12
गोरख अटके कालपुर, कौन बतावै राह।' -कबीर बीजक,

38. 'दि एनिगमाज़ ऑफ चर्या-सोंग्स ऑफ कबीर एण्ड सुन्दरदास आर सब्सटेंसिअली ऑफ दि सेम नेचर एज़ आर फाउंड इन रूरल एरियाज आफ बंगाल ईविन एट दि प्रजेंट डे। दि सन्ध्या भाषा ऑर दि सन्धा भाषा दस विकम्स एन आल इण्डियन लिटरेरी टैकनीक फॉर गिविंग एक्सप्रेशन टू ऐसोटेरिक डाक्ट्रिन्स, एण्ड ऐज वी हैव सैड, इट हैज उन अनब्रोकिन हिस्ट्री फॉर सैंचुरीज़।' - ऑब्सक्यौर रिलीजस कल्ट्स, पेज 424

39. - गो.बा. -सबदी 144

40. 'जैन कवियों ने हियाली संज्ञक ऐसी बहुत सी रचनाएं की है, जो बड़ी ही समस्या मूलक होती हैं। 'हियाली' शब्द का सबसे प्राचीन उल्लेख भाषा के 'वजालग्ग' ग्रन्थ में देखने को मिलता है। उसमें दी हुई हियालियों से परवर्ती राजस्थानी भाषा की हियालियां कुछ भिन्न प्रकार की हैं। इससे हमें हियालीके स्वरूप विकास की जानकारी मिलती हैL कवि समय सुन्दर ने, 'नल दमयन्ती' चौपाई में, नव दम्पती के रात्रि के समय

विनोद वार्ता करने के प्रसंग में कहा है-
कबहि चौबील कहै दूहा गूढ़ा छंद। हियाली हू से कहै अहि निशि करै अनंद।।
प्राचीन कवियों की रूप परम्परा, पृ. 147
41. 'असाध साधत गगन गाजत, उनमनी लागंत ताली।
उलटंत पवन पलटंत बाणी, अपीव पीवंत जे ब्रह्म ग्यांनी।' -सबदी 70
41. शत - ब्रा. 1/4/4/6 । तै. उप., 2/4/1
43. '-कठोप. 2/1/1
44. अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै।
परमस्वाद सब ही सुं निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर जो जाने सो पावै।।'
- सूसा., प्रथम पद 2
45. 'चित्रं वट-तरोमूर्ले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्न संशयाः।। ' - दक्षिणामूर्ति स्तोत्रः
'हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हिराई।
समुद समाना बूंद में सो कत हेरया जाई।। '-क.ग्रं., लाणि. 7/4
46. 'नाथ बोलै अमृतं बांणी। बरिषैगी कंबली भीजैगा पांणी।।
ऊजड़ पेड़ा नगर मझारी। तलि गागरि ऊपर पनिहारी।।
नगरी कौ पांणी कूई आवै। उलटी चरचा गोरष गावै।' -पद 47
47. दे. - हिन्दी सन्तों का उलटबांसी साहित्य : पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 136-169.
48. दे. - हिन्दी सन्तों का उलटबांसी साहित्य : प्रतीक योजना, पृ 105-35
49. 'अमावस के घरि झिलमिल चंदा, पूनम के घर सूरं।
नाद के घरि ब्यंद गरजै, बाजंत अनहद तूरं।।' -सबदी 54

# नाथसम्प्रदाय और मलिक मुहम्मद जायसी

डॉ. देवेन्द्र गौतम

मध्यकाल में जिन धर्म–मतों का विशेष प्रचार–प्रसार था उनमें नाथसम्प्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। नाथ–योगियों का समाज में व्यापक प्रभाव था। एक मुसलमान सूफी कवि जायसी ने जितने व्यापक रूप में नाथसम्प्रदाय सम्बन्धी साधना, साधकों इत्यादि का उल्लेख अपने काव्य में किया है उससे भी इस बात की पुष्टि होती है। यद्यपि जायसी का साधना–मार्ग भिन्न था तथापि इन उल्लेखों से ऐसा जान पड़ता है कि वे नाथसम्प्रदाय से प्रभावित थे। विशेष रूप से गोरखनाथ प्रवर्तित साधना मार्ग से। तन्त्र–मन्त्र के पचड़े वाली साधना पद्धति का विरोध करते हुए जायसी ने मन की साधना का समर्थन किया है। पदमावत का नायक रत्नसेन योगी होकर ही पद्मावती की प्राप्ति का प्रयत्न करता है और सफल होता है, लेकिन केवल इसी से यह नहीं माना जा सकता कि जायसी नाथमत से विशेष प्रभावित थे। क्योंकि, नायिका के वियोग में नायक का उसकी प्राप्ति के लिए योगी–रूप धारण कर निकल पड़ना मध्यकालीन कथाओं की रूढ़ि थी। (यद्यपि यह रूढ़ि भी मध्यकालीन समाज में नाथ–योगियों के व्यापक प्रभाव को इंगित करती है।) जायसी के काव्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर अनेक ऐसे प्रसंग या उल्लेख मिलते हैं जिनके आधार पर स्पष्टतः कहा

जा सकता है कि वे नाथसम्प्रदाय से भलीभाँति परिचित थे। नाथ–योगियों के प्रति उनके मन में सम्मान का भाव था। बहुत सम्भावना है यह सूफी फकीर रमते जोगियों के सम्पर्क और सान्निध्य में आया होगा।

नाथसम्प्रदाय के अन्तर्गत अनेक नाथों का उल्लेख मिलता है, लेकिन उनमें गोरखनाथ की स्थिति विशिष्ट है। वे योग के सबसे बड़े आचार्य माने जाते हैं। गोरखनाथ से पूर्व इस मत में तन्त्र–मन्त्र आदि का विशेष जोर था। गोरखनाथ ने इसका परिष्कार करते हुए मन को वश में करने की साधना पर जोर दिया और इस प्रकार इस नाथपंथी साधना में बहुत बड़ा सुधार किया। जायसी के मन में तन्त्र–मन्त्र रहित, मन को वश में करने वाली साधना के प्रवर्तक इन गोरखनाथ के लिए विशेष सम्मान का भाव है। पदमावत में एक स्थान पर गोरखनाथ का स्मरण वे इस रूप में करते हैं–

चीन्है सोइ रहै तेहि खोजा। जस बिक्रम औ राजा भोजा।
कै जियँ तत मंत सो हेरा। गएउ हेराइ जबहि भा मेरा।
बिनु गुरु पंथ न पाइआ भूलै सोइ जो मेंट।
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सों भेंट।।२१२।।

अर्थात् तन्त्र–मन्त्र की साधना द्वारा मिलने पर भी वह खो जाता है। उसकी स्थायी रूप से प्राप्ति तो गोरखनाथ प्रवर्तित साधना पथ से ही होती है।

योग साधना में गोरखनाथ का कितना महत्व था यह इसी से स्पष्ट है कि मध्यकालीन भारतीय योग–परम्परा में वे गुरु के प्रतीक हो गए थे। पदमावत के कुछ स्थलों में 'गोरख' शब्द का प्रयोग इसी रूप में जायसी ने किया है–

१– आइ पेम रस कहा सँदेसू। गोरख मिला मिला उपदेसू।।१८२/२।।

२– बोलीं सबद सहेलीं कान लागि गहि माँथ।
गोरख आइ ठाढ़ भा उठु रे चेला नाथ।।३०३।।

जायसी गोरखनाथ से इतने अधिक प्रभावित थे कि कन्हावत में उन्होंने श्रीकृष्ण के साथ उनके वाद–विवाद का एक पूरा प्रसंग ही कल्पित कर डाला– जब भक्ति का प्रवाह सारे संसार में फैलने लगा और कृष्ण की कीर्ति समुद्र पार कर गई तो इसे सुनकर गोरखनाथ ने अपने शिष्यों सहित मथुरा की ओर प्रस्थान किया और यमुना किनारे अपना डेरा डाल दिया। यह बात जब कृष्ण तक पहुँची तो गोरखनाथ से मिलने के लिए वे दस हजार भक्तों के साथ उनके पास गए। प्रारम्भिक परिचयात्मक बातचीत के बाद गोरखनाथ ने अपने आने का कारण बताते हुए कहा–

सुन देखै इह आयउँ भोगी। तज गृहस्त होहु अब जोगी।

काटु पास सबकै माया। ई उपदेस करे गुरु आया।[1]

जवाब में कृष्ण ने योग–साधना का खण्डन करते हुए गृहस्थ आश्रम में रहकर भक्ति का महत्व प्रतिपादित किया। इस प्रकार तर्क–वितर्क करते हुए दोनों ने अपने–अपने मतों को श्रेष्ठ बताया। अन्त में हार–जीत के निर्णय के लिए दोनों ने परस्पर मार करने का निश्चय किया और दोनों ने अपने–अपने हथियार निकाल लिए–

आवहु दुँह मिलि कीजै मारी। जो रे मरै ताही कै हारी।

सुनि के काढ़ी कन्ह निराजी। गोरख आपुन गुप्ती साजी।३४६/३–४।

लेकिन दोनों ही एक–दूसरे का कुछ भी बिगाड़ नहीं सके। और निष्कर्ष स्वरूप जायसी ने यह प्रतिपादित किया कि–

जोगी केर जोग भल भोगी कर भल भोग।।३५०।।

अर्थात् सच्चे और पवित्र मन से साधना की जाय तो ईश्वराराधन के सभी मत, मार्ग या सिद्धान्त श्रेष्ठ हैं।

सामान्यतः इसे काल–विपर्यय दोष माना जायेगा, लेकिन ऐसा कहने से पूर्व हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मध्यकाल में सिद्ध–योगियों के सम्बन्ध में ऐसी लोकधारणा थी कि वे दैवी शक्ति से विभूषित होते हैं और इसलिए काल एवं स्थान की सीमाओं से परे होते हैं। फिर, गोरखनाथ तो सबसे बड़े योगी के रुप

में मान्य थे। जायसी ने इसी प्रसंग में स्वयं गोरखनाथ के मुख से कहलवाया है कि योग मार्ग को अपनाने वाला योगी इस शरीर से अमर हो जाता है। वह युग–युग तक जीवित रहता है–

जग मँह जोग भला जो कीजै।

जिंह हुत बहुत बरख ल हि जीजै।

अस काया सो अम्मर होई।

जुग जुग ताईं जीवै सोई।३४५/५–६।

क्रुक्स ने एक ऐसी ही परम्परागत मान्यता का उल्लेख किया है जिसमें गोरखनाथ को प्रत्येक युग में उपस्थित माना जाता है। इसे ग्रियर्सन ने भी उद्धृत किया है। इसमें कहा गया है कि गोरक्षनाथ सत्ययुग में पंजाब के पेशावर में, त्रेता में गोरखपुर में, द्वापर में द्वारका के भी आगे हुरभुज में और कलिकाल में काठियावाड़ की गोरखमढ़ी में प्रादुर्भूत हुए थे।[२]

गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ थे। इनका उल्लेख भी पदमावत में जायसी ने किया है–

लीन्हें सि धँसि सुवाँस मन मारे। गुरु मछिंदरनाथ सँभारे।२३८/४।

भरथरी की लोकगाथा सारंगी बजाकर भिक्षा माँगने वाले जोगियों द्वारा आज भी गाँवों में सुनी जा सकती है। भरथरी का उल्लेख पदमावत में कई बार आया है। भरथरी कौन थे, इस सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। श्रृंगार, नीति और वैराग्य शतकों की रचना करने वाले भर्तृहरि से लोकगाथाओं में वर्णित नाथ सम्प्रदाय से सम्बद्ध ये भर्तृहरि भिन्न थे या दोनों एक ही हैं इसका निर्णय आसान नहीं है। यद्यपि दोनों का सम्बन्ध उज्जैन से जोड़ा जाता है, लेकिन शतकत्रय के रचनाकार महाराज भर्तृहरि का समय छठी शताब्दी है। जबकि लोकगाथाओं में वर्णित भरथरी का सम्बन्ध गोरखनाथ से जुड़ता है।

हिन्दी साहित्य कोश में दोनों को भिन्न माना गया है। वहाँ नाथसम्प्रदाय से सम्बद्ध भर्तृहरि का समय तेरहवीं शताब्दी निर्धारित किया गया है। भर्तृहरि सम्बधी टिप्पणी के लेखक श्री

योगेन्द्र प्रताप सिंह का मानना है कि "ऐसा जान पड़ता है कि छठी शताब्दी के महाराजा भर्तृहरि से सम्बद्ध लोककथाओं तथा लोकगीतों में वर्णित उनका चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व तेरहवीं शताब्दी के सिद्ध भर्तृहरि के व्यक्तित्व में घुलमिल गया, जिससे दोनों को अलग कर सकना प्रायः असम्भव हो गया है।[३] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी दोनों को भिन्न मानते हुए लिखते हैं– "परन्तु इसी (शृंगार, नीति, एवं वैराग्यशतक के रचयिता) भर्तृहरि से गोरखनाथ के उस शिष्य भर्तृहरि को जो दसवीं शताब्दी के अन्त में हुए होंगे, अभिन्न समझना ठीक नहीं है।....... मेरा इस विषय में यह विचार है कि भर्तृहरि दो हुए हैं, एक तो 'वैराग्यशतक' वाले और दूसरे उज्जैन राजा जो अन्त में जाकर गोरक्ष के शिष्य हुए थे। भर्तृहरि का वैराग्य–मत गोरक्ष द्वारा अनुमोदित हुआ और बाद में परवर्ती भर्तृहरि के नाम से चल पड़ा।"[४] लेकिन हिन्दी शब्दसागर में दोनों को अभिन्न माना गया है।[५]

इनसे सम्बद्ध अनेक कथाएँ भिन्न–भिन्न रूपों में मिलती हैं। हिन्दी साहित्य कोश में श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने 'भरथरी' से सम्बद्ध कथा इस प्रकार दी है– "उज्जैन में राजा इन्द्रसेन राज्य करते थे, जिनके लड़के का नाम चन्द्रसेन था। भरथरी इन्हीं के पुत्र थे। इनकी माता का नाम रूपदेई और स्त्री का नाम सामदेई था, जो सिंहलद्वीप की राजकुमारी थी। विवाह के पश्चात्, जब भरथरी शयनकक्ष में गये, तब अपनी खाट को टूटा पाया तथा इसका कारण अपनी स्त्री से पूछा, जिसका सन्तोषजनक उत्तर वह न दे सकी।..... संसार की झंझटों से ऊबकर भरथरी गुरु गोरखनाथ के चेला बन जाते हैं।"[६]

हिन्दी शब्दसागर में 'भर्तृहरि' सम्बन्धी कथा में अपनी पत्नी की दुश्चरित्रता के कारण संसार से विरक्त होने की बात तो कही गयी है, लेकिन इन्हें उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का छोटा भाई और गंधर्वसेन का दासी पुत्र माना गया है। साथ ही गोरखनाथ के साथ इनके सम्बन्ध का उल्लेख नहीं किया गया। हाँ, योगियों द्वारा सारंगी बजाकर इनके सम्बन्ध के गीत गाकर भीख माँगने की बात अवश्य कही गयी है।"[७]

पदमावत में भरथरी सम्बन्धी जो उल्लेख प्राप्त होते हैं उनको देखने से जान पड़ता है कि जायसी ने भरथरी के सम्बन्ध मैं जो कथा सुनी थी या उस युग में जो कथा प्रचलित थी वह कुछ भिन्न थी। जायसी के अनुसार भरथरी पिंगला नामक स्त्री के वियोग में योगी हो गये थे और उसकी प्राप्ति के लिए कज्जलीवन गये थे। [८] सखी रत्नसेन के सम्बन्ध में पद्मावती से कहती है–

जानहुँ आहि गोपिचँद जोगी।
कै सो भरथरि आहि बियोगी।
वै पिंगला गए कजरी आरन।
यह सिघल दहुँ सो केहि कारन।१६३।६–७।

अन्यत्र रत्नसेन शिवजी से कहता है–

जस भर्तृहरि लागि पिंगला। मो कहँ पदमावति सिंघला।२०८/३।

एक अन्य स्थल पर जायसी ने जिस प्रकार से भरथरी और पिंगला का उल्लेख किया है उससे यह भी पता चलता है कि जायसी ने जो कथा सुनी थी उसमें भरथरी के वियोग में पिंगला ने अपने प्राण दे दिए थे–

भरथ बिछोह पिंगला आहि करत जिय दीन्ह।५६५।

हाँ, जायसी द्वारा संकेतित कथा के नायक भरथरी भी राजा थे। कहाँ के यह उल्लिखित नहीं है–

राजा भरथरि सुनि रे आयानी। जेहि कघर सोरह सै रानी।

कुचन्ह लिहें तरवा सहराई। भा जोगी कोइ साथ न लाई।१३२/४–५।

गोपीचन्द के विषय में कहा जाता है कि ये बंगाल के राजा थे जिनका वास्तविक नाम गोविन्दचन्द्र था। इन्होंने माता के उपदेश से अपनी सुन्दर रानियों और राज्य को छोड़कर वैराग्य लिया था। ये जालन्धरनाथ के शिष्य बताए जाते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इनकी माता मयनावती को जालन्धरीपाव या जालन्धरनाथ की शिष्या मानते हैं। माता के कहने से ही राजा गोपीचन्द ने इनसे दीक्षा ली थी।[८] पदमावत में अनेकशः गोपीचन्द का उल्लेख आया है–

१. गोपीचंद तूँ जीता जोगा। औ भरथरी न पूज बियोगाँ।१६०/२।

२. जानहुँ आहि गोपिचंद जोगी। कै सो भरथरि आहि बियोगी।।१६३/६।

गोपीचन्द जालन्धरनाथ के शिष्य थे, जायसी ने इसे स्वीकार किया है–

मानत भोग गोपीचँद भोगी। लै उपसवा जलंधर जोगी। ३४१/६१

लेकिन अपनी माता मैनावती के उपदेश से राज्य छोड़कर योगी हुए थे, लगता है जायसी इसे नहीं मानते। पद्मावत में गोपीचन्द की माता मैनावती का एक बार उल्लेख हुआ है। कवि ने रत्नसेन की माँ की उपमा गोपीचन्द की माँ से दी है, लेकिन जिस प्रसंग में दी है वह उपर्युक्त मान्यता के विपरीत पड़ता है। रत्नसेन के बिछोह में उसकी माता की दुःख–दशा के वर्णन के प्रसंग में यह उल्लेख इस प्रकार आया है–

रतन सेनि के माइ सुरसती। गोपीचँद जसि मैनावती।

आँधरि बूढ़ि सुतहि दुख रोवा। जोबन रतन कहाँ भुइँ होवा।३६२/१–२।

स्पष्टतः जायसी यहाँ कहना चाहते हैं कि रत्नसेन के चले जाने पर उसकी माता उसी प्रकार दुःख भोग रही है जैसा गोपीचन्द के योगी होकर चले जाने पर उसकी माता मैनावती ने भोगा था। यदि जायसी को यह मान्य होता कि माता के उपदेश से ही गोपीचन्द योगी हुए थे तो इस प्रसंग में और इस रूप में मैनावती का उल्लेख कथमपि न करते।

यही नहीं, इसके पूर्व भी रत्नसेन के योगी होकर सिंहलद्वीप के लिए प्रस्थान करते समय जायसी ने पुत्र को रोकने के लिए उसकी माँ को अनुनय–विनय करते दिखाया है।[६] और उसकी बातों को न मानता हुआ रत्नसेन भोग–विलास की व्यर्थता सिद्ध करते हुए गोपीचन्द का ही उदाहरण देता है, लेकिन उस रूप में नहीं, भिन्न रूप में–

जौं भल होत राज औ भौने। गोपिचन्द कस साधत जोगू।

ओनहूँ सिस्टि जौं देख परेवा। तजा राज कजरी बन सेवा।१३०/६–७।

यह प्रसंग भी उपर्युक्त मान्यता के विपरीत है। स्पष्ट है कि जायसी यह नहीं मानते कि गोपीचन्द अपनी माता मैनावती के उपदेश से योगी हुए थे।

नाथसम्प्रदाय के प्रमुख योगियों की संख्या नौ मानी जाती है। इसी प्रकार सिद्धसम्प्रदाय के प्रमुख योगियो की संख्या चौरासी परम्परा में मान्य है। इनके नामों के सम्बन्ध में मतभेद है। भिन्न–भिन्न सूचियों में भिन्न–भिन्न नाम इनके प्रवर्तक गिनाए गए हैं। वस्तुतः लोक में संख्यावाची यह प्रयोग रूढ़ हो गया है। पदमावत में भी इस प्रकार का प्रयोग जायसी ने किया है–

नगौ नाथ चलि आवहिं औ चौरासी सिद्ध।२६४।

रूढ़ प्रयोग के कारण यहाँ भले ही नव नाथों को नाथसम्प्रदाय से और चौरासी सिद्धों को वज्रयानी सिद्ध–परम्परा से जोड़ लिया जाय, लेकिन अन्यत्र जायसी से 'सिद्ध' प्रयोग वज्रयानी सिद्धों के विशिष्ट अर्थ में न कर सामान्यतः नाथ–योगियों के लिए ही किया है। वस्तुतः जायसी से काफी पहले ही सिद्ध सम्प्रदाय का प्रभाव समाज में कम हो चला था और नाथों का महत्व बढ़ चला था। जायसी के समय में नाथ–योगियों के लिए 'सिद्ध' संज्ञा का प्रयोग समाज में होता था। नाथसम्प्रदाय के अन्य अनेक प्रचलित नामों– योगमार्ग, योगसम्प्रदाय, अवधूत मत आदि के साथ सिद्धमत या सिद्धमार्ग नाम भी मिलता है। 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' नामक पुस्तक में जो इस मत की अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है, के नाम के साथ 'सिद्ध' शब्द का प्रयोग भी इसे प्रमाणित करता है। वस्तुतः तत्कालीन समाज में 'सिद्ध' से तात्पर्य साधना के द्वारा अंलौकिक सिद्धि सम्पन्न और चमत्कारपूर्ण या अतिप्राकृतिक शक्ति प्राप्त व्यक्ति था।

नाथों की परम्परा में प्रथम आदिनाथ माने जाते हैं और आदिनाथ के रूप में स्वयं शिवजी की प्रतिष्ठा है, जो सबसे बड़े योगी माने जाते हैं। इस मान्यता का संकेत पदमावत की निम्नलिखित पंक्ति में द्रष्टव्य है–

संकर ललाट धरा भुइँ औरू को जोगी नाथ।।१६१।।

अर्थात् "शंकर ने भी उसके (सिंहलगढ़) आगे धरती में माथा टेका। उनसे बढ़कर योगियों में नाथ या योगीश्वर कौन है?"

पन्द्रहवीं–सोलहवीं शताब्दी के नाथ–योगियों की वेश–भूषा की प्रामाणिक जानकारी की दृष्टि से पदमावत का महत्व असंदिग्ध है। रत्नसेन के योगी–रूप का वर्णन करते हुए जायसी ने जैसे अपने जमाने के किसी योगी को साक्षात् खड़ा कर दिया है–

तजा राज राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहें बियोगी।
तन बिसँभर मन बाउर रटा। अरूझा पेम परी सिर जटा।
चंद बदन और चंदन देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा।
मेखल सिंगी चक्र धँधारी। जोगौ रुद्राख अघारी।
कंथा पहिरि डंड कर गहा। सिद्धि होइ कहँ गोरख कहा।
मुंद्रा स्रवन कंठ जपमाला। कर उदपान काँध बघछाला।
पाँवरि पाँव लीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस कै राता।१२६।

पुरुष ही योगी नहीं होते थे, स्त्रियां भी योगिनी होती थीं। दोनों की वेश–भूषा समान ही होती थी। पद्मावती को डिगाने के लिए छल कर लाने के लिए बादशाह द्वारा भेजी गई दूत के योगिनी रूप–वर्णन के प्रसंग में जायसी ने प्रायः इन्हीं सब वस्तुओं का उल्लेख किया है।[10]

उपर्युक्त छन्द में उल्लिखित नाथ–योगियों से सम्बद्ध वस्तुओं–किंगरी[11] (छोटा चिकारा या सारंगी), सिंगी[12] (सींग का बाजा), धँधारी[13] (गोरखधन्धा, हार के छल्लों का बना हुआ, जिसे जोगी सुलझाते है), अधारी[14] (योगियों की एक लकड़ी–टिकठी–जिसके सहारे से वे बैठते या सो लेते हैं), कंथा[15], खप्पर[16] (नारियल का बना भिक्षापात्र) आदि का अन्यत्र भी पदमावत में अनेकशः उल्लेख मिलता है।

मध्यकाल में नाथसिद्धों के सम्बन्ध में यह धारणा थी कि अद्भुत शक्ति सम्पन्न उनके शरीर में मक्खी नहीं बैठती, उनकी

आँखों की पलक नहीं लगती, सिद्ध की देह की छाया उसके साथ नहीं होती, सिद्ध को भूख–प्यास नहीं लगती आदि। इसी तत्कालीन लोकधारणा को अभिव्यक्त करते हुए जायसी पदमावत में लिखते है–

सिद्ध अंग नहिं बैठै माखी।
सिद्ध पलक नहिं लागै आँखी।
सिद्धहिं संग होइ नहिं छाया।
सिद्धहि होइ न भूख औ माया।
जौं जग सिद्धि गोसाईं कीन्हा।
परगट गुप्त रहै को चीन्हा।२१२/२–४।

'पवन अहारी' होने की बात कन्हावत में भी कही गयी है–

जेत कटक जोगिंह कर झारी। सबै सिद्ध औ पवन अहारी।३४३/१।

तद्युगीन समाज में ऐसी मान्यता थी कि ये नाथयोगी कोई भी रूप धारण कर सकते हैं और परकाया–प्रवेश में पारंगत होते हैं। जायसी ने कन्हावत में इनकी ऐसी ही चमत्कारिक करामातों का उल्लेख किया है–

खिन खिन मँह छाला अप्सोहीं।
देखै जगत जो अन्तरिख न होहीं।
खिन मिरगा कै रूप दिखावहिं।
खिन यक सिंहा रूप होइ धवहिं।
कबहु परेवा कबहु मँजारी।
और भेस को कहै मुरारी।
बहुल छन्द धरि आवहिं, यहि विद्या यहि भेस।
चौदह कला सपूरन, परकाया परवेस।।३४३।।

एक प्रसंग विशेष रूप से विचारणीय है, क्योंकि इस सम्बन्ध में पदमावत के व्याख्याकारों में मतभेद है। इस मतभेद में सहायक हुए हैं सम्बद्ध पंक्ति के पठान्तर। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने एक पंक्ति का निम्नलिखित पाठरूप स्वीकार करते हुए उसका अर्थ इस प्रकार किया है–

तव उड़ंत छाला लिखि दीन्हा।
बेगि आउ चाहौं सिध कीन्हा।२३६/६।

अर्थात "उसने तुम्हारे लिए लिखा है– उड़न्त छाल पर बैठकर तुरन्त आओ मैं तुम्हें सिद्ध बनाना चाहती हूँ।" उड़न्त छाला को स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं– "उड़ने वाली छाला। मध्यकालीन विश्वास के अनुसार सिद्धि प्राप्त योगी मृगछाला पर बैठकर आकाश मार्ग से चाहे जहाँ जा सकता था।"[१७]

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने उपर्युक्त पंक्ति का निम्नलिखित पाठरूप स्वीकार करते हुए अर्थ इस प्रकार किया है–

तब उदंत छाला लिखि दीन्हा।
पगु चलि आउ चहौं सिध कीन्हा।।२३६/७।

अर्थात् "तब उसने अपने उदन्त (सन्देश) की यह छाल (भुर्जपत्र) लिखकर दिया है और कहा है तू पैरों से चलकर आ, मैं तुझे सिद्ध करना चाहती हूँ।"

अग्रवालजी ने एक अन्य प्रसंग में भी उड़ने वाली मृगछाला सम्बन्धी लोकविश्वास का भाव निहित माना है। तत्सम्बन्धी पंक्ति निम्नलिखित है–

ओहि के गुन सँवरत भै माला। अबहुँ न बहुरा उड़िगा छाला।३६१/६।

यहाँ वे पुनः लिखते हैं– "मध्यकालीन विश्वास के अनुसार सिद्ध योगी अपनी मृगछाला पर बैठकर चाहे जहाँ उड़ जा सकते थे। जायसी ने इसे उड़न्त छाला कहा है।"

लेकिन गुप्तजी पाठान्तर न होते हुए भी इस प्रसंग को उड़ने वाली छाला से नहीं जोड़ते। उनके अनुसार यहाँ नागमती के कहने का भाव यह है कि रत्नसेन के वियोग में वन–वन भटकते हुए मेरी खाल उधड़ गई है और वह उस योगी के लिए उपयुक्त चर्म बन गई है।[१८]

दोनों विद्वानों ने जायसी–काव्य का गहन अनुशीलन किया है। दोनों पदमावत के मर्मज्ञ हैं। निश्चित रूप से दोनों ने अच्छी तरह विचार करके ही उपर्युक्त पाठ और अर्थ निर्धारित किए होंगे।

इसलिए एक को सही और दूसरे को गलत कहना आसान नहीं है। फिर भी विचार तो किया ही जा सकता है।

'उदन्त' शुब्द का अर्थ वृत्तान्त, समाचार या सन्देश होता है, यह तो ठीक है, लेकिन जायसी ने अन्यत्र कहीं भी इस शब्द का प्रयोग नहीं किया। यह तत्सम शुब्द मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रायः देखने को नहीं मिलता। फिर, जायसी ने जिस जनभाषा अवधी का प्रयोग किया है उसमें समाचार या सन्देश के लिए यह तत्सम शुब्द इसी रूप में प्रचलित रहा होगा, इसकी सम्भावना कम ही है।

प्रसंग को ध्यान में रखा जाय तो प्रथम उद्धृत पंक्ति में ही रामन पद्मावती का संदेश रत्नसेन से कह रहा है। 'मैं तुम्हें सिद्ध बनाना चाहती हूँ या करना चाहती हूँ' इसके लिए 'पैरों से चलकर (आओ) कहने में कोई वैशिष्ट्य नहीं है, बल्कि अनावश्यक सा लगता है। जबकि 'बेगि आउ' अर्थात् शीघ्र आओ' कहने में एक खास व्यंजना है और शीघ्रता के साथ उड़न्त छाल का सम्बन्ध बिल्कुल सीधा है।

दूसरे प्रसंग में चूँकि पाठान्तर नहीं है और सन्दर्भ को देखते हुए दोनों प्रकार से अर्थ किया जा सकता है। इसलिए वहाँ दोनों अर्थ मानने में कोई उज्र नहीं होना चाहिए। सम्भव है 'उड़िगा छाला' लिखते समय कवि के मानस में दोनों प्रकार के भाव रहे हों।

वस्तुतः पदमावत के इन प्रसंगों से नाथ–योगियों के उड़न्त छाला सम्बन्धी मध्यकालीन लोकविश्वास को गुप्तजी की भाँति पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इधर 'कन्हावत' के उपलब्ध हो जाने से भी इसकी पुष्टि हो जाती है। कन्हावत में भी जायसी ने योगियों के उड़ने की बात कही है–

औ जो चहै तो चलै उड़ाई।
जेह ताकै तँह खिन मँह जाई।३४५/७।

यहाँ छाला के द्वारा या छाला में बैठकर उड़ने की बात अवश्य नहीं है, लेकिन इससे पहले ही जायसी उनकी करामाती छाला की भी चर्चा कर चुके हैं और जिसे हम पहले भी कर चुके हैं–

खिन खिन मँह छाला अप्सोहीं।
देखै जगत जो अन्तरिख न होहीं।३४३/५।

जायसी को नाथपन्थी साधना की भी सूक्ष्म और गहरी जानकारी थी। नाथमत में हठयोग साधना का विशिष्ट स्थान है। यह अत्यन्त कठिन साधना है। जायसी न केवल हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली से, बल्कि उसकी साधना–प्रक्रिया से भी पूर्ण अवगत थे। प्रमाण के लिए पद्मावत का निम्नलिखित कड़वक द्रष्टव्य है, जिसमें महादेवजी रत्नसेन को साधना–पथ में लगने का उपदेश देते हुए समझाते हैं–

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया।
परखि देखु तैं ओहि की छाया।
पाइअ नाहिं जूझि हठि कीन्हे।
जेइँ पावा तेइँ आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मँझिआरा।
औ तँह फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक नाँकी।
अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी।
भेदी कोई जाइ ओहि घाटी।
जौं लै भेद चढ़ै होई चाँटी।
गढ़ तर सुरँग कुंड अवगाहा।
तेहि मँह पंथ कहौं तोहि पाहाँ।
चोर पैठि जस सेंधि सँवारी।
जुआ पैंत जेउँ लाव जुआरी।
जस गर जिया समुँद धँसि मारै हाथ आव तब सीप।
ढूंढ़ि लेहि ओहि सरग दुवारी औ चढु सिंघलदीप।।२१५।।

इस छन्द के दो अर्थ हैं। एक तो गढ़ परक सामान्य अर्थ और दूसरा योग परक विशिष्ट अर्थ। यहाँ सिंहलगढ़ मानव शरीर के प्रतीक रुप में वर्णित हुआ है– इस गढ़ (काया) पर बाह्य साधनों से अधिकार प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसकी प्राप्ति आत्मपरिच्रय या आत्मज्ञान से ही होती है। शरीर में नौ द्वार हैं और पंचप्राण जिनकी रखवाली करते हैं। दसवाँ द्वार ब्रह्मरन्ध्र है। वहाँ तक पहुँचने का मार्ग अगम्य और दुरूह है।

अर्थात्, कुंडलिनी के मूलाधाररन्ध्र से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने का सुषुम्ना मार्ग अत्यन्त कठिन है। कोई रहस्य जानने वाला (साधक) ही एक–एक चक्र को वश में करता हुआ पिपीलिका गति से उस दसवें द्वार तक पहुँच सकता हैं (योग साधना के दो मार्ग माने जाते हैं– पिपीलिका मार्ग ओर विहंगम मार्ग। धीरे–धीरे क्रमशः आगे बढ़ते हुए मूल स्थान पर पहुँचना पिपीलिका मार्ग है और पक्षी की भाँति एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़कर मूल स्थान पर पहुँचना विहंगम मार्ग है।) इस शरीर के निचले हिस्से में मूलाधार चक्र है उसी में सुषुम्ना का मार्ग है। अर्थात् कुंडलिनी जो मूलाधार चक्र में सुप्त पड़ी रहती है जागृत होकर इसी सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। चोर की भाँति छिप कर सतर्कतापूर्वक सेंध लगाने वाला अर्थात् गुप्त साधना करने वाला, जुआरी की भाँति माया–मोह को त्यागकर अपना सर्वस्व दाँव पर लगाने वाला और जान पर खेलने वाले गोताखोर की भाँति जो योग–साधना में लगता है वही सुषुम्ना के इस स्वर्गद्वार अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने के आरम्भिक द्वार को ढूँढ़ पाता है और ऊपर चढ़ते हुए सर्वोच्च सिद्धि स्थान तक पहुँच पाता है।

इतना ही नहीं, इसे और आगे बढ़ाते हुए जायसी लिखते हैं–

दसवँ दुवार तारु का लेखा।
उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।
जाइ सो जाइ साँस मन बंदी।
जस धँसि लीन्ह कान्ह कालिंदी।
तूँ मन नाँथु मारि कै स्वाँसा।
जौं पै मरहि आपुहि करु नाँसा।
परगट लोकचार कहु बाता।
गुपुत लाउ जासौं मन राता।
हौं हौं कहत मंत सब कोई।
जौं तूँ नाहि आहि सब सोइ।
जियतहि जौं रे मरै एक बारा।
पुनि कत मीचु को मारै पारा।
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला।

आपुहि सब सो आपु अकेला।
आपुहिं मीचु जियन पुनि आपुहि तन मन सोइ।
आपुहि आपु करै जो चाहे कहाँ क दोसर कोइ।।२१६।।

पिंगला, सुषुम्ना, शून्य समाधि आदि का स्पष्ट प्रयोग भी है—

गहीं पिंगला सुखमन नारी। सुन्नि समाधि लागि गौ तारी।
बुंदहि समुँद जैस होइ मेरा। गा हेराइ तस मिलै न हेरा।।२३५/३–४।

द्वितीय पंक्ति कबीर की निम्नलिखित पंक्तियों से तुलनीय है—

१. बूँद समाँणीं समँद में, सो कत हेरी जाइ।
२. समँद समाँणाँ बूँद में, सो कत हेर्या जाइ।[२०]

योग की 'न्योली' क्रिया से भी जायसी का परिचय था। यह नेती, धौती आदि की तरह की एक क्रिया है, जिसमें पेट के नलों को पानी से साफ करते हैं। कन्हावत में गोरखनाथ के साथ आये योगियों के वर्णन के 'प्रसंग' में इसका उल्लेख हुआ हैं—

राजकपूर क महक गर माँ। न्योली जोग सिद्धि उपरनाँ।।३४३/३।

जायसी कृत कन्हावत में दो बार श्रीकृष्ण ने गोरखनाथ को 'रावल' कहकर सम्बोधित किया है—

१. कौन देस हुत रावल आये।
का गता भयी कहाँ सिधाये।३४४/६।

२. सुनहु न रावल उतर हमारा।
का करब्यों लै जोग तुम्हारा।।३४६/१।।

रावल का सामान्य अर्थ राजा अर्थात् आदर सूचक सम्बोधन किया जा सकता है। जैसा कि कन्हावत के सम्पादक श्री परमेश्वरी लाल गुप्त ने किया भी है।[२१] लेकिन ध्यान देने योग्य है कि नाथपंथ की एक प्रसिद्ध शाखा का नाम रावल शाखा है। कहीं जायसी ने उसी सन्दर्भ से तो रावल सम्बोधन का प्रयोग नहीं किया है? आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रावल को 'लाकूल' शब्द का रूपान्तर बताते हुए रावल योगियों की समूची शाखा को लाकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय से जोड़ा है। यह सम्प्रदाय गोरखनाथ

से पूर्व का है। उनका अनुमान है कि बाद में गोरखनाथ ने उसे अपने पंथ में मिला लिया होगा।[२२] ध्यान देने योग्य यह भी है कि द्विवेदी जी ने मुसलमानों का रावल शाखा से विशेष सम्बन्ध बताया है। उनके अनुसार रावलों का स्थान पेशावर, रोहतक और सुदूर अफगानिस्तान तक में है। रावलपिंडी से इनका विशेष सम्बन्ध है यह नाम से ही सिद्ध है। जायसी भी मुसलमान थे। इस दृष्टि से रावल शब्द को सामान्य अर्थ में लेकर अनदेखा नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी को नाथसम्प्रदाय की व्यापक और गहरी जानकारी थी। अपने से इतर धर्म–सम्प्रदाय या वर्ग विशेष के सम्बन्ध में मोटी–मोटी बाहरी बातें तो लोगों को मालुम रहती हैं, पर इतनी गहरी पैठ प्रायः देखने को नहीं मिलती। हिन्दी में एक भी क़वि इस दृष्टि से जायसी के समकक्ष खड़ा नहीं किया ज़ा सकता। रसखान जैसे कवियों को जायसी की कोटि में इसलिए नहीं रखा जा सकता क्योंकि वे मुसलमान थे अवश्य, लेकिन कृष्णभक्ति सम्प्रदाय में पूरी तरह लीन हो चुके थे। लेकिन जायसी मुसलमान थे और आजीवन मुसलमान ही बने रहे। सूफी प्रेम मार्ग के पथिक ही वे अन्त तक रहे। इसके बावजूद अन्य धर्म–सम्प्रदायों की व्यापक जानकारी तथा अपने काव्यों में तत्सम्बन्धी कथा–प्रसंगों आदि का उदारता पूर्वक उपयोग उन्हें निश्चित रूप से विशिष्ट स्थान का अधिकारी बनाता है। पदमावत में रामकथा सम्बन्धी, कृष्णकथा सम्बन्धी तथा अन्य धार्मिक–पौराणिक कथा–प्रसंग भरे पड़े हैं। यही नहीं, उन्होंने कृष्ण को आधार बनाकर कन्हावत नाम के एक स्वतन्त्र प्रबन्धकाव्य का भी निर्माण किया।

उपर्युक्त विवेचन से जहाँ जायसी की प्रतिभा और उनके उदारतावादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है वहीं मध्यकाल में नाथसम्प्रदाय की व्यापकता और समाज में उसकी महत्ता भी सूचित होती है। धर्म–सम्प्रदाय एवं जाति–पाँति की सीमाओं को लाँघकर नाथपंथ का प्रभाव किसी न किसी रूप में पूरे समाज पर था। एक सम्प्रदायेतर कवि द्वारा अपने काव्य में नाथपंथी साधना, साधकों, कथाप्रसंगों आदि का इतना व्यापक प्रयोग इसका प्रमाण है।

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर.

# संदर्भ


1. मलिक मुहम्मद जायसीकृत कन्हावत, सम्पादक- परमेश्वरी लाल गुप्त, अन्नपूर्णा प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, अप्रैल 1981। छन्द संख्या 345/3-4
2. नाथ-सम्प्रदाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1981। पृष्ठ संख्या- 96
3. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2), सम्पादक- धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड 5, वाराणसी, प्रथम संस्करण सवत् 2020
4. नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ संख्या- 182
5. हिन्दी शब्दसागर (सातवां भाग), मूल सम्पादक श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, नवीन संस्करण सवत् 2026 विक्रमी।
6. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2)
7. हिन्दी शब्दसार (सातवां भाग)
8. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भर्तृहरि और रानी पिंगला सम्बन्धी एक कहानी का संकेत किया है लेकिन वह भी भिन्न जान पड़ती हैं। देखिए नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ संख्या- 183
9. नाथ सिद्धों की बानियां, पृष्ठ संख्या- भूमिका भाग 18; सम्पादक- हजारीप्रसाद द्विवेदी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वितीय संस्करण संख्या 2035 वि.।
10. पद्मावत, छन्द संख्या- 129
11. पद्मावत, छन्द संख्या - 601, 603
12. छन्द संख्या -139/7, 167/3, 194/7, 244/5, 309/4, 361/3
13. छन्द संख्या - 167/3, 361/4, 367/2, 600/6.
14. छन्द संख्या - 606/9
15. वही 606/4
14. छन्द संख्या - 124/5, 129/6, 143/4, 228/2, 237/7, 276/7, 602/6.
15. छन्द संख्या - 219/3, 263/9. 361/7, 606/3
16. पद्मावत, व्याख्याकार- श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, प्रकाशक - साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, तृतीयावृति 2037 वि, पृष्ठ संख्या- 271
17. पद्मावत, सम्पादक - डॉ.माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक- भारती भण्डार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1973, पृष्ठ संख्या-377
18. कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक डॉ. माता प्रसाद गुप्त, साहित्य भवन, प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण 1985, लांबि कौ अंग - साखी 3 और 4
19. कन्हावत, पृष्ठ संख्या - 315
20. नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ संख्या - 171, 178.
21. नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृष्ठ संख्या - 9-10.

# जाम्भोजी महाराज की वाणी में नाथ–सम्प्रदाय के प्रसंग

कृष्णलाल विश्नोई

राजस्थान की भूमि जहाँ अपने वीरों के शौर्य और अदम्य साहस के लिए संसार भर में विख्यात है, वहीं दूसरी ओर यह संतों तथा उनकी वाणी के विचार से भी प्रसिद्ध रही है। यहाँ के संतों का स्मरण बड़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है। यहाँ जुंझार–भोमिया, पीर–फकीर, नाथ–योगी एवं संत–महात्मा हुए हैं जिन्होंने सदैव जनता की भलाई के कार्य किये है। ऐसे ही एक संत–महापुरुष थे– जाम्भोजी महाराज जिन्होंने विश्नोई–पंथ की स्थापना इसी मरुभूमि पर की थी।

कवि सुरजनदासजी पूनिया ने जाम्भोजी के कार्यों का उल्लेख करते हुए 'कथा परिसिध' में कहा है–

'सुगर भेख थापै स कांइ, भद्र भेख कीजै भलाई।

ब्रंभ जैण जोगी बुलाणां, मिलैं मीर काजी मुलाणा।

नाथ–पंथ का प्रारम्भ कब से हुआ, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है, परन्तु शिव को आदिनाथ कहा गया है। माहेश्वर–सम्प्रदाय चार हैं– पाशुपत, शैव, कालामुख और कापालिक। पाशुपत मत के संस्थापक नकुलीश या लकुलीश है। राजस्थान में लकुलीश शिव ही सबसे अधिक प्रसिद्ध रहे हैं।[1] जाम्भोजी महाराज ने अपनी वार्णी में अनेक स्थानों पर शिव की महिमा और स्वरुप का वृर्णन किया है उनका मूल सबद देखिये–

तद होता एक निरंजण सम्भू, के होता धंधूकारु।।४।।

जप्या तो एक निरालम्ब सम्भू, जिंही के माय न पिऊं।।५।।

साधु–सन्तों में भी गोरखनाथजी को अजर–अमर माना है। इस कारण ही जाम्भोजी (वि.सं. १५०८–१५६३) ने उन्हें 'गोरख गरु अपारा'। हरिदास निरंजनी (वि.सं. १५१२–१५६४) ने 'गोरख हमारा गुरु बोलिया'। जसनाथजी (वि.सं. १५३६–६३) नें 'सील सेज में ईसर गोरख भेंट्या, भलकंतै दीदारू' आदि कहकर गोरखनाथ और नाथपंथ का सम्मान किया है तथा उनको अपना गुरु माना है। इन बातों से उस समय में गोरखनाथ और नाथ पंथ के राजस्थान में व्यापक प्रभाव और उसकी प्रसिद्धि का पता चलता है।

जाम्भोजी महाराज ने अनेक सबद योग–प्रसंग के अन्तर्गत–साधु, योगी, बैरागी, गोसांई आदि को सम्बोध्न करके कहे हैं, देखिये– आसण–बैसण कूड़ कपट (२४) धण तण जीम्या को गुण नाहीं (२६), बल बल भणंत व्यासूं (३५), काजी कथै कुराणों (३६) लोहा लंग लहारूं (३७) रे रे पिंड निरधन जीव क्यूं खण्टू (३८) उत्तम संग सू सगूं (३६), हरी कंकहड़ी मंडप मैड़ी (७३) भल पाखण्डी पाखण्ड मण्डा (८१), अलख अलख तूं अलख न लेणां (८२) जो नर घोड़े चढै, पागं न बांधै (८३), मुंड मुंडायो मन न मुडायो (८४), भोम भली किरसाण भी भला (८५), सहजै सीले सेज बिछायो, अनमन रह्या उदासूं (१०७), हाली लो भल पाली लो (१०८), देखत भूली को मन माने (१०६), महै आप गरीबी तन गूंदड़ियो (११५), आयसां मृगछाला पावोड़ी कांय फिरावो (११६), टूका पाया मगर मचाया ज्यूं हंडिया का कुत्ता (११७)। इन सबदों द्वारा उन्होंने योग की वास्तविक विषय–वस्तु से लोगों को अवगत करवाया।[2]

प्रसिद्ध नाथपंथी लोहा पांगल, लक्ष्मणनाथ, बालानाथ, कवलनाथ आदि जाम्भोजी के समकालीन थे। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध लोहापांगल थे, जिनका सम्पर्क जाम्भोजी से हुआ था। योग विषय पर उनके और जाम्भोजी के संवाद बड़े महत्वपूर्ण हैं। कहते हैं लोहापांगल जाम्भोजी की परीक्षा लेने के लिए गोदावरी मठ से चलकर आये थे। उन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में करने के लिए लोहे का कच्छ बनाकर पहन रखा था। उन्होंने अनेक प्रश्न पूछे, जिनके समाधान स्वरूप जाम्भोजी ने उन्हें अनेक सबद कहे थे। मूल सबद की प्रथम पंक्तियां देखिये–

सप्त पाताले तिहूं त्रिलोक के (४०) सुण राजेन्द्र सुण जोगेन्द्र (४१) आयसां काहै काजै खेह झकरूड़ो (४२) राज गये राजेन्द्र झूरै खोज गये ने खोजी (४३) खरतर झोली खरतर खंता (४४) दोय मन दोय दिल सींवी न कंथा (४५) जिंही जोगी के मन ही मुद्रा (४६) काया कंथा मनं जोगूंटो, सींगी श्वास उस्वासूं (४७) मोह मंडप थाप थापले राख राखले (५२) गुर हीरा विणजै ले हम लेहूं (५३) अरूण विंवाणै रै रबी भाणै देव विवाणै (५४) रणघटिये के खोज फिरन्ता सुण सेवन्ता (५५)। इन सबदों के ज्ञान से उनका समाधन हो गया और कालान्तर में वह जाम्भोजी के शिष्य बन गये। [३] इस प्रसंग का विस्तार पूर्वक वर्णन कवि केसोजी गोदारा ने भी अपनी प्रसिद्ध कथा 'लोहापांगल की' में किया है।[४] जसनाथी सम्प्रदाय के लोग लोहापांगल को अपने सम्प्रदाय का मानते हैं। नाथ सम्प्रदाय की बारह शाखाओं में एक पांकलनाथी (पांगलपंथी) भी है।[५] संभवतः लोहापांगल इसी शाखा से सम्बन्धित थे।

इसी तरह जाम्भोजी ने लक्ष्मणनाथ की समस्याओं का समाधान अपने सबदों से किया, देखिये– लखमण लखमण न कर आयसां (४८) अवधू अजरां जार ले (४६) तइया सासू तइयां मासू तइयां देह दमोई (५०) सप्त पताले भूय अंतर, अंतर राखिलो (५१)।[६]

इसी तरह बालानाथ–कवलनाथ के संदर्भ में सबद कहे– कड़वा मीठा भोजन भख ले (७४) भूला लो भल भूला लो, भूला भूल न भूलूं (७७) नवै पोल नवै दरवाजा, अहूठ कोड़ सराय जड़ी (७८) बारा पोल नवै दरवाजा (७६)। जब साथरियो ने गोपीचन्द

और भरथरी के सम्बन्ध में पूछा तो जाम्भोजी महाराज ने गोरखनाथ के समय का सबद सुना कर उनका समाधान किया। देखिये—

सुण गुणवंता, बुधवन्ता, मेरी उत्पत्ति आद लुहारूँ (६५)।[७]

कवि वील्होजी ने बताया है कि जाम्भोजी ने इक्यावन वर्ष तक सबद कथन किया था। उन्होंने विभिन्न लोगों के प्रसंग में उनकी समस्याओं के समाधान हेतु अनेक 'सबद' कहे थे, परन्तु खेद का विषय है कि उनके अब तक १२१ ही सबद मिले हैं। इनमें उनके २१ सबद विभिन्न नाथों के और १६ सबद अन्य योगियों के सन्दर्भ में कहे गये हैं। सबदवाणी की एक अन्य प्रति में १५० सबद हैं, जिसमें नाथयोगियों के सम्बन्ध में कुछ और सबद हैं। बाल गुदाईनाथ के प्रति देखिये— चहुं दिसि जोगी सदा मलंग (१०६) राज गयै को राजा झूरै (१०७) अवधू सयंम अहार कंदरप नहीं व्यापै (१४७)। लोहा पांगलनाथ के संदर्भ में — सबद गुरू सुरति चेला, पांच तत्व में रह्या अकेला (१२५) तत ऐसा लो, तत ऐसा लो (१३१)। देवलनाथ के प्रति — अवधू सबद निरन्तर गहियै (१२६) हसिबा खेलवा रहिवा रंग(१४५)। दत्तनाथजी को — मारिबा तो मन मस्त मारिबा (१२८) मढि न बांधिबा, सती न प्रबोधिवा (१२६) कोटि मध्य कोई एकहि जूझै (१३०)। चौरंगीनाथजी को —मूल सींचो रे अवधू मूल सींचो (१२७)। साधु दण्डी के प्रति— दण्डी सो जो काया दण्डे (१४६)। योगी के प्रति — तीस दिन सूतक पांच ऋतुवंती न्यारो (१४४) गगन हमारा बाजा बाजै (१४६)। इन प्रसंगों में सबद १२५ गुरु मंत्र और सबद १४४ विश्नोई धर्म के उनतीस नियम हैं।[२५] मूलतः ये सबद नाथ—सिद्धों की वाणियां हैं, जिसकी पुष्टि अन्य साक्ष्यों से होती है। जाम्भोजी सम्बन्धित प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में इन सबदों का कहीं उल्लेख नहीं हैं।

जाम्भोजी ने अपने सबदों में नाथ—सम्प्रदाय में व्याप्त जोग के नाम पर फैले पाखण्ड पर कड़ा प्रहार किया है। उनकी मूल वाणी देखिये— पार—ब्रह्म की सुध न जाणी, तो नागे जोग न पायो (७) उरध खैणी मन नमन रावत, मुरखा रोंवत धाही (८) कूड़ ताणि ज क्रतब कियौ, ना तै लाव न सायौ (७) गोरख दीठा सिद्ध न होयबा, पोह उतिरिबा पारूं (२६) सिध का पंथ कोई साधु जाणत, बीजा बरत न बहियौ (२८) थे जोग न जोया भोग

न भोग्या न चीन्हों सुररायो (२६) जोगी जगम नाथ दिगम्बर, संन्यासी ब्राह्मण ब्रह्मचारी। मनहठ पढ़ियां पंडित, काजी मुल्ला खेलै आप दुवारी (४२) पांच पटण नव थानक साध्ले, आदिनाथ का भक्त (४७)।[12]

जाम्भोजी के ये सभी सबद नाथपंथी योगियों, उनकी साधना, वेश–भूषा और कार्यों के संदर्भ में कहे गये हैं, जिनसे नाथ–सम्प्रदाय एवं उसके महत्व के विषय में सम्यक् जानकारी मिलती है।

कालान्तर में अनेक लोगों ने जाम्भोजी के सबदों का प्रयोग नाथ–सिद्धों की बाणियों में उनके नाम से प्रचारित किया। नाथों की वाणी में जाम्भोजी के सबदों का प्रयोग देखिये–

महमंद महमंद न करि काजी, महमंद का तो विषम विचारू

महमंद हाथ करद जो होती, लोहे घड़ी न सारूं।।(१२)

महमंद महमंद न करि काजी, महमंद का बोहत विचारूं।

महमंद साथ पयंबर सीध, एक लख असी हजारू।।(१०)

उतपति हिन्दू जरणां जोगी, अकलि परि मुसलमानी।(६)

काणेरी नाथ के सबदों में–

चेतन रावल पहरे बैठा,

मृगा खेत न खाई (सबद ७०)

भरथरी की सबदी में–

राज गया कूं राजा झूरै,

बैठ गया कूं रोगी (सबद ४६)

चरपटनाथ की सबदी में–

नाथ कहावै सकै न नाथि,

चेला पंच चलावै साथि (सबद ४६)

टूका खाया मगर मचाया,

जैसा सहर का कुत्ता (सबद ११७)

चौरंगीनाथ की सबदी में–

मूल सींचौ रे अवधू सींचौ,
ज्यूं तरवर मेल्हत डालूं (सबद २६)

जलंध्रनाथ की सबदी में–

जोग न जोग्या भोग न भोग्या,
अहिल गई जमवारूं (सबद २६)

हणवन्त नाथ जी की सबदी में–

अठसठि तीरथ घट ही भीतरि,
बाहर लोकाचारूं (सबद १७, ६२)
तत अैसा लो तत अैसा लो,
किम करि कंथ गंभीरूं। सबद २६

जाम्भाणी साहित्य में भी परवर्ती विश्नोई संतों ने अपनी रचनाओं में नाथ सम्प्रदाय और प्रसिद्ध गोरखनाथ का जिक्र अनेक स्थानों पर किया है। विश्नोई समाज में प्रचलित कलश पूजा मंत्र, विवरस होम की, मंगलाष्टक, दस अवतारों, स्तोत्र, आरतियां, साखियां, हरजसों तथा अनेक कथा काव्यों में ऐसा उल्लेख हमें देखने को मिलता है। कवि ऊदोजी नैण, पदमजी, लाखोजी, अल्लूजी, वील्होजी, केसोंजी, सुरजनदासजी पूनिया, मुकनदासजी, साहबरामजी राहड़ आदि ने भी अपनी रचनाओं में नाथ–सम्प्रदाय का वर्णन किया है। कवि कालू ने भरथरी सम्बन्धी और कवि हरीराम ने गोपीचन्द सम्बन्धी अपनी रचनाएं लिखी। कवि वील्होजी ने नाथ और सिद्ध की महिमा बताते हुए कहा–

गोरखं जो ग्यान गंभी की कहै,
महादेव जो परमन की लहै।
सिध सोई जो साझै अति,
नाथ सांई जो त्रिभुवण पति। [१५]

सुरजनदासजी पूनिया ने 'कथा ध्रमचरी' में कहा है—

दस राजेसर बारै जोग, अठतरि वीपारी लोग।
वरतै वरस हजार पचास, गोरख गुर धेळा गिर वास।।

निष्कर्षात्मक रूप में जाम्भोजी की वाणी और उनके नाथ—सम्प्रदाय सम्बन्धी प्रसंगों को जानने से हमें उक्त सम्प्रदाय के सम्बन्ध में समुचित जानकारी मिलती है। उनकी वाणीं के प्रसंगों में अनेक स्थलों में गोरखनाथ, गोपीचन्द, भरथरी, घोड़ाचोली, बालगुदाई, लोहापांगल, लक्ष्मणनाथ, बालानाथ, कवलनाथ आदि का उल्लेख हुआ है,[१६] जिनमें प्रथम पांच तो उनसे पूर्व हो चुके हैं और शेष चार उनके समकालीन थे।

जाम्भोजी महाराज ने किसी ध्र्म सम्प्रदाय, पंथ अथवा व्यक्ति को बुरा नहीं बताया और न ही उन्होंने वेद, पुराण, शास्त्रों एवं कुरान की निंदा की है। उन्होंने तो ध्र्म के नाम पर प्रचलित और प्रचारित पाखण्ड, बाह्यवेश और लोक दिखावे की निन्दा की है। ध्र्म के 'असली' तत्व को जानना और आचार—विचार को पवित्र रखना ही उनकी वाणी का सन्देश है। कवि सुरजनदासजी पूनिया ने 'कथा औतार की' में कहा है कि जाम्भोजी महाराज भी अन्य सिद्धों के समान है, देखिये—

सिध जेते संसार में, कपिल अरू गोरख जाण।
अगस्त महादेव रामजी, सोई जम्भेश्वर जाण।।

ooooo

## संदर्भ


1. विश्नोई धर्म एवं विश्नोई समाज-कृष्णलाल बिशनोई। अमर ज्योति, हिसार (हरियाणा) दिसम्बर 1971
2. जम्भ-संहिता (धर्म बोधिनी टीका) - स्वामी ईश्वरानन्द गिरी प्रका.- रामगोपाल, प्रभाग, वि.सं. 1955
3. जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य - डा. हीरालाल माहेश्वरी भाग 1, पृष्ठ 199, बी.आर. पब्लिकेशन, कलकत्ता, सन् 1970
4. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् 1891, तीसरा हिस्सा, पहला विभाग, सन् 1895, पृ. 243
5. जम्भसागर, (शब्द निर्णय, टीका समेत) स्वामी रामानन्द गिरी प्रका- विश्नोई सभा हिसार, सम्वत् 2011
6. श्री जम्भसागर - महात्मा साहबरामजी राहड़, प्रका. श्रीरामदास प्रयाग, संवत् 1978, पृ 263

7. कथालोहा पांगल-केसोजी, फोटो प्रति- स्वामी विवेकानंद संग्रहालय मंडी आदमपुर, हिसार
8. चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास - गोविन्द अग्रवाल, सन् 1974 पृ 387
9. श्री जम्भगीता (भाषा भाष्य)- स्वामी सच्चिदानन्द योगीराज हरदा (होशंगाबाद) संवत् 1985, पृ 162
10. श्री जम्भसागर- टी. श्री ईश्वरानन्द गिरी, प्रका. मुंशी प्यारेलाल हिन्दू प्रेस दिल्ली, वि.स. 1949, पृ 387-88
11. शब्दवाणी अर्थात् जम्भसागर - ईश्वरानन्द गिरि, धार्मिक यन्त्रालय प्रभाग, सवत् 1955, पृ 121-151
12. जाम्भोजी की सबद वाणी- डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, प्रका. बी. आर. पब्लिकेशन्स, कलकत्ता, सन 1976
13. नाथ सिद्धों की बानियां-हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि.स. 2014
14. यशोनाथ पुराण- सिद्ध रामनाथ, जोधपुर, संवत् 1988
15. वील्होजी की वाणी-कृष्णलाल विश्नोई, संभराथल प्रकाशन, अबूबशहर (सिरसा) सन् 1993
16. परमानन्दजी बणियाळ का हस्तलिखित पोथा, वि.स. 1818 साल्मी 49, (व्यक्तिगत संग्रह)
17 (क) सबदवाणी जाम्भोजी की- लि.क. केसोदास च्धव रावलजी प्रसंग सहित, लि. का, 1892 पत्र, (व्यक्तिगत संग्रह)
(ख) सबदवाणी जाम्भोजी की (बिना प्रसंग) संवत् 1889 पत्र 1-21
(ग) सबदी रा प्रसग (120 सबद) लि.क. मनीराम साध, लि.का. 19वीं शताब्दी, पत्र 17
(घ) जाम्भोजी की सबदवाणी (120 सबद, गद्य पद्य प्रसंग सहित) लि.का. 20वीं 'शताब्दी, पत्र 17
नोट:- कोष्ठक में दी गई सबद संख्या 'जम्भसागर' स्वामी रामानन्द गिरि, वि.स. 2011 की है।

# नाथ साहित्य में प्रतीक योजना

– सर्वेश कुमार शर्मा

नाथ सम्प्रदाय की हठयोगपरक क्रिया पद्धतियों का साधनात्मक जटिलता के कारण विशेष प्रचार न हो पाया। अतएव इसे लोक–सुबोध स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से साधना के अंग–उपांगों का व्यावहारिक प्रतीकों के रूप में अभिव्यक्तिकरण आरम्भ हुआ। इसी के समानान्तर पूर्व परम्पराओं (वैदिक तथा सिद्ध) से प्राप्त प्रतीकों की नाथसाधना के अनुरुप पुनर्व्याख्या भी होने लगी। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक गोपनीयता पर विशेष बल दिये जाने के कारण नाथयोगियों द्वारा साधनात्मक शब्दावली को प्रतीकात्मकता में आबद्ध कर रहस्मय बनाने की भी चेष्टा की गई, इसका उपयुक्त प्रमाण उनकी उलट–बांसी रचनाएँ प्रतीत होती हैं। नाथ साहित्य की प्रतीक योजना का निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर विश्लेषण किया जा सकता है:–

### 1. हठयोगात्मक प्रतीकः–

नाथयोगियों ने हठयोग साधना में वर्णित इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सूर्य, चन्द्र, कुण्डलिनी, सहस्रार आदि की प्रतीकपरक अभिव्यक्ति की है।

बौद्ध परम्परा से प्राप्त ललना, रसना तथा अवधूति आदि प्रतीकात्मक संज्ञाएँ नाथसाधना के अन्तर्गत इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के रूप में व्यक्त हुई हैं। प्रकारान्तर से इनका क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती के रूप में भी उल्लेख हुआ है। अन्यत्र इड़ा को चन्द्र और पिंगला को सूर्य के रूप में ग्रहण करते हुए कहा गया हें कि चन्द्र और सूर्य द्वारा नाड़ियों को अवरुद्ध कर देने से ही सुषुम्ना का मार्ग खुलता हैं।[1] उपर्युक्त सन्दर्भ में गोरखनाथ ने एक अद्‌भुत साधना रूपक की योजना की है:–

पवनां रे तू जासी कौनैं बाटी।

जोगी अजपा जपै त्रिवेणी के घाटी।

चंदा मोटा टीका करिलै सूरा करिलै बाटी।

भूंनी राजा जूगा धोवै गंग जमुन के घाटी।।[2]

अर्थात् पवन (प्राण) तुम किस पथ से जाओगे? त्रिवेणी (तीनों नाड़ियों) मार्ग में योगी अजपा जाप कर रहा है (अतः वह रास्ता बंद है) चन्द्रमा को साबुन और सूर्य को पाटी बनाकर सुषुम्ना में स्थित योगी राजा कायारूपी कपड़े को धोता है।

कुण्डलिनी को गोरखनाथ द्वारा त्रिलोकी को डसने वाली सर्पिणी के रूप में परिकल्पित किया गया है।[3] इन दसों दिशाओं में परिवेश के अनुरूप प्रतीकों का पुनर्भासित रुप भी प्रकट होता है। दौड़ती मतवाली नागिन को पवन निरोध (प्राणायाम) द्वारा वशवर्ती बनाया जा सकता है।[3] नाथसाहित्य के अनतर्गत कुण्डलिनी हेतु अन्य प्रतीकार्थी शब्द यथा औंधा कुआँ,[5] धरती,[6] गगरी,[7] आदि भी व्यवहृत हुए हैं। इसके अतिरिक्त सुषुम्ना में असंख्य कला वाले तत्व को सहस्रार के रूप में औंधे कुएँ से भी व्याख्यायित किया गया है।[८]

**2. *विपर्ययपरक प्रतीकः–***

वैदिक साहित्य की उलटवाँसी परम्परा[९] सिद्ध और नाथपरम्पराओं के अन्तर्गत पर्याप्त विकसित हुई है। साम्प्रदायिक गोपनीयता की दृष्टि से नाथयोगियों द्वारा साधनात्मक मर्म अथवा प्रक्रिया सम्बन्धी शब्दावली का क्रम प्रायः उल्टा रखा गया है, किन्तु

शनैः शनैः सामान्य जीवन के अन्तर्गत भी उल्टी बात कही जाने लग गई और ऐसा करने वाले योगियों का सम्मान समाज में बढ़ता ही गया। परिणामस्वरूप ये लोग अधिकारिक उत्साह से डंके की चोट सीधी बात को भी उल्टी तथा जटिल करके धक्कामार बनाकर कहते गए।[10] उदाहरणतः माया और जीव के सम्बन्ध के अभिव्यक्तीकरण हेतु गोरखनाथ इस उलटवाँसी का प्रयोग करते हैं:–

नाथ बोलै अमृत वांणी, बरिषैगी कंवली भीजैगा प्राणी।
गाडि पडरवा बांधिलै षूटा, चलैं दमाँमां बाजिले ऊँटा।।
कउवा की डाली पीपल बासे मूसा कै सबद बिलइया नासै।
चले बटावा थाकी बाट, सोवै डुकरिया ठौरे षाट।।
ढू किले कूकर भूकिले चोर काढै धणी पुकारै ढौर।
ऊजड़ षेडा नगर मझारी, तलि गागरि ऊपरी पनिहारी।
मगरी परि चूल्हा धूंधाई, पोवनहारा कों रोटी खाई।
कांमिनी जरै अंगीठी तापै, बिचि बैसंइदर थरहर कापै।।
एक जु रढ़िया रढ़ती आई, बहू बिवाई सासू जाई।
नगरी कौ पांणी कूई आवै, उल्टी चरचा गौरख गावै।।[11]

अर्थात् कंबली (दैहिक और मानसिक कर्म) जल (शरीर) पर (अमृतमय कर्मों के रूप मे) बरस रही है। पडखा (मायारूपी गाय की सन्तान अविवेक) को गाड़कर खूंटे (जीव को बांधने के लिए खूंटा रूप माया) को बांध लो। दमाँमां (अनाहत नाद) चलता है जिससे ऊँट (स्थूल मन) तड़ातड़ मार पड़ने के कारण बाजे की तरह बजाया जा रहा है। कौआ (अविवेकी मन) पीपल (ब्रह्म अनुभव) की शाखा (ऊँची अवस्था) पर बैठकर बोलता है। चूहे (सूक्ष्म अन्तर्मुख जीवन) के शब्द से बिल्ली (माया) भागने लगी है। बटोही (ज्ञान मार्ग का) तो चलता है पर मार्ग (मोक्ष पथ) थक जाता है। (कुछ करना शेष नहीं रह जाता) बुढ़िया (माया) पर खाट (आधयात्मिक जीवन युक्त आत्मा) लेट रही है। कुत्ता (द्रोही मन) दुबक गया है, और चोर (आत्मज्ञान) भौंक रहा (प्रबल हो रहा) है। लकड़ी पड़ी है (भव तापदग्ध जीव ज्ञान प्राप्ति के बाद ताप रहित है) और चूल्हा (माया जिसके संसर्ग से जीव जलता या) जल रहा है। नगरी (माया की) उजड़ गई है (क्योंकि इन्द्रियों

को विषयों का खाद्य नहीं मिलता) इस नगरी (शरीर) में गागर (कुण्डलिनी) नीचे है और पणिहारी (ब्रह्मरन्ध्र स्थित आत्मा) ऊपर है। पकाने वाली (माया) को रोटी (जीव जिसका ब्रह्म से भिन्न रूप मायाकृत है) खा रही है। कामिनी (माया) जल रही है और अंगीठी (जीवात्मा) ताप रही है। दृढ़ निश्चयी बहु (मायिक उलझन) सास (ब्रह्म सत्ता जीवात्मा रूप पति की माता) को जन्म देती है। (दृढ़ लगन और साधना से मायिक उलझन भी ब्रह्मानुभूति का कारण बन जाती है यही बहु का सास जनना है) योगी अपनी साधना द्वारा नगरी (कुण्डलिनी) का पानी कुएँ (ब्रह्मरन्ध्र) में पहुँचा देता है। गोरक्ष ऐसी उल्टी चर्चा गाता है।

***3. वैदिक साहित्य के परम्परागत प्रतीकः–***

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत परमतत्व की वृक्ष के माधयक से हुई अभिव्यक्ति[12] नाथ परम्परा में भी समान रूप से प्रकट हुई है प्रतीत होती है।

यथाः–

तत बेली सौ तत बेली सौ, अवधु गोरखनाथ जाणी।

डाल न मूल न पुहुप नहीं छाया, विरधि करै बिन पाणी।।

काटत बेली कूंपल मेल्ही सींचतँड़ा कुमिलाये।।[13]

अर्थात् परमतत्वरूप बेल की न शाखाएँ हैं न जड़ और फूल तथा न ही छाया है। यह बिना पानी के ही बढ़ती रहती है एवं काटने से पल्लवित होती है। यह किन्तु सींचने से कुम्हलाती है।

***4. सिद्ध साहित्य के प्रतीकः–***

नाथपंथ वज्रयानी सिद्धों की गुह्य साधन का प्रतिक्रियात्मक तथा सहज साधना का परिष्कृत स्वरूप माना जाता रहा है अतएव स्वाभाविक रूप से सिद्धों की प्रतीकात्मक पारिभाषिक शब्दावली नाथ साहित्य के अन्तर्गत पर्याप्त प्रकट हुई है। उदाहरणस्वरूपः–

(क) घोड़ा–सवारः– पवन निरोध हेतु सिद्धों के घोड़ा सवार रूपक का चित्रण नाथयोगियों ने इस प्रकार किया हैः–

सहज पलाण पवन करिघोड़ा लै लगांम चित चबका।

चेतनि असवार ग्यान गुरू करि और तजौ सब डबका।। [14]

अर्थात् सहज की जीन, पवन का घोड़ा और लय की लगामयुक्त आत्मारूपी सवार गुरू ज्ञान तक पहुँच सकता है।

(ख) ताला–कुंजीः– सिद्धों के इस पवन निरोधरूपक का नाथ साहित्य में दो अर्थों में प्रयोग हुआ है–

१) नाद को अन्तर्मुखी करने के लिएः–

अरधै उरधै लाइलै कूची, थिर होवे मन तहाँ थाकीले पवनां।

दसवाँ द्वार चीन्हिले, छटै आवा गमनां।।[15]

(२) ताला लगाने के साथ–साथ ब्रह्मरन्ध्र या दशमद्वार का ताला खेलने के क्रम मेंः–

सबदहि ताला, सबदहि कूंची, सबदहि सबद जगाया।

सबदहि सबद रचूं पाया हुआ सबदहि सबद समाया।।

अवधू निहसबद कूंची सबद ताला।।[16]

अन्यत्र गोरखनाथ द्वारा खेचरी मुद्रा के अर्थ में भी ताला–कुंची रूपक को अपनाया गया है।[17]

(ग) चोरः– सिद्धों के समान ही नाथयोगियों ने भी विकारग्रस्त मन हेतु चोर के प्रतीक का व्यवहार किया है। गोरखनाथ साधनापथ में इस चोर से सदैव सावधान रहने की चेतावनी देते हैं।

यथाः–

काया हमारै सहंर बोलिये, मन बोलिये हुजदार।

चेतनि पहरै कोटवाल बोलिये, तो चोर न झंके द्वार।।[18]

(घ) शून्यः– सिद्धों की प्रज्ञोपायात्मक साधना पद्धति के अन्तर्गत प्रज्ञा अथवा महामुद्रा के रूप में गृहीत शून्य को नाथयोगियों द्वारा परमतत्व के रूप में ग्रहण किया गया है।

यथाः–

सुनिक माइ सुनि जबाप। सुंनि निरंजन आपै आप।
सुंनि के परिचै भया सधीर। निहचल जोगी गहिर गंभीर।।[19]

अन्यत्र ब्रह्मरन्ध्र के अर्थ में भी शून्य का प्रयोग हुआ है।

गगन मण्डल में सुनि द्वारा।
बिजली चमके घोर अन्धार।[20]

एवम्

सुनि मण्डल तहाँ नीझर झरिया।
चँद सुरज से उनमति धरिया।[21]

(ङ.) सहजः– सिद्धों के परमतत्व रूप 'सहज' का नाथ साहित्य के अन्तर्गत परमतत्व परमज्ञान, कुण्डलिनी जागरण पद्धति, सहज समाधि, परमसुख और जीवन पद्धति आदि के रूप में व्यापक व्यवहार उपलब्ध होता है।

***(5) इतर प्रतीकः–***

नाथ साहित्य के अन्य प्रतीकों के अन्तर्गत व्यापारी तथा सुनार के प्रतीक विशिष्ट है। एक ओर गोरखनाथ सहज ज्ञान का व्यापार करते हुए पांच इन्द्रिय रूपी बैल और नौ रन्ध्ररूपी गाय बेचने आये हैं। दूसरी ओर सुनार के रूप में वे आत्मानन्दरूपी सोना बेचते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रधान प्रतीकों के क्रम में गाय इन्द्रिया। बैल, गज, मृग मन हंस चित्त, पवन या प्राण। भुजंग पारधी साधक। नगरी काया, शरीर। बाधिन सर्पिणी, बांझ माया इत्यादि को स्थान दिया जा सकता हैं।

सारांशतः नाथसाहित्य की प्रतीकयोजना पर्याप्त समृद्ध एवं विशिष्ट प्रतीत होती हैं। इसके अन्तर्गत जहां पूर्ववर्ती वैदिक शैव और सिद्ध परम्परा से प्राप्त प्रतीकात्मक प्रयोगों को स्थान मिला हैं वहीं अपने सिद्धान्त विशेष पर आधारित इनके स्वतंत्र प्रतीक विधान के समानान्तर पूर्वोक्त प्रतीकों की अनेकार्थी और युगीन परिवेश के अनुरूप प्रतीकों को पुनर्भासित रूप भी प्रकट होता है।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
अलवर

# संदर्भ


1. गोरखवाणी - सम्पादक डॉ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल पृष्ठ 110-111
2. वही पृष्ठ 116
3. वही पृष्ठ 139-140
4. वही
5. वही 9/23
6. वही 56/81/267
7. वही 142/447
8. गगन मण्डल में औंधा कुआँ तहाँ अमृत का वासा

-वही
9. चत्वारि शृगा ---, ऋग. 3/4/58, 4/5/475
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी-कबीर पृष्ठ 81
11. गोरखवाणी पद 47, पृष्ठ 141-42
12. ऋग्वेद 1/164/120
13. गोरखबानी पृष्ठ 106-7
14. वही पृष्ठ 103
15. वही पृष्ठ 117
16. वही पृष्ठ 8, पृष्ठ 199
17. वही पृष्ठ 46
18. वही पृष्ठ 120
19. वही पृष्ठ 73
20. वही पृष्ठ 60
21. वही पृष्ठ 20
22. वही पृष्ठ 100
23. वही पृष्ठ 196 एवं 116
24. वही पृष्ठ 100
25. वही पृष्ठ 105
26. वही पृष्ठ 104/218
27. वही पृष्ठ 231
28. वही पृष्ठ 11 एवं 79
29. वही पृष्ठ 104 सहज गोरखनाथ नालिज कराई, पंचबलद नौ गाई
30. सोना ल्यो रस सोनां ल्यौ, मेरी जाति सुनारी रे

वही पृष्ठ 91
31. एक गाई नौ बछड़ा पंच दुहेबा जाई। गोरख बानी, पृ. 113
32. 'मन बछो' वही, पृ. 254
33. दसवै दरवाजै कूची सार, मेमन्त हस्ती बधिया यार। वही, पृ. 175
34. हैयो ल्यौ मृगलो बोधियौ बाण। वही, पृष्ठ 119
35. सोहम् बाई हंसा रूपी। बी, पृ 99
36. ऐसा भयमम जोगी करै। धरती सोवै डम्बर द्रवै।

कुण्डलिनी रूपी नागिन का स्वामी, वही, पृ. 174
37. आईसो भील पारधी हाथि हाथ न पाई। वही-पृष्ठ 119
38. काया हमारे सहर बोलियै मन बोलिये हुजदार - वही, पृ 120
39. दिवसै बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै।

जाणि बूझि रे मूरखि लोया बापण पोषै। वही, पृ. 137
40. मारौ मारौ स्रपनी निरमल जल पैठी, त्रिभुवन डसती गोरखनाथ दीठी। -वही, पृष्ठ 139
41. बारे बरसे बंझ ब्याई, वही पृ. 129
42. गाया बाघ विडारयाजी, वही, पृ. 154

# सन्त जाम्भोजी का नाथों को उपदेश

डॉ. मंगलराम विश्नोई

सिद्ध परम्परा के विकास के रूप में नाथ परम्परा का आविर्भाव माना जाता है। इस परम्परा में हठयोग साधना की प्रसिद्धि सर्वविदित है। हठयोग साधना में विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। जहां गीता–

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

इस रूप में स्थितप्रज्ञ या धीर, पुरूष ओ परिभाषित करती है जिसका चित्र विकारसाधन होने पर भी विकृत नहीं होता–

नौ लख पातरी आगे नाचै, पीछे सहज अखाड़ा।

ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।

ऐसी लगन और निष्ठा से तपस्या करने वाले लोहा पागलनाथ,

बालानाथ, कंवलनाथ जाम्भोजी के सम्पर्क में आए थे। ज़ाम्भोजी ने इन योगियों को भी उपदेश दिया है जिसका संक्षेप में विवेचन करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

***परमात्मा की सर्वव्यापकता***

सन्त जाम्भोजी का कहना हैं कि सच्चिदानन्दघन परमात्मा सातों पाताल, तीन लोक, चौदह भुवन, रूप रहित गम्भीर आकाश तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बाहर भीतर सर्वदा निरन्तर एक रस व्याप्त है जो अनन्य भक्त भगवान् को सच्चे ह्रदय से जहां कहीं भी याद करता है उसको उस साधक की भावना के अनुसार वह वहीं व्याप्त हो जाता हैं। सतगुरु ही परमात्मा की प्राप्ति रूप कल्याण के मार्ग को बतलाकर जिज्ञासु के मन की भ्रान्ति को दूर करने में समर्थ है–

ओइम् सप्त पताले लिहूं त्रिलोक चन्दा भवने गगन माहिरे।

बाहर भीतर सर्व निरन्तर, जहां चीन्हों तहां सोई।

सतगुरू मिलियौ सतपन्थ बतायो, भ्रान्त चुकाई और न बुझवा कोई।।[1]

***गुरु शिक्षा की आवश्यकता***

पागलपंथ को उपदेश देते हुए जाम्भोजी कहते हैं कि जो सन्त आत्मकल्याण के इच्छुक हैं और तामसी ढोंग तथा दुष्कर्म नहीं करते हैं वे निरन्तर परमात्मा का चिन्तन करते हैं तथा थोड़ा बहुत संसार के कल्याण के खातिर भी शुद्ध आचरण पूर्वक सुकर्म करते हैं। यह शरीर परिवर्तनशील होने के कारण झुठा है तथा इसके बनते व विनाश होते देर नहीं लगती। जो गुरु शिक्षा से रहित हैं तथा परमात्मा का चिन्तन उसकी प्राप्ति के लिए नहीं करते उनकी किसी समय भी स्थिति नहीं बनती अर्थात् वे शरीर तथा मन से पल पल में बदलते रहते हैं तथा आवागमन के चक्र में घूमते रहते हैं–

ओइम् सुण राजेन्दर सुहषा जोगन्दर सुण शेबिन्दर सुणे सोकीन्दर।

सुण चाचिन्दर, सिद्धक साथ कहाणी।

झूठी काया उपनत बिणसत ज्यां ज्या नुगरे थिती न जांणी।[2]

**तामसी साधना का फल**

जाम्भोजी ने तामसी साधना करने वाले नाथों को फटकारते हुए कहा है कि शरीर पर भस्मी लगाकर तथा श्मशान घाट पर बैठकर भूतप्रेतों की सेवा तामसी साधना कहलाती है। इस साधना को करने वाला अधोगति को जाता हैं। जिस प्रकार उल्टे घड़े पर चाहें कितने ही दिन वर्षा होती रहें लेकिन उस घड़े में जल नहीं भरता उसी प्रकार भूत प्रेतों की तामसी पूजा से आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं होता तथा परमगति की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् परम पिता परमात्मा के गुण गान के बिना परम शान्ति रूप जल शरीर रूपी घट में नहीं भर सकता। चाहे जंगल जोगी हो, नाथ चाहे वस्त्रहीन होकर विचरण करने वाले हो, चाहे संन्यासी, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे ब्रह्मचारी, चाहे काजी हो या मुल्ला अथवा मनसुखी होकर शास्त्र का अध्ययन करने वाला भक्तिशून्य पण्डित – ये सभी यदि परमात्मा की माया से मोहित होकर अहंकार तथा रागद्वेष के वशीभूत हैं तो इनमें से किसी का भी कल्याण होना असम्भव है। यह बिल्कुल निश्चित है कि जो व्यक्ति स्नान, हवन व आचार विचार को छोड़कर तथा शास्त्रों का मनमाना अर्थ लगाकर जीवन व्यतीत करता है उसके लिए इस लोक और परलोक दोनों में कहीं भी शान्ति नहीं है।[3]

**योगाडम्बर की निन्दा**

जाम्भोजी ने योग के मिथ्या आडम्बर की निन्दा की हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार राजसिंहासन के चले जाने पर राजा, खोज के गुरु हो जाने पर खोजी, पत्नी के मर जाने पर पति, धन के चले जाने पर धनी, पकी हुई खेती नष्ट हो जाने पर किसान दुःखी होता है उसी प्रकार परमात्मा की सच्ची भक्ति रूपी योग के बिना ही शरीर के छूट जाने पर आवागमन में पड़ा हुआ जीवात्मा बारम्बार दुःखी होता है।

भिक्षावृत्ति द्वारा पेट भरने वाले, दिखावटी जप करने वाले रजोगुणी तपस्या करने वाले, अहंकार के वशीभूत होकर चान्द्रायण इत्यादि व्रत करने वाले तथा इस्लामी पीर इत्यादि ये सभी नाममात्र की साधना करते हुए देहरूपी तराजू से विषयवासना रूपी पत्थर तोलते हैं जबकि भगवान् के अनन्य सच्चे भक्त देहरूपी तराजू

से भक्तिभावना रूपी हीरे तोलते हें। सच्चा योगी सदा सर्वदा योगी ही रहता हैं। जो लोग केवल कान फड़वा कर उनमें मुद्रा पहन कर और बिना साधना किये ही स्वयं को योगी बतलाते हैं अथवा मानते हैं, वे वास्तविक योगी नहीं हैं। और जो लोग सिर के बाल दिखाने के लिए लम्बे लम्बे बाल बढाकर जीवहत्या करते रहते हैं और इस क्षणभंगुर शरीर को मोटा ताजा बनाते रहते हैं वे सच्चे साधक नहीं हैं–

ओइम् ज्यों राज गये राजेन्द्रर झूरे, खोज गये न खोजी।

लाछ मुई गिरहायत झूरै, अरथ बिहूंणा लोगी।।

मौर झडै, कृषाण भी झूरै, विन्द गये न जोगी।

जोगी जंगम जपिया, पतिया, जती पती तक पीरुं।

जिहिं तुल झूला पाहण तोलै, तिहिं तुल तोलत हीरुं।

जोगी सो तो जुग–जुग जोगी, अवमी जोगी सोई।

थे कान चिरावो चिरघट पहरों, आयंसा, यह पाखण्ड तो जोगी न होई।।

जहां वधारो जीव संधारों आयसां, यह पाखण्ड तो जोगी न कोइ।[४]

***बाह्यडम्बर की निन्दा***

जाम्भोजी का कहना है कि जो नाथ योगी धारणा, ध्यान, समाधि आदि यौगिक साधना को छोडकर केवल बडे धागों से बनी हुई झोली तथा धागों से गढ़ी हुई गुदड़ी को उठाये घूमते हैं वे तो मात्र अपने कन्धों को भार रूपी दुःख ही पहुंचाते हैं। जिसने परमात्मा की प्राप्ति के लिए योग साधना नहीं सीखी और न ही सीखने का प्रयत्न करते हैं ऐसे व्यक्ति का माता–पिता, भाई–बन्धु तथा घर–बार छोड़कर नाथ बनना व्यर्थ ही है। जो नाथ, साधना के समय को सुई लेकर गुदड़ी बनाने में व्यतीत करते हैं तथा केवल जटा रखकर बार–बार शरीर पर भस्म लगाते है, उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। व्यर्थ का वाद–विवाद करना, तुच्छ सिद्धि की प्राप्ति की खातिर वीरों तथा वैतालों की उपासना करना परमगति में बाधक है। केवल हाथ में दण्ड लेकर चलाने

जिस प्रकार बिना अन्न के फूस को पीसने से कोई लाभ नहीं होता उसी प्रकार भूत–प्रेतों की पूजा और सेवा से कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं हो सकता। अर्थात् अहंकारपूर्वक किया हुआ तामसी त्याग कल्याणकारी नहीं है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा को ध्यान–जपादि से बिना पहचाने शुष्कत्याग से योग सिद्धि नहीं मिलती।

***मुक्ति का स्वरूप***

जाम्भोजी का मन्तव्य है कि जिस योगी के मन ही मुद्रा है शरीर ही गुदड़ी है अर्थात् योगी का मन जहां–तहां जाता है वहां वह यदि परमात्मा का दर्शन करता है तो उस पूर्ण योगी के शरीर को गर्मी–सर्दी दुःख नहीं दे सकती। जो योगी अपने शरीर में रहने वाली अग्नि को स्थिर कर लेता है वही वास्तव में उत्तम योगी है। ऐसे योगी की सेवा शुद्ध भाव से करनी चाहिये क्योंकि ऐसे योगी सन्तुष्ट होकर ज्ञान के द्वारा प्राणी को संसार से पार कर सकते हैं।

वस्तुतः सम्पूर्ण संसार के नाथ अर्थात् स्वामी विष्णु भगवान् है, जिसे हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है,[६] क्योंकि वे ही संसार के कर्त्ता और संहारक हैं। वे व्यक्ति नाथ कहलाने के अधिकारी नहीं हैं जो अज्ञानता के कारण बारम्बार शरीर धारण करते हैं। अज्ञानी जीवात्मा अपने–अपने कर्मानुसार पुनः पुनः संसार में आती है और दुःख का भोग करती है। भगवान् ही वास्तव में राजाओं के राजा तथा योगियों के योगी हैं। भगवान् किसी भी व्यक्ति के न तो पापों को छिपाते हैं और न ही किसी पुण्य का हरण करते हैं, अपितु वह शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मो को भलीभांति देखता हुआ तुरन्त फल देता है। वह अनन्य भक्त का योगक्षेम के द्वारा पालन करता है तथा अन्तिम समय में मोक्ष प्रदान करता है।

इस मानव शरीर में उत्तम कर्मों से जीवात्मा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और हिंसा, चोरी, छलकपट आदि दुष्कर्मों से नरक की प्राप्ति है। यदि कोई सच्चे भाव से भक्त भगवान् की भक्ति अथवा उपासना करता है उसके समस्त कार्य पूर्ण हो जाते हैं और यही मुक्ति कहलाती है।

जिस प्रकार बिना अन्न के फूस को पीसने से कोई लाभ नहीं होता उसी प्रकार भूत–प्रेतों की पूजा और सेवा से कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं हो सकता। अर्थात् अहंकारपूर्वक किया हुआ तामसी त्याग कल्याणकारी नहीं है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा को ध्यान–जपादि से बिना पहचाने शुष्कत्याग से योग सिद्धि नहीं मिलती।

### *मुक्ति का स्वरूप*

जाम्भोजी का मन्तव्य है कि जिस योगी के मन ही मुद्रा है और शरीर ही गुदड़ी है अर्थात् योगी का मन जहां–जहां जाता है वहां वह यदि परमात्मा का दर्शन करता है तो उस पूर्ण योगी के शरीर को गर्मी–सर्दी दुःख नहीं दे सकती। जो योगी अपने शरीर में रहने वाली अग्नि को स्थिर कर लेता है वही वास्तव में उत्तम योगी है। ऐसे योगी की सेवा शुद्ध भाव से करनी चाहिये क्योंकि ऐसे योगी सन्तुष्ट होकर ज्ञान के द्वारा प्राणी को संसार से पार कर सकते हैं।

वस्तुतः सम्पूर्ण संसार के नाथ अर्थात् स्वामी विष्णु भगवान है, जिसे हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है,[6] क्योंकि वे ही संसार के कर्त्ता और संहारक है। वे व्यक्ति नाथ कहलाने के अधिकारी नहीं हैं जो अज्ञानता के काण बारम्बार शरीर धारण करते हैं। अज्ञानी जीवात्मा अपने–अपने कर्मानुसार पुनः पुनः संसार में आती है और दुःख का भोग करती है। भगवान् ही वास्तव में राजाओं के राजा तथा योगियों के योगी हैं। भगवान् किसी भी व्यक्ति के न तो पापों को छिपाते हैं और न ही किसी पुण्य का हरण करते हैं, अपितु वह शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों को भलीभांति देखता हुआ तुरन्त फल देता है। वह अनन्य भक्त का योगक्षेम के द्वारा पालन करता है तथा अन्तिम समय में मोक्ष प्रदान करता है।

इस मानव शरीर में उत्तम कर्मों से जीवात्मा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और हिंसा, चोरी, छलकपट आदि दुष्कर्मों से नरक की प्राप्ति है। यदि कोई सच्चे भाव से भक्त भगवान् की भक्ति अथवा उपासना करता है उसके समस्त कार्य पूर्ण हो जाते हैं और यही पूर्णता मुक्ति कहलाती है।

**परमात्मा का दर्शन**

जाम्भोजी का कहना है कि जो व्यक्ति आत्मकल्याण का इच्छुक हो उसे काम, क्रोधादि महा भयंकर और सांसारिक उपायों से न मारे जाने वाले आन्तरिक शत्रुओं को मारना चाहिये। खेचरी मुद्रा आदि योग क्रियायों के द्वारा दशवे द्वार से टपकने वाले अमृत को नहीं नहीं जाने देना चाहिये। वीर्य की रक्षा दृढ़ता से करनी चाहिये। धीरे-धीरे अभ्यास के द्वारा प्राण-अपान की गति को रोक कर प्राणों को दसवें द्वार में ठहरा देना चाहिये जिससे मन की वृत्ति सांसारिक विषयों में भटकना बन्द कर देगी। उस समय गुरु की की आज्ञानुसार साधना करने पर परमात्मा का दर्शन होता है।

जो अज्ञानी तथा अशुद्ध अन्तःकरण वाला होता है वह साधक अपनी आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता। ऐसा अपूर्ण साधक ही संसार में दूसरे मनुष्यों से व्यर्थ में वाद-विवाद करता है तथा अपने को ज्ञानी तथा त्यागी बतलाता है, परन्तु वास्तव में उस अधूरे साधक की भूल है। ऐसे साधक के दिल में स्त्री और पुरूष में भेदभाव रहता है। जिस साधक के वाद-विवाद मत्सर, संशय आदि दोष नष्ट हो गये हैं उसके ह्रदय में भेद रूपी दोष नहीं रहते।

**परमात्मा की महिमा**

जाम्भोजी का यह मानना है कि सातों पाताल, सातों उपरि लोक और पृथिवी इन सबकी पृथक्-पृथक् रचना परमात्मा ने की है फिर भी वह नित्य ज्ञानस्वरूप होने के कारण निर्विकार, अचल तथा सभी इच्छाओं से रहित हैं। यद्यपि वह क्रियारहित, चिह्नरहित, हस्त-पादादि अवयवरहित तथा जन्म रहित है, तथापि पवन, जलादि पांचों तत्व तथा प्राणियों के शरीर उसके आश्रित रहते हैं। सांसारिक जीवों की देह में जो चैतन्य शक्ति है, वह परमात्मा की माया है। प्राणियों के शरीर में जो सात्विक वृत्ति है वह परमात्मा का ही अंश है। जिस साधक का अन्तःकरण दया से शुद्ध है उसी साधक के ह्रदय में आत्मज्योति का पूर्ण प्रकाश होता है उस आत्मज्योति के दर्शन से व्यक्ति की भूख और प्यास समाप्त हो जाती है।

ओम् सप्त पताले भुंय अंतर अंतर राखिलो,
म्हे अटला अटलूं।
अलाह अलेख अडाल अयोली शंभू,
पवन अधारी पिण्ड जलूं।
काया भीतर माया आछै,
माया भीतर दया आछै।
दया भीतर छाया, जिहिं के,
छाया भीतर बिंब फलूं।
पूरक पूर पूरले पोण,
भूख नहीं अन्न जीमत कौण।[7]

### *साधक की दिनचर्या*

जाम्भोजी ने बालानाथ और कमलनाथ को उपदेश देते हुए कहा कि यदि व्यक्ति को सुपात्र या सज्जन व्यक्ति के हाथ से बनाया हुआ रूखा, सूखा, मीठा–कड़वा जैसा भी भोजन मिल जाए उसे खीर के समान मधुर समझ कर प्रसन्नतापूर्वक खाना चाहिये। इसके विपरीत मलीन वृत्ति वाले तथा दुष्टतापूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले व्यंक्ति के हाथ का चाहे वह खीर जैसा स्वादिष्ट पदार्थ ही क्यों न हो, नहीं खाना चाहिये, क्योंकि ऐसे व्यक्ति के हाथ से बनाया हुआ भोजन खाने पर बुद्धि मलिन हो जाती है और साधक की साधना छूट जाती है।

साधक को भूमि पर शयन करना चाहिये, कुश घास का आसन रखना चाहिये और शरीर के ऊपर ओढने के लिए ऊन का वस्त्र होना चाहिये। एक योगी को युक्तिपूर्वक शयन करना चाहिये तथा प्रातःकाल शीध्र उठकर सूर्योदय के पूर्व ही नित्यकर्म कर लेने चाहिये। यदि इस प्रकार प्रयास करता हुआ संत साधना करता है तो उसका मन स्थिर हो जाता है और इस प्रकार की साधना मृत्यु के पूर्व ही कर लेनी चाहिये ताकि जीव के आवागमन का चक्र खत्म हो जाय।

अन्त में, मैं जाम्भोजी की उस सबदवाणी से विराम लेना चाहता हूं, जिसमें उन्होंने बालानाथ को परमात्मा की प्रांप्ति के साधन के रुप में योगक्रिया का उपदेश दिया है–

ओउम् नवै पोल नवै दरवाजा, अहूंठ कोडरुं राय जड़ी।
कांय रे सींचो बनमाली, इंह बाडी तो भेल पड़सी।
सुवचन बोल सदा सुहल बाली, नाम विष्णु को हरे सुणो।
घण तण गड़बड़ कायों बायों, निज मारग तो बिरला कांयो।
निज पोह पाखो पार असीपर, जाण मगाह मैं गायो गुणो।
श्रीराम में मति थोडी जोय–जोय, कण ब्रिन लूकस कायों लेणो।[8]

डॉ. मंगलाराम विश्नोई
सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

# संदर्भ

1 जम्भवाणी, सबद 40
2 वही, सबद 41
3 वही, सबद 42
4 वही, सबद 43
5 वही, सबद 45
6 हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविया विधेम।। ऋग्वेद, 10.121
7 जम्भवाणी, सबद 51
8 वही, सबद 78

# महाराजा मानसिंह पर नाथसम्प्रदाय का प्रभाव

कमलकिशोर सांखला

मानसिंह का जन्म १२ फरवरी १७८३ को हुआ था। बाल्यकाल में ही इनके माता–पिता का स्वर्गवास हो गया था। इनका संरक्षण इनके दादा श्री विजयसिंह की प्रिय पासवान गुलाबराय की देखरेख में हुआ था। गुलाबराय मानसिंह को दत्तक पुत्र की भांति मानती थी। गुलाबराय ने अनुभव किया, कि अब उत्तराधिकार के लिए मारवाड़ की गद्दी पर शेरसिंह ही उचित रहेगा। मारवाड़ के शासक विजय सिंह के परामर्श के अनुसार १८७२ में शेरसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। महाराजा की घोषणा से सरदारों द्वारा विरोध हुआ। गुलाबराय सरदारों की विद्वेष भावना को देखकर शंकाशील हो गई थी इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से शेरसिंह व मानसिंह को इनके चाचा के साथ जालोर भेज दिया। गुलाबराय के प्रभाव को समाप्त करने के लिए कुपांवत, चांपावत, मेड़तिया और उदावत सरदारों ने कड़ा विरोध किया। भीमसिंह जो कि मानसिंह का चचेरा भाई था, जिसने सरदारों की सक्रिय सहायता से पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह के नेतृत्व में जोधपुर के किले पर अधिकार कर १३ अप्रेल १७६२ को स्वयं को मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया। इस प्रकार मानसिंह का प्रभाव निर्बल हो गया

था। अब मानसिंह राजनैतिक षडयन्त्रों एवं शक्तिशाली विरोध के मध्य संघर्ष करने के लिए अकेले रह गये थे। इसी बीच विजयसिंह ने सरदारों को सन्तुष्ट कर पुनः जोधपुर का शासन अपने हाथ में लिया। विजयसिंह बीमारी के कारण अधिक समय तक शासकीय अधिकारों को न भोग सके। मानसिंह को जब महाराजा की बीमारी का समाचार मिला तब अपनी सेना सहित जोधपुर पहुंचे। इनको महाराजा से नहीं मिलने दिया तद् उपरान्त ८ जुलाई १७६३ को विजयसिंह का देहावसान हो गया। महाराजा की मृत्यु के समय भीमसिंह जैसलमेर गये हुए थे, इनको सुचना मिलते ही जोधपुर आ पहुंचे तथा २० जुलाई १७६३ स्वयं मारवाड़ के सिंहासन पर सत्तारूढ हुए।

अब मानसिंह की शासक बनने की संभावनाएं लगभग धूमिल हो चुकी थी तदउपरान्त मानसिंह जालौर के किले में चले गये तथा शत्रु के विरुद्ध तीन हजार सैनिक भाड़े पर रख लिये। भीमसिंह ने १७६४ एवं १७६७ में जालोर किले को घेरा परन्तु मानसिंह सुरक्षित रहे। सन् १८०१ में भीमसिंह ने मानसिंह को नष्ट कर देने का अंतिम निर्णय किया तथा पुनः जालोर को घेर लिया। अनेकों सैनिक मारे गये। मानसिंह अपने सैनिकों सहित पूर्ण रूप से घिर चुके थे। यह घेरा १८०१ से १८०३ तक रहा। दीर्धकालीन घेरे के कारण दुर्ग में खाद्य सामग्री, पेयजल और अन्य आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो गया था। इस भीषण आवश्यकता के समय जालोर दुर्ग के समीप स्थित जालंघर मंदिर के पुरोहित आयसदेवनाथ ने मानसिंह को अपनी सेवायें अर्पित की और स्वयं ने गांव–गांव घूमकर अनाज, कोष, घोड़े और सैनिक एकत्रित किए। अब विरोधी पक्ष प्रबल हो गया था उन्होंने मानसिंह से किला खाली करने की निश्चित तिथि बतलाने का आग्रह किया तब मानसिंह ने वचन दिया कि वह दीपावली के दिन दुर्ग को निश्चित रूप से छोड़ देगा। किन्तु इस सयम आयस देवनाथ ने मानसिंह के लिये यह भविष्यवाणी की कि २१ अक्टूबर १८०३ तक मानसिंह मारवाड़ राज्य के शासक बन जायेंगे। इस भविष्यवाणी को नैतिक बल देकर मानसिंह दुर्ग में डटे रहे। तदउपरान्त १६ अक्टूबर १८०३ को भीमसिंह की मृत्यु हो गई तथा मानसिंह मारवाड़ के शासक बने।

आयसदेवनाथ की भविष्यवाणी से मानसिंह इतने प्रभावित हो गये थे कि इन्होंने निश्चय किया कि मारवाड़ का सिंहासन मुझे नाथों के आशीर्वाद से ही मिला है इसलिये मैं मारवाड़ का शासन नाथों के परामर्श के अनुसार ही करूंगा। दिसम्बर १८०३ में आसयदेवनाथ को जालोर से जोधपुर बुलवाया। देवनाथ जब जोधपुर नगर की बाहरी सीमा पर आ पहुंचे तब महाराजा स्वयं उनकी अगवानी करने के लिए गये तथा अत्यन्त श्रद्धा और समारोह पूर्वक इनका स्वागत किया। देवनाथ के साथ इनके चार भाई हरनाथ, सूरतनाथ, भीमनाथ और ओपनाथ भी आए थे जिनहें सूरसागर ठहराया गया। महाराजा ने १८०४ में आयसदेवनाथ को अपना गुरु बनाने की घोषणा की तथा १०,००० रूपये वार्षिक आया का गांव इन्हें दान में दिया। जालोर में सिरे मंदिर का निर्माण करवाया जहां हरनाथ को पुजारी नियुक्त किया। जालोर परगने के प्रत्येक गांव से मंदिर कर वसूल करने का अधिकार नाथों को दे दिया। मानसिंह ने जालंधर नाथ के प्रति श्रद्धा भक्ति के प्रतीक स्वरूप उनके चरण चिह्नों की दुर्ग में धार्मिक कृत्यों के साथ स्थापना की और अपने गुरु आसयदेवनाथ के संगमरमर का एक चबूतरा बनावाया। मानसिंह ने अपने गुरु के लिए महामंदिर का निर्माण कार्य प्रारंभ करवाया। ४ फरवरी १८०५ को महामंदिर का विशाल मंदिर बनकर सम्पूर्ण हुआ। अत्यन्त भव्य समारोह के साथ प्राण प्रतिष्ठा की गई। इन्होंने महामंदिर में दो सुन्दर नक्काशीयुक्त महलों का भी निर्माण करवाया जिस पर १० लाख रूपये खर्च हुए थे। महाराजा ने २३ सितम्बर १८०५ को नाथसम्प्रदाय में दीक्षा ली। इस उपलक्ष्य में प्रत्येक नाथ योगी को दक्षिणा दी गई। मानसिंह प्रत्येक सोमवार को अपने गुरु के दर्शनार्थ महामंदिर जाया करते थे।

महाराजा ने मारवाड़ के लगभग सभी परगनों में नाथ मंदिरों के निर्माण की आज्ञा दी थी। मानसिंह की नाथ सप्रदाय में अगाध भक्ति को देख कर देश के विभिन्न भागों से नाथ योगी बड़ी संख्या में जोधपुर आने लगे तथा अनेक लोगों ने नाथ सम्प्रदाय में दीक्षा ली। मानसिंह ने नाथों को आयात, निर्यात, विक्रय आदि उपकर की आय में से एक भाग प्राप्त करने का अधिकार भी प्रदान कर दिया था। अब वे आयसदेवनाथ से राज्य के नीति संबंधी मामलों में भी परामर्श लेने लगे थे। जब देवनाथ दरबार

में जाते थे तब महाराजा अपना शीश पृथ्वी से लगाकर उनका अभिवादन करते थे। आयसनाथदेव के बढ़ते प्रभाव से दरबारियों और सरदारों का एक वर्ग इनसे ईर्ष्या करने लगा। आयसदेवनाथ की अनापशनाप बढ़ी–चढ़ी मांगों के कारण सरदार अत्यधिक क्रुद्ध हो गये थे। तद्उपरान्त अमीर खां के द्वारा ६ अक्टूबर १८१५ को दुर्ग के अन्दर की आसयदेवनाथ की हत्या कर दी गई। महाराजा इस दुखान्त दुर्घटना के आघात से हतबुद्धि हो गये थे। सन् १८१८ में मानसिंह ने देवनाथ के पुत्र लाडूनाथ को महामंदिर के सर्वोच्च पुजारी की गद्दी पर बिठाया। लाडूनाथ की अल्पवयस्कता के कारण इनके चाचा भीमनाथ महाराजा के गुरु का कांम करने लगे। इस बात से लाडूनाथ एवं भीमनाथ दोनों में भंयकर उपद्रव खड़ा हुआ। लाडूनाथ ने महाराजा से प्रार्थना की, कि वे उसके चाचा को महामंदिर से हटा दें। चाचा भतीचे की रस्साकशी के कारण मानसिंह की शांति भंग हो चुकी थी। दोनों के बीच कलह को मिटाने के लिये महाराजा ने सन् १८२१ में उदय मंदिर का निर्माण करवाया, जहां पुजारी भीमनाथ को बनाया। उदयमंदिर और महामंदिर दोनों को बराबरी का दर्जा दे दिया गया फिर भी दोनों नाथ गुरुओं में प्रतिस्पर्धा चलती रही। जिनके कारण मानसिंह के दरबार में दो गुट उत्पन्न हो गये एवं नाथों का हस्तक्षेप बढ़ने लगा। नाथों के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण राज्य की वित्तीय स्थिति कमजोर हो गई थी। मानसिंह ने राज्य की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए एक दीवान नियुक्त किया जिसके कारण लाडूनाथ क्रोधित हुए तथा इन्होंने मानसिंह को राजी कर दीवान को हटवा दिया। लाडूनाथ ने जागीरदारों की जागीरें छीनने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु असफल हुआ। असफलता के कारण स्वयं तीर्थयात्रा पर चला गया तद्उपरान्त जनवरी १८२८ को इनका स्वर्गवास हो गया।

लाडूनाथ की मृत्यु के पश्चात् इनके दो वर्ष के पुत्र भैरोंनाथ को महामंदिर की गद्दी पर बिठाया गया। छः माह बाद ही भैरोनाथ का स्वर्गवास हो गया तद्उपरान्त भीमनाथ ने अपने पुत्र लक्ष्मीनाथ को १६ नवम्बर १८२६ को महामंदिर की गद्दी पर बिठाया। भीमनाथ का प्रभाव दिनों–दिन बढ़ता गया। अब इसने मानसिंह के अधिकारों को हथियाने का प्रयास किया और राज्य का शोषण कर

अपार वैभव और धन प्राप्त करने लगा। परिणामस्वरूप राजकोष से गंभीर अपव्यय और गबन हुए। कानून व्यवस्था तेजी से बिगड़ने लगी। प्रशासन में अपने समर्थकों को नियुक्त कर दिया था। भीमनाथ की अत्याचारी नीति के कारण मारवाड़ में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। भीमनाथ ने मानसिंह के स्थान पर धौकल सिंह को महाराजा बनाने की योजना बनाई। कुछ दिन बाद भीमनाथ की अल्पकालीन बीमारी के पश्चात् जून १८३८ को मृत्यु को गई।

अपने पिता की मृत्यु के बाद लक्ष्मीनाथ ने राज्य का प्रशासन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। अब राज्य का खजाना खाली हो चुका था। अंग्रेजी सरकार का कई वर्षो का खिराज बकाया चढ़ गया था। सम्पूर्ण राज्य में अंशाति बढ़ गई थी। मारवाड़ के जागीरदार नाथों की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध कर्नल सदर लैण्ड के समक्ष प्रस्तुत हुए। जब मानसिंह नाथों के अधिकार तथा उनको सत्ता से हटाने में असफल हो गया था तब सदर लैण्ड ने मानसिंह के समक्ष सिंहासन त्याग देने का सुझाव रखा। कर्नल सदर लैण्ड के प्रस्ताव का नाथों ने घोर विरोध किया। अंग्रेजों ने मारवाड़ पर आक्रमण कर मानसिंह को विवश कर दिया तथा प्रशासन चलाने लिए एक काउसिंल थोप थी।

अंग्रेजों ने लक्ष्मीनाथ के बढ़ते हस्तक्षेप को देखकर जनवरी १८४२ को नाथों की जागीरों को जब्त करना शुरू कर दिया तथा नाथों को मारवाड़ से निष्कासित करना प्रांरभ किया। अब राज्य के खजाने से गुप्त रूप से नाथों को रुपया दिया जाने लगा जिसके कारण अंग्रेजों का नाथों के प्रभुत्व को समाप्त करने का प्रयत्न विफल हो गया। नाथ सम्प्रदाय में नये–नये अनुयायी भर्ती होने लगे जिनके लिए भोजन एवं निवास की व्यवस्था की गई। नाथों की कार्यवाही से अंग्रेज चौंक गये तथा अब इन्होंने नाथों को गिरफ्तार करना प्रारंभ किया। मानसिंह ने नाथों को छुड़वाने का प्रयत्न किया, परन्तु विफल हुए। नाथों की गिरफ्तारी से अत्यधिक व्याकुल होकर मानसिंह ने २३ अप्रेल १८४३ को भगवा वस्त्र धारण कर लिए तथा अपने शरीर पर भभूत मल ली, और इन्होंने नियमित भोजन करना भी छोड़ दिया। महाराजा ने अंग्रेजों की कार्यवाही से अपने आप को अपमानित महसूस कर असहाय पाया तथा सन्यासी का रुप धारण कर राईकाबाग शहर के बाहर–बाहर

मसूरिया से सूरसागर होते हुए मण्डोर पहुंचे जहा ५ सितम्बर १८४३ को मानसिंह का स्वर्गवास हो गया।

मानसिंह की नाथों के प्रति अटूट भक्ति थी। वे नाथों को नाराज करने की बात कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे। हालांकि इनके शासनकाल में लाडूनाथ, भीमनाथ एवं लक्ष्मीनाथ अयोग्य सिद्ध हुए थे फिर भी महाराजा की नाथ भक्ति ने लोगों को सोचने पर विवश कर दिया था। मानसिंह साहित्य प्रेमी थी। इन्होंने भारत वर्ष में फैले हुए अनेक प्रकार के दुर्लभ ग्रंथों को एकत्रित करने का सतत प्रयास कर पुस्तक प्रकाश नाम से एक हस्तलिखित पुस्तकों का पुस्तकालय स्थापित किया। आपके शासनकाल में नाथ साहित्य से संबंधित अनेक ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें जलंधरनाथ जी रोगुण रुपक, नाथचन्द्रिका, तारकनाथ पंथियों की महिमा, नाथ उत्सव माला, नाथों की प्रतिष्ठा एवं नाथ शतक इत्यादि प्रमुख ग्रंथ थे। मानसिंह नाथ सम्प्रदाय के निष्ठावान् अनुयायी होने के नाते नाथ गुरुओं से पत्र व्यवहार भी करते थे। अन्ततः हम कह सकते हैं कि मानसिंह नाथ भक्ति में इतने लीन हो गए थे कि उन्होंने नाथ सम्प्रदाय के लिए अपना तन, मन, धन और शासन तक अर्पित कर दिया।

गवेषक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
कोटा